परमार्थ देशना

पीयूष वाणी वर्षा
आचार्य गुरुदेव भगवन्त श्री विद्यासागर जी महाराज

संकलन/सम्पादन
मुनि श्री कुन्थुसागरजी महाराज

प्रकाशक
धर्मोदय साहित्य प्रकाशन
सागर (म.प्र.)

- **कृति**
  परमार्थ देशना
- **पीयूष वाणी वर्षा**
  आचार्य गुरुदेव भगवन्त श्री विद्यासागर जी महाराज
- **प्रेरणा**
  मुनि श्री पुष्पदन्तसागरजी महाराज
- **संकलन/सम्पादन**
  मुनि श्री कुन्थुसागरजी महाराज
- **संस्करण**
  प्रथम, जनवरी, 2009
- **आवृत्ति**
  1100 प्रतियाँ
- **प्राप्ति स्थान**
  धर्मोदय साहित्य प्रकाशन
  सागर (म.प्र.) मो. 094249-51771

दो शब्द

वर्तमान 20 वीं 21 वीं सदी में अनेक दिगम्बर जैनाचार्य, मुनि, आर्यिका, विद्वान् हुए हैं। और उन्होंने अपने-अपने क्षेत्र में अनेकानेक कार्य भी किए हैं। अनेक प्रकार से धर्म प्रभावना की है। उनमें से ही एक महान् आचार्य ज्ञानसागरजी महाराज हुए हैं। आपकी महानता का अनुमान उनके अद्वितीय शिष्य के दर्शन करके किया जा सकता है। जिन्हें दुनियां के लोग परम पूज्य आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज के नाम से जानते हैं। आपके द्वारा अनेक शास्त्रों का प्रणयन हुआ है। आपके द्वारा रचित मूकमाटी महाकाव्य बेजोड़ कृति है। जिसकी अनेक जैनों ने ही नहीं बल्कि अनेक विद्वानों, साहित्यकारों ने मुक्त कंठ से प्रशंसा की है।

आचार्य महाराज प्रवचनकला के बेजोड़ शिल्पी हैं। आपके प्रवचन से जैन-अजैन सभी प्रभावित होते हैं। आप के प्रवचनों को सुनकर हजारों लोगों ने सांसारिक सुखों को छोड़कर मोक्षमार्ग को अंगीकार कर लिया है। अर्थ दृष्टि तजकर परमार्थ के मार्ग को पकड़ लिया है। ऐसे गुरु महाराज के मुख से निःसृत अमृतवाणी को मुनि श्री कुंथुसागर जी महाराज ने अपने बुद्धि कलश में संग्रहित किया है। और उसी अमृतवाणी को आप जन-जन को पिलाना चाहते हैं।

अतः आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है, लोग इस अमृत वाणी का पूर्ण लाभ लेवेंगे और आत्मिक सुख प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त करेंगे। इन्हीं मंगल भावनाओं के साथ विराम गुरु चरणों में नमन।

मुनि निर्णयसागर

भावाभिव्यक्ति

उवयरणं जिणमग्गे लिंगं, जहजादरूवमिदि भणिदं।
गुरुवयणं पि य विणओ सुत्तज्झयणं च णिद्दिट्ठं ॥

प्रवचनसार ग्रन्थ में आचार्य श्री कुन्दकुन्द देव ने मोक्षमार्ग में चार उपकरणों का व्याख्यान किया है। उपकरण का अर्थ होता है-जिसके माध्यम से साधक का उपकार हो ''उपकारं करोति इति उपकरणं''। एक यथाजात रूप, दूसरा गुरु के वचन, तीसरा विनय और चौथा सूत्र का अध्ययन इनके माध्यम से ही मोक्षमार्गी अपनी यात्रा पूर्ण करता है। इसमें गुरु के वचनों को उपकरण के रूप में स्वीकार किया गया है, क्योंकि गुरु के वचन संसार रोग को नष्ट करने के लिए परमौषधि का काम करते हैं, गुरु के वचन जीवन जीने की सामग्री हुआ करती है। मोक्ष पथ पर बढ़ने वाले पथिक के लिए पाथेय का काम करते हैं।

आचार्य गुरुदेव विद्यासागरजी महाराज से वर्तमान में सभी जैन-जैनेत्तर, आबालवृद्ध परिचित हैं एवं उनकी वाणी को सुनने के लिए लालायित रहते हैं। वे शिष्य के मात्र कान ही नहीं फूंकते बल्कि प्राण भी फूंकते हैं। हाँ, संयम, रत्नत्रय रूप प्राण। वे मात्र धर्म का ज्ञान ही नहीं कराते बल्कि धर्म का पान भी कराते हैं। पूज्य गुरुदेव की वाणी सुनकर सारी शंकाओं का समाधान हो जाता है, मात्र एक-ही शंका रह जाती है कि उनकी वाणी का हमेशा पान करते रहें।

जब भी समय-समय पर गुरुदेव की दिव्यदेशना में से कुछ अंश लिखने के लिए मेरा मन, मेरी भक्ति मुझे प्रेरित करती रहती थी और जैसे सागर में से एक दो अंजलि पानी ग्रहण कर लिया जाता है। वैसे ही मैंने गुरुदेव की दिव्यदेशना में से कुछ सूत्र वाक्य चुने थे। साधकजन इनको पढ़ते तो बार-बार कहते महाराज ये सभी सूत्रवाक्य यदि हम सभी को उपलब्ध हो जाये तो बड़ी अनुकम्पा होगी।

परम पूज्य मुनि श्री पुष्पदन्तसागरजी महाराज की इसमें प्रेरणा रही है, उनका मैं हृदय से सम्मान करता हूँ। ब्र. धीरज भैया ने भी अनेक बार इसके प्रकाशन के लिए कहा और ब्र. भैया भरत जी ने भी कहा महाराज इस कार्य का सौभाग्य मुझे प्राप्त हो तो बड़ी कृपा होगी। ये हमेशा ऐसे ही श्रुत के संवर्द्धन एवं संरक्षण में लगे रहें मेरी ऐसी भावना है।

जिनकी अनुकम्पा की छाँव तले ज्ञान प्राप्त किया, पले,बढ़े ऐसे उन महान् आचार्य गुरुदेव भगवंत के श्री सुखद कर कमलों में उन्हीं की वस्तु उन्हीं को सादर सविनय नमोऽस्तु सहित समर्पित है...........

मुनि कुन्थुसागर

अ

अहिंसा

1. कदम में फूल हों और कलम में शूल हो तो अहिंसा का पालन नहीं हो सकता, लेखन के माध्यम से भी ''अहिंसा'' की वृत्ति कितनी हैं, यह मीमांसा की जा सकती हैं।
2. जब तक अहिंसा जीवन में नहीं आएगी, तब तक शब्दों में ताकत नहीं आ सकती, अहिंसा के क्षेत्र में बुद्धि का, तन, मन, धन का उपयोग करना चाहिए। राग की अनुत्पत्ति ही अहिंसा है।
3. अनुकूलता कथंचित् हमें साधक बन सकती है, क्योंकि अनुकूलता में पुरुषार्थ किया जा सकता है।
4. अहिंसा की रक्षा पैसे के बल पर नहीं, बल्कि अहिंसा को अपने जीवन में अपनाकर ही हो सकती है।
5. अहिंसा धर्म की शरण में रहने वाला हमेशा खुश रहता है और कमियाँ उसके जीवन में कभी भी नहीं रहतीं। उसका हमेशा विकासवान् जीवन हुआ करता है।
6. अहिंसा के कार्य करने से स्व-पर दोनों के कल्याण की बात हो जाती है।
7. जो लोग अहिंसा धर्म को अपने जीवन में स्थान देते हैं, उन्हें दुनिया में हर जगह स्थान मिलता है।
8. अहिंसा के क्षेत्र में दिया हुआ हमेशा बढ़ता है कम नहीं हो सकता दुनियाँ की बैंक फैल हो सकती है पर यह अहिंसा की बैंक कभी फैल नहीं हो सकती।
9. अहिंसा धर्म वह संख्या है कि जिस शून्य के आगे लग जावे तो उसका महत्त्व दश गुना बढ़ जाता है। शून्य अकेला कोई शक्ति नहीं रखता यदि उसके आगे अंक ना हो तो। शून्य का महत्त्व अंक से आंका जाता है।
10. अन्याय, अत्याचार के साथ संग्रह किया हुआ धन खाने-पीने में नहीं आता।
11. अहिंसा धर्म के अनुयायी रागी होते हुए भी वीतरागता की आरती उतारते हैं, राग की नहीं।
12. पार्श्वनाथ भगवान् के अंदर सहज करुणाभाव था उन्होंने विषधर जैसे जीवों के प्रति भी करुणा भाव धारण किया और उन्हें भी स्वर्ग सुख का लाभ पहुँचाया।
13. जो अहिंसा धर्म को मानने तैयार नहीं हैं, उन्हें दिव्यध्वनि सुनने नहीं मिल सकती।

14. धर्म वही है, जो दया से विशुद्ध हो।
15. अहिंसा महान् प्रकाश है, आज देश को मात्र अहिंसा की आवश्यकता है।
16. दया धर्म से जो रहित होते हैं, वे कितने ही धनी बन जावें पर वह सात्त्विक गुणों से भूषित नहीं हो सकते।
17. मुमुक्षु वही है, जो करुणावान होता है।
18. दूसरे की पीड़ा को दूर करने से दूसरे की नहीं, स्वयं की पीड़ा दूर होती है।
19. जिसके घट में दया करुणा नहीं है, वह कभी भी कैसे अपने स्वरूप को, जीवत्व को हासिल कर सकता है।
20. अहिंसक व्यक्ति के जन्म होते ही चारों ओर हरियाली छा जाती है।
21. दया के बिना संसार हमेशा झुलसता रहता है, क्योंकि दया के अभाव में धर्म नहीं होता।
22. दया का अभाव बता देता है कि अंदर कषाय है।
23. दया अनुकम्पा से ही धर्म की शुरुआत होती है।
24. वह हृदय शून्य है, जो अहिंसा पर आस्था नहीं रखता।
25. हृदय में यदि सत्य अहिंसा के प्रति आस्था है तो समझना राम, महावीर भगवान् से आज भी हमारा सम्बन्ध निश्चित है, इसमें कोई संदेह नहीं।
26 अहिंसा के अभाव में देश क्या देश रह जावेगा ? आदमियों का नाम देश नहीं है, बल्कि संस्कृति का नाम देश है।
27. जहाँ पर दया है वहाँ सब कुछ मिलता रहता है, धन तो वहाँ बरसेगा ही।
28. जीवदया के अभाव में साधना कितनी भी हो ? वरदान सिद्ध नहीं होगी।
29. मन, वचन व काय की चेष्टाओं के द्वारा अपनी स्वयं की भी हिंसा होती है।
30. मुनिराज कम खर्चा ज्यादा फायदा हो, ऐसी ही चेष्टायें करते हैं, वे आगमानुसार चेष्टायें करते हुए अप्रमत्त ही रहते हैं।
31. आत्म-धर्म हिंसा रहित धर्म से ही प्राप्त होता है।
32. रागादि भाव का होना भी हिंसा है।

अर्पण-समर्पण

33. अपनत्व में सब कुछ समर्पण किया जाता है। जैसे श्रीकृष्णजी की अंगुली कट जाने पर रुक्मणी अपनी साड़ी का पल्लू फाड़कर पट्टी बाँध देती है।
34. स्वार्थ जहाँ से चला जाता है, वहाँ से समर्पण प्रारम्भ हो जाता है।
35. समर्पण में प्रतिफल की इच्छा गौण हो जाती है।

36. जिसमें समर्पण भाव रहता है, वही इस चकाचौंध के युग में कुछ भविष्य के लिए कर सकता है।
37. समर्पण जीवन का आदिम एवं अंतिम साधन है।
38. आगे चलकर समर्पण कर्त्तव्य का रूप ले लेता है।
39. समर्पण के बाद ही जीवन में संघर्ष की शुरुआत होती है, इससे पीछे नहीं हटना चाहिए।
40. समर्पित हुए बिना कृत्कृत्य की उपाधि नहीं मिल सकती।
41. समर्पण की यात्रा कर्त्तव्य से पूर्ण होती है और कर्त्तव्य का पालन समर्पण के साथ किया जाता है।
42. समर्पण के बाद कर्त्तव्य प्रारम्भ होता है।
43. समर्पण वाला ही हव (हाँ) कहता है, नहीं तो हाऊ (कौन) कहता है।
44. मैंने भगवान् बनाया ऐसा नहीं बल्कि मैं भगवान् को समर्पित हो गया, ऐसा कह सकते हैं।
45. जिनेन्द्र भगवान् का नाम रहे और हमारा दासों के दास में नाम रहे, यही समर्पण है। अपने उद्देश्य के प्रति पूर्ण समर्पित होना चाहिए।
46. यदि हम उन प्रभु व गुरु के पवित्र जीवन पर समर्पित हो जाते हैं तो यह हमारा कलंकित जीवन भी पवित्र हो जाता है।
47. कबूतर की तरह देव, शास्त्र व गुरु रूपी जहाज पर समर्पित हो जाओ संसार समुद्र से पार हो जाओगे।
48. एक आत्मा के साथ जब दूसरी आत्मा का सम्बन्ध स्थापित हो जाता है तब तन, वतन सब गौण हो जाते हैं।
49. जिनवाणी की रक्षा एवं अहिंसा धर्म की रक्षा में अपना तन, मन व धन समर्पित कर देना चाहिए।
50. जीवन की परवाह न करते हुए धर्म की रक्षा में समर्पित हो जाना ही सही समर्पण है।
51. समर्पण के साथ किया गया कार्य ही सफलीभूत होता है।
52. जो उद्देश्य के प्रति पूर्ण समर्पित हो जाता है, वही परीक्षा में खरा उतरता है।
53. प्राणियों के संरक्षण में तन, मन एवं धन समर्पण करोगे तो तुम्हारा जीवन भी अमर बन जावेगा और अविनश्वर आत्मा का मूल्य सुरक्षित होगा।

अनर्थ

54. अपने बारे में सोचो, अपने अनर्थों के बारे में सोचो दूसरे के भले के बारे में सोचो, यह अपाय विचय धर्मध्यान है और दूसरे का बुरा सोचने से दुर्ध्यान होता है।
55. अनर्थ से बचना ही प्रयोजनभूत है।
56. दुर्लभ क्षणों को व्यर्थ मत गँवाओ, माला फेरो, स्तुति पाठ करो। पहले के समय में चक्की चलाते रहते थे और स्तुति पढ़ते रहते थे, मन को भटकने नहीं देते थे।
57. अर्थ नीति के बिना गृहस्थ का जीवन चल नहीं सकता, लेकिन अनर्थ नीति से धन इकट्ठा करना ठीक नहीं।
58. प्रयोजन दूसरा होने पर हम प्रयोजनभूत को भूल जाते हैं।
59. अहिंसा महाव्रत को पालने वाले रात्रि में तो बोलते नहीं है, दिन में भी निष्प्रयोजन नहीं बोलते।
60. अप्रयोजनभूत को याद करने से मन की बीमारी बढ़ जाती है।
61. प्रयोजन के अभाव में बोलना भी हिंसा का कारण है।
62. जिस साहित्य को पढ़कर मन पापमय हो जाये, ऐसे साहित्य को दुःश्रुति बोलते हैं। इनसे हमेशा बचना चाहिए।
63. निष्प्रयोजन घूमना/घुमाना अनर्थदण्ड कहलाता है।
64. अनर्थों से बचने से रत्नत्रय धर्म पुष्ट होता है।
65. मधु (शहद) की एक बूँद खाने से सात गाँव जलाने के बराबर दोष लगता है। इसलिए इस अनर्थ से बचना चाहिए।
66. अनर्थदण्ड से श्रावकों को पहले बचना चाहिए।
67. जो अनर्थ से डरता है, वह विकास कर सकता है। अनर्थ से डरने वाला हमेशा सावधान रहता है।
68. जिससे संसारी प्राणी का वध हो, ऐसे शस्त्रादि का दान नहीं करना चाहिए। बुद्धि को बिगाड़ने वाले सारे पदार्थ हिंसा दान में आते हैं।
69. पहले दूध का दान होता था, आज चाय का, यह पाउच संस्कृति है, दरिद्रता का प्रतीक है।

अज्ञान

70. स्वर्ण कभी भी बाह्य पदार्थ के सम्पर्क में जंग नहीं खाता बल्कि लोहा ही जंग खाता है, वैसे ही ज्ञानी कभी पर पदार्थों से मोहित नहीं होता, बल्कि अज्ञानी होता है।

71. विषयों में आकर्षण ''अज्ञान'' का प्रतीक है।

72. अज्ञान का अर्थ है-कषाय के वशीभूत हो जाना, परिग्रह के पीछे पड़ जाना।

73. जब सूर्य अस्ताचल की ओर जाता है तो वह प्रकाश का त्याग कर पाताल में डूब जाता है, फिर अंधकार का साम्राज्य हो जाता है। वैसे ही जो संयम की उपेक्षा कर असंयम का स्वागत करता है, वह रसातल की ओर चला जाता है, उसका ज्ञान ''अज्ञान'' रूप हो जाता है।

74. विपरीत धारणा को छोड़ देने से मन हल्का हो जाता है।

75. मन दूसरे को समझाना चाहता है, स्वयं को नहीं यह एक सबसे बड़ा अज्ञान है।

अतिथि

76. ''मोक्षमार्ग की साधना में लगने वाले अतिथि कहलाते हैं। अतिथियों के सम्पादक अतिथि हुआ करते हैं, जिस तिथि में ''अतिथि''आ जाते हैं, वह पुण्यतिथि (शुभ) मानी जाती है।

77. जिसके आने-जाने की कोई तिथि निश्चित नहीं होती, वे अतिथि कहलाते हैं।

78. अतिथि को भक्तिभाव पूर्वक दान देने से अद्‌भुत फल प्राप्त होता है, पंचाश्चर्य प्राप्त होते हैं।

79. दान और वैयावृत्ति को अतिथि-संविभाग के रूप में स्वीकारा है।

80. जो घर से विमुक्त हैं, ऐसे साधु परमेष्ठी को अतिथि कहा जाता है।

81. संयम की विराधना न करते हुए जो चलते हैं, वे अतिथि कहलाते हैं।

अविवेक

82. संसार में जो कार्य होते देखता है, यह जीव बिना परिणाम जाने उसे करने लगता है, यह एक ''अविवेक'' है।

83. यह शरीर कारागृह है कि कालाग्रह, कारागृह से प्रेम करना एक ''अविवेक'' है।

84. भगवान् के सामने सांसारिक की वस्तुओं की माँग करना एक अविवेक ही है।

85. विवेक के अभाव में ही संसारी प्राणी पर वस्तु को अपना मान बैठता है।

86. परमार्थ को छोड़कर मात्र अर्थ (धन) में ही जीवन गँवाना अविवेक माना जाता है।

अनुभव

87. अनुभव ज्ञान की सुगंधी है, शास्त्र की नहीं।

88. अनुभव का जीवन, जीवन माना जाता है दूसरे पर आधारित जीवन जीवन नहीं माना जाता।

89. स्व (आत्मा) अनुभव में इसलिए नहीं आ रहा है क्योंकि वह इन्द्रियों का विषय नहीं बन सकता।

90. सूक्ष्मता में जाने पर आगम ही आधार बनेगा।

91. अनुभवगम्य में दूसरे की तुलना नहीं होती।

92. अनुभव स्व का होता है पर का नहीं और अनुभव वर्तमान का, उसी समय का होता है भूत, भविष्य का नहीं।

93. वर्तमान में जो अनुभव हो रहा है वह स्वभाव नहीं है इसलिए इसमें हर्ष-विषाद नहीं करना चाहिए बल्कि समता धारण करना चाहिए।

94. मोक्षमार्ग में मात्र आत्मा का ही अनुभव होता रहता है ऐसा नहीं है साता-असाता कर्म का भी अनुभव होता है इसमें हर्ष-विषाद न करके समता रखने से कर्म की निर्जरा होती रहती है।

95. ज्ञान व श्रद्धान त्रैकालिक का हो सकता है किन्तु अनुभव (अनुभूति) तो वर्तमान का ही होता हैं।

अणुव्रत

96. श्रावक मूलधन को अणुव्रत रूपी बैंक में जमा करके अच्छा ब्याज कमा सकता है।

97. दिशाओं की सीमा बाँधने से अणुव्रत भी महाव्रत रूप हो जाते हैं।

98. अणुव्रत महाव्रत के हेतु हैं। महाव्रती का अनुचर अणुव्रती कहलाता है।

अनुशासन

99. कठोरता के बिना ''अनुशासन'' चलता ही नहीं।

100. नियम, संविधान, लचकदार नहीं होना चाहिए, कानून तो कठोर ही होना चाहिए, वरन् व्यवस्था बिगड़ जाती है।

101. कमल इतनी उष्णता को सह रहे हैं, तभी तो खिले हुये रहते हैं, वैसे ही कठोर ''अनुशासन'' बनाये रखेंगे तो आपके घर में हमेशा मर्यादायें कायम रहेंगी।

102. सूर्य की किरणें शुरूआत में कोमल बाद में कठोर ही होती हैं, फिर भी कमल को खिला देती हैं।

103. कठोरता का अनुभव करने से जीवन में अच्छा फल मिलता है।

104. आदेश देने वाला सभी को खुश नहीं रख सकता।

105 पाप के डर से मर्यादा में रहना चाहिए, इसी का नाम अनुशासन है।

106. अनुशासन में रहना पापभीरूता का प्रतीक है।

107. कार्यक्रम की शोभा अनुशासन से ही हुआ करती है।

108. कार्य सानंद सम्पन्न तभी होता है, जब संकल्प और अनुशासन दृढ़ हो। बाहरी शासन अनिवार्य नहीं होता एक सीमा तक होता है, समझदार को इशारा काफी नासमझ को ये सारा भी कम है।

109. आप स्वयं खुद खुदा बनना चाहते हो तो खुदा के बंदे तो बन जाओ, खुदा बनने की शुरुआत हो जावेगी। आप स्वयं खुद खुदा बनना चाहते हो तो खुद में एक डंडा लगाओ। दूसरे पर डंडा लगाकर अधिकार पूर्वक खुदा मत बनो।

110. हम अपने आपको नियंत्रण में रखने का प्रयास करें दूसरा अपने आप नियंत्रण में आ जावेगा।

111. दूसरे को नियंत्रण में रखना कमजोरी है।

112. अपने को नियंत्रण में रखना अपने कोर्स की बात मानी जाती है।

113. भगवान् महावीर ने किसी पर शासन नहीं चलाया, वे आत्मानुशासन में लगे रहे।

114. नियंत्रण आस्था के ऊपर आधारित रहता है।

115. हम प्रतिष्ठा नहीं चाहते स्व में प्रतिष्ठित होना चाहते हैं।

116. पर की ओर जाना आक्रमण माना जाता है, स्व की ओर आना प्रतिक्रमण माना जाता है।

117. आत्मानुशासन ही परम शासन है, आत्मानुशासन से किसी को कष्ट नहीं होता लेकिन दूसरे पर शासन जमाने पर दूसरे को कष्ट अवश्य पहुँचता है।

118. किसी दूसरे पर शासन करने का भाव ही हिंसा है।

119. एक कार्य में लगे दूसरे कार्य के बारे में सोचना, चिन्ता करना अनुशासन हीनता मानी जाती है।

120. हम अपने पर अधिकार न रखकर दुनियाँ पर अधिकार जमाने का भाव करते हैं, यही संसार की जड़ है।

121. शिष्य और शीशी को डॉट अवश्य लगाना चाहिए। यदि शीशी में डॉट न हो तो माल सुरक्षित नहीं रह सकता।

अभिमान

122. अभिमान के साथ जो पुरुषार्थ करता है, उसे धिक्क ार हो, अभिमान अज्ञानी को ही होता है।

123. अपने अंदर झाँककर देखो, शांति मिलेगी, वरन् इस पर्याय की एक उम्र

होती है।

124. अहित की सामग्री के साथ जिसने अनुबंध कर लिया है, उसे क्लेश के अलावा और कुछ नहीं मिलेगा।

125. आज का युग अजीव तत्त्व की खोज में लगा हुआ है और जीव तत्त्व को भूल ही गया है।

126. जब तक अर्थ(धन)है, तब तक ही उसे सम्मान मिलता है। इस पर अभिमान मत करो।

127. शरीर तो नश्वर है वह छूटेगा ही, यह उसका स्वभाव है, इसलिए उसे अमर बनाने का प्रयास मत करो।

128. संसार में मात्र मृत्यु (काल) ही विजेता है, इससे कोई किसी की रक्षा नहीं कर सकता, मृत्युंजयी बनने वाला ही अपनी रक्षा कर सकता है।

129. वृक्ष से छूटा (टूटा) फल जन्म है और नीचे जमीन पर गिरा मरण है, यहाँ सदा स्थिर रहने वाला कोई नहीं है, शरीर में रहने का यह जीव आदी हो गया है इसलिए शरीर को छोड़ना नहीं चाहता, लेकिन सम्यग्दृष्टि सोचता है कि मैं शरीरातीत कब होऊँगा।

130. अनुभव ही काम आने वाला है, जीवन में मात्र किताबी ज्ञान कुछ उपलब्धि नहीं करा सकता है।

131. शरीर बदमाश है, अपने आपको जीव के रूप में दर्शाता है।

132. अलोकाकाश में तीन लोक बहुत छोटा दिखता है, आकाश में तारे के समान, लेकिन केवलज्ञान रूपी आकाश में अनंत लोकाकाश भी तारे की भाँति दिखाई देता है, फिर भी केवलज्ञानी अभिमान नहीं करते और यदि हम इस क्षयोपशम ज्ञान पर अभिमान करते हैं तो हँसी के पात्र हैं।

133. ठसका क्या है ? भोजन करते समय बोलने से भोजन जिस दिशा में नहीं जाना चाहिए उस दिशा में चला जाता है तो ठसका लग जाता है, ठीक वैसे ही हम मोक्षमार्ग की दिशा से विपरीत गये तो ठसका लगेगा ही।

134. आवागमन कम करने से साधना में निखार आता है।

135. हमारे गुणों का महत्त्व, मान कषाय के तृणवत् होने पर ही बढ़ता है।

136. शांतिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ भगवान् तीन-तीन पद के धारी थे, उन्होंने कभी अभिमान नहीं किया, इसलिए तीन लोक के नाथ बन गये।

137. सम्यग्दर्शन मद के कारण कभी भी नष्ट हो सकता है, इसलिए हमें अपने आपको मान कषाय से बचाये रखना चाहिए।

138. मान कषाय का अनुभाग सबसे ज्यादा पञ्चेन्द्रिय संज्ञी में ही पड़ता है।

139. तप, ज्ञान रूपी वृक्ष मानादि कषायों के कारण सूखने लगते हैं, इसलिए संयमी को हमेशा मानादि कषायों से सावधान रहना चाहिए।

140. त्यागी वस्तु याद है तो समझे कुछ छोड़ा ही नहीं वह अभी भी दिमाग में हैं।

141. जिसमें अभिमान का पुट हो ऐसा त्याग, त्याग नहीं माना जाता।

142. अभिमान करने से पुण्य भी पतला होने लगता है, इसलिए अभिमान नहीं करना चाहिए।

143. मान की भूख को छोड़ना महान् व्रत है। अपमान का अर्थ है, अपना नहीं अपनी मान कषाय का अपमान हो रहा है, इसे सहन करना भी महान् तपस्या है, इसमें मान कषाय का ही अभाव हो रहा है, अपना न मान होता है, न अपमान होता है, अपन तो ज्ञाता, दृष्टा आतमराम हैं। यह श्रद्धान होना बड़ा महत्त्वपूर्ण है, जिसके यह श्रद्धान आ गया वह समझता मोक्षमार्ग मिल गया।

144. जाति का मद करने से सामाजिक व्यवस्था भी बिगड़ जाती है और सम्यग्दर्शन में दोष भी लगता है।

145. यह जाति समाज व्यवस्था के लिए है, सम्यग्दृष्टि धर्म में इसका आग्रह नहीं करता।

146. जाति कुलादि देहाश्रित व्यवस्था है, जहाँ जाति का आग्रह होने लगता है, वहाँ पर रत्नत्रय धर्म गौण होने लगता है।

147. लघु बनना सीख लो, क्योंकि लघु बने बिना विराटता का अनुभव नहीं किया जा सकता।

148. जो मान/अपमान में रुष्ट-पुष्ट नहीं होते उन्हें नमन करो।

149. मान पंचेन्द्रियों के मालिक मन का विषय है।

150. हमारा ज्ञान बीज की छाया के समान है, जिसके नीचे चींटी तक नहीं बैठ सकती और केवलज्ञानी का ज्ञान वटवृक्ष की छाया के समान है।

151. स्वभाव में अभिमान नहीं होता, विभाव में ही अभिमान के अंकुर पैदा होते हैं, सम्यग्दृष्टि इन अंकुरों को सम्यग्ज्ञान की तर्जनी से उखाड़ देता है।

152. दूसरे के साथ अपनी तुलना करने से स्पर्धा के भाव उत्पन्न होते हैं, जो कि मान की ओर ले जाने वाली यात्रा है।

153. मान को छोड़ने से दुनिया का सम्मान उनके चरणों में आ जाता है, भगवान् के चरणों में दुनिया झुकती है, सबसे ज्यादा सम्मान उसे मिलता है, जिसके पास मान नाम मात्र भी नहीं है।

154. क्षमा, मार्दव आदि धर्म के कारण तप, ज्ञान के वृक्ष वृद्धि को प्राप्त होते हैं।

असंज्ञी

155. असंज्ञी कौन ? जो सुनकर भी, उपदेश पाकर भी हेय-उपादेय का विवेक नहीं रखता।

156. आगम को अच्छे ढंग से जानने वाला ही व्यवहार कुशल हो सकता है।

अंतर्दृष्टि

157. अंतर्दृष्टि अपने आप में महत्त्वपूर्ण होती है, जिसे वह प्राप्त है वह महान् पुण्यशाली है।

158. आरम्भ-परिग्रह पाप के कारण हैं, इन्हें शत्रु समझकर दूर से ही छोड़ दो, ये अपनी परिधि बाहर की भाँति है।

159. अपना चित्र अन्यत्व और कहीं नहीं है, अपने ही अंदर है, एक बार आँख बंद करके उसे देख तो लो।

160. दुनियाँ में सबसे बड़ा आश्चर्य यह है कि दुनिया उसी को अपना मानती है, जो कभी अपना न हो सका।

161. हमारा बड़प्पन कार्य के पहले ही प्रस्तुत हो जाता है और महान् व्यक्ति बड़े-बड़े कार्य करते जाते हैं, पर अपने मुख से कुछ नहीं कहते।

आयतन / अनायतन

162. जहाँ आकर हम शरण पाते हैं, वह आयतन है।

163. सम्यग्दर्शनादि गुणों का घर अथवा धारण करने का जो निमित्त है, उसको आयतन कहते हैं।

164. जो सम्यक्त्वादि गुणों से विपरीत मिथ्यात्व आदि दोषों के धारण करने का निमित्त है, वह अनायतन है।

165. गलत मार्ग और गलत मार्ग को मानने वाले एवं मिथ्या मार्ग का व्याख्यान करने वाले शास्त्र और उसको मानने वाले सेवक अनायतन कहलाते हैं।

166 तीन मूढ़तायें अनायतन के स्रोत हैं।

167. जो कर्म निर्जरा में सहायक नहीं है, सम्यग्दर्शन रूप धर्म के कारण नहीं है, उन्हें धर्म रूप मानकर चलना या लौकिक मान्यताओं को धर्म मानकर करना मूढ़ता है।

168. चरकादि ग्रन्थ के माध्यम से जानकारी प्राप्त कर साधुओं को औषधि दान किया और उनका रोग ठीक भी हो गया तो उस ग्रन्थ को धर्म-शास्त्र मान

लेना मूढ़ता में आवेगा।

169. जिनका आधार लेने से हमें मोक्षमार्ग में दृष्टि प्राप्त होती है, वह आयतन है।

170. वीतराग जो बने हैं, वे निश्चय में अनायतन नहीं हो सकते, बल्कि हमारी जो आत्मा राग-द्वेष मय है, वह निश्चय में अनायतन स्वरूप हो सकती है।

आस्था

171. आस्था के बल पर अंजनचोर भी निरंजन बन गया, आप भी इस मार्ग (मोक्ष) पर "आस्था" रखो, निरंजन बनने में फिर देर न लगेगी।

172. आस्था की अभिव्यक्ति हम चारित्र के माध्यम से ही कर सकते हैं।

173. आस्था डगमगाने से ही डर लगता है, आस्थावान तो निर्भीक होता है।

174. आस्था के बाद रास्ते पर चलने की बात होती है, बीच में नास्ता की माँग नहीं।

175. मोक्षमार्ग में आस्था ही ब्याना है, उसके बिना रत्नों की खरीदी नहीं होती, रत्नत्रय प्राप्त नहीं होता।

176. आस्था की धरती पर ही चारित्र का महाप्रासाद खड़ा होता है।

177. चारित्र को आस्था, धारणा के माध्यम से बल मिलता है।

178. मोक्षमार्ग में कुछ जबरन थोपना नहीं होता बल्कि अंतरंग से स्वीकारना होता है, इसी अंतरंग स्वीकृति का नाम आस्था है।

179. आस्था के माध्यम से मार्ग की पहचान हो जाती है, जब आस्था के माध्यम से मार्ग की पहचान हो जाती है तो फिर मार्ग एकदम सीधा हो जाता है।

180. वृक्ष का छायादार तना मूल पर ही आधारित है - पेड़ में ऊपरी अस्थिरता भले हो लेकिन मूल में कोई भी अस्थिरता नहीं रहती।

181. आस्था के कारण ही क्रिया, चारित्र बन जाती है और चरण पूज्य बन जाते हैं।

182. आस्था को शुद्ध निर्मल तेल की तरह बनाये रखो फिर आपके पास में अंधेरा आ ही नहीं सकता।

183. अवस्था न होते हुए भी आस्था से व्यवस्था करते जाना चाहिए।

184. आस्था में किसी काल में अंतर नहीं होता।

185. विश्वास (आस्था) के माध्यम से हम मूल स्वरूप तक पहुँच जाते हैं।

186. श्रद्धा की आँख से देखो तो वीतराग प्रभु दिखते हैं और ज्ञान के माध्यम से देखो तो हम प्रभु से भी बड़े दिखते हैं।

187. आस्था बहन है और ज्ञान उसका भाई है। बड़ी बहन से छोटा भाई माना जाता है। भाई का महत्त्व बहन से बढ़ जाता है ज्ञान और चारित्र को बढ़ाने वाली होती है-आस्था।

188. रास्ता चलने के लिए आस्था की आवश्यकता है, दिमाग की नहीं।

189. आस्था एक-सी रहती है, विचारों में भेद-भिन्नता रहती है। विचारों की तरंगें आस्था को क्षति पहुँचाने में कारण बनती हैं लेकिन सही आस्था वही है जो इन विचारों की तरंगों से प्रभावित नहीं होती सपनों को साकार बनाने के लिए मजबूत आस्था बनानी पड़ती है।

190. ज्ञान से, चारित्र से पेट नहीं भरता, आस्था के बिना भूख नहीं मिटती।

191. भाव प्रत्यय से ही यात्रा पूर्ण होती है।

192. जैनदर्शन में जानने से पूर्व मानने की बात कही गयी है, इसी का नाम आस्था है।

193. साधना श्रद्धा के माध्यम से आगे बढ़ती है।

194. सही-सही श्रद्धान आचरण के बाद बनता है।

195. आस्था के बिना जीवन में विकल्पात्मक प्रश्न हल नहीं किये जा सकते।

196. प्रयोग के बिना आस्था को मूर्तरूप प्राप्त नहीं होता।

197. अपनी शक्ति पर विश्वास रखो, अपने आप उत्साह जागृत हो जाता है।

198. श्रद्धान जिस पर है, उस पर प्रयोग करो, डरो मत, अच्छे ढंग से कदम रखिये पीछे की बात भूल जाइए।

199. यह श्रद्धान (आस्था) वह धरती है, जिस पर मोक्ष महल खड़ा होता है।

200. विश्वास का महत्त्व होता है मोक्षमार्ग में ज्ञान का नहीं, परख को नहीं विश्वास को महत्त्व दिया जाता है। मोक्षमार्गी के श्वांस-श्वांस में विश्वास भरा होता है।

201. विश्वास के अभाव में श्रेय और वात्सल्य समाप्त होता जा रहा है।

202. क्षमता व संकल्प श्रद्धान पर आधारित रहते हैं।

203. धर्म पर एक बार श्रद्धान हो जाता है तो सागर के स्थान पर चुल्लु भर संसार रह जाता है।

204. जहाँ श्रद्धान बना रहता है वहाँ थकावट का अनुभव नहीं होता।

205. विश्वास के माध्यम से हम मूल स्वरूप तक पहुँच जाते हैं।

206. अकेले आये थे, अकेले जाना है, यह तो याद रखते हैं पर कर्म साथ लाये थे और कर्म साथ ले जाओगे। यह श्रद्धान भी मजबूत रखना चाहिए।

207. आस्थावान ही इन धर्मक्षेत्रों को सुरक्षित रख सकता है।

आत्मा

208. आत्मा को उत्पन्न नहीं करना है, बल्कि उसमें जो अन्यथा भाव आ गया है, उसे हटाना है।

209. आत्मा श्वांस-निश्वांस के माध्यम से शरीर से बाहर जाने को आतुर है, इससे सिद्ध होता है कि शरीर का बंधन ''आत्मा'' को पसंद नहीं है।

210. तुम तो एक अरूपी आत्मा हो फिर बाह्य रूप से क्या ? स्वरूप को देखो।

211. आत्मा कालजयी है वह मृत्यु को भी जीत लेती है।

212. आत्मा ही अपना घर है, उसमें ही रहना चाहिए, इस जीव को दूसरे के घर (शरीर) में रहने की आदत पड़ गई है, इसलिए अपने घर में आने में कठिनाई जाती हैं।

213. आत्म-वैभव के सामने दुनियाँ के वैभव वैसे ही हैं, जैसे रत्न के सामने तृण्।

214. जो आत्म वैभव से ही आकृष्ट होता हैं अन्य पदार्थों से नहीं, उसका सारा दुःख समाप्त हो जाता है।

215. आत्मा को प्रकाशित करने के लिए अन्य पदार्थ की आवश्यकता नहीं पड़ती, आत्मा स्वयं स्व-पर प्रकाशी है।

216. आत्मा का ज्ञान हलुआ जैसा है, उसे हऊआ मत बनाओ।

217. आत्मतत्त्व रूपी दीपक को देखने के लिए अन्य दीपक की कोई जरूरत नहीं पड़ती।

218. इस आत्मवैभव पर एक बार विश्वास कर लो, फिर दुनियाँ का वैभव आपके चरणों में लोटने लगेगा।

219. आत्मतत्त्व की ओर जाते ही संसारगत सारी बातें औपचारिक-सी लगने लगती हैं।

220. आत्म सुख के सामने सभी दैहिक, मानसिक, शारीरिक, सुख कुछ भी मायना नहीं रखते।

221. आत्मा की महिमा को दिखाया नहीं जा सकता, बल्कि देखा जा सकता है, अनुभव किया जा सकता है।

222. बाह्य संसार को भूले बिना भीतर आत्मतत्त्व का सही आनंद नहीं आ सकता।

223. शरीर की चिकित्सा करने वाला घृणा नहीं करता, ज्यादा बोल भी नहीं सकता मन को अस्थिर नहीं कर सकता इधर-उधर नहीं देख सकता, ठीक उसी प्रकार आत्मा की चिकित्सा करने वाले को भी इससे भी अधिक गुण अपनाना चाहिए।

224. आत्मा हवा के समान है और शरीर गुब्बारा है, हवा के कारण गुब्बारे में हलन-चलन होती है।

225. इस अपवित्र शरीर के लिए धिक्कार तो है ही, लेकिन उससे ज्यादा इस आत्मा को धिक्क ार है, जो इस अपवित्र शरीर से मोह रखता है।

226. स्पर्श, रूप, रस व गंध से रहित आत्म तत्त्व का चिंतन दुर्लभ है, उसका अनुभव तो और दुर्लभ है।

227. आत्मतत्त्व में आसक्त व्यक्ति कभी शरीर में आसक्त नहीं हो सकता।

228. आत्मस्थ होकर जो बैठ जाते हैं, उन्हें कर्म का उदय कुछ नहीं कर पाता, उदय में आकर झड़ जाता है और नूतन कर्म बंध नहीं होता।

229. विपक्ष के रहते निश्चिंत रह नहीं सकते, हमेशा जागृत रहना पड़ता है, वैसे ही ''आत्मा'' के विपक्षी तत्त्व कर्म के रहते हमें शान्ति से नहीं बैठना चाहिए।

230. आत्मा की शक्ति कर्मों की शक्ति से बलजोर है तो भव्य को पुरुषार्थ करना चाहिए।

231. अंतरंग लक्ष्मी रूपी वैभव कोई लूट नहीं सकता, बाँट नहीं सकता, उस अनंत चतुष्टय रूपी लक्ष्मी के धनी जिनेन्द्र भगवान् हैं।

आत्महित

232. ''आत्महित'' की तरंगें हमारे जीवन में आज तक नहीं उठीं, यदि अब उठ रहीं हों तो समझना यह एक अभूतपूर्व घटना है।

233. आत्महित चाहने वाले को विषय-कषायों से हमेशा बचना चाहिए, संसार में सबसे बड़ा हित यदि कोई है तो वह है ''आत्महित''।

234. जो आत्महित नहीं कर सकता वह पर का हित भी नहीं कर सकता।

235. परहित में लगा हुआ व्यक्ति स्वहित में लगा है ऐसा समझना चाहिए, क्योंकि परोपकार से भी स्वोपकार होता है।

आत्मतत्त्व

236. जब तक आत्मा से कर्म नहीं छूटते तब तक वह देखने योग्य, अनुभवगम्य नहीं बन पाती।

237. जैसी भावना शरीर के प्रति है वैसी ही आत्मा के प्रति हो जावे तो मनोभावना पूर्ण हो जावेगी।

238. हमेशा हमारी दृष्टि वस्तुतत्त्व को पकड़ने वाली होनी चाहिए।

239. आत्मतत्त्व की अनुभूति के लिए शब्दोच्चारण की आवश्यकता नहीं है।

240. स्वरूप समझ लेने से अभिमान और दीनता समाप्त हो जाती है।
241. आत्मा का शुद्ध स्वरूप मुनि अर्हंत भगवान् भी नहीं हैं, सही शुद्ध स्वरूप तो सिद्ध भगवान् हैं।
242. जो दिख रहा है यह आत्मा का स्वरूप नहीं है। मैं दिखता नहीं हूँ, देखने वाला आता हूँ।
243. परिस्थिति नहीं बल्कि वस्तुस्थिति देखना चाहिए।
244. स्वरूप से वंचित होते हैं तभी हम कषाय करते हैं।
245. स्वरूप की ओर दृष्टिपात करने से विराटता दिखायी देती है।
246. उस आत्मतत्त्व के बारे में चिंतन करो, जिसमें हर्ष-विषाद नहीं होता जो कभी बिछुड़ता नहीं है।
247. हम सभी अंधे हैं, आत्मतत्त्व के बारे में, वह इन चर्म-चक्षुओं से दिखाई नहीं देता।
248. शरीर से कुछ प्राप्त होने वाला नहीं है अंदर की ओर, आत्मतत्त्व की ओर देखने से कुछ मिल सकता।
249. विराट स्वरूप सभी में विद्यमान है मात्र अंतस् की आँखें खोलने की आवश्यकता है।
250. सुख, शांति स्वभाव की ओर आने से ही प्राप्त होगी, दुनियाँ को जानने की ललक छोड़ दो।
251. स्वयं की चिकित्सा करने वाला ही सही डॉक्टर माना जाता है।
252. अध्यात्म वाले किसी कंडीशन को नहीं स्वीकरते वह तो आत्माश्रित रहते हैं। अध्यात्म वही है कि जड़ वस्तु के प्रति मोह कम हो जावे।
253. जिसे आत्मा की सम्पदा का ज्ञान हो जाता है, वह बाह्य सम्पदा को धूल के समान समझ कर छोड़ देता है।
254. यह आत्मा अनंत शक्ति का धारक है, यह एक सूत्र जीवन में ग्रहण कर लो।
255. राग के उजाले में राग की लौ में यह आत्मा रूपी पतंगा जल रहा है। यह संसारी प्राणी पतंगा की भांति भोगों के लिए अपनी आत्मा की आहूति देता रहता है। पतंगा बार-बार उसमें झुलस जाता है। मरण सम्मुख है फिर भी अगले भव की नहीं सोचता है।
256. ज्ञान, दर्शन, जानना, देखना ही मात्र आत्मा का काम है, इससे हटकर और कोई काम नहीं।
257. सही जीवन वही है जो देहातीत होता है।

258. अपने संवेदन के लिए अपने ही आत्म घर की ओर लौटना होता है।
259. तत्त्व दृष्टि हमेशा-हमेशा गंभीर हुआ करती है, इससे सारे तूफान शान्त हो जाते हैं, स्थिर दृष्टि वाला पैर लड़खड़ाने पर भी कभी गिरता नहीं है।
260. तत्त्व चिंतन से कभी भी प्रमाद पास नहीं आता।
261. स्व को पहचानना कठिन होता है, क्योंकि वह चर्म-चक्षुओं से दिखाई नहीं देता स्व की पहचान से जो दिख रहा है, उससे आकर्षण समाप्त होता है और स्व तत्त्व मिल जाता है।
262. श्रद्धान के साथ चेतन को जागृत करना होगा, क्योंकि चेतन की धारा भीतर से फूटती है बाहर से नहीं।
263. जिसका हमें संवेदन होता है, वही अपना है बाकी सब सपना है।
264. स्व के संवेदन के समय शारीरिक, मानसिक वेदना कम हो जाती है।
265. चेतना की विराटता के बारे में जिसे संवेदन होने लगता है उसे और कुछ अपेक्षा नहीं रहती।
266. लौह के साथ जैसे अग्नि की पिटाई हो जाती है,वैसे ही इस देह की सौवत में आत्मा की पिटाई हो जाती है। शरीर और आत्मा का अभेद सम्बन्ध हल्दी चूना जैसा है।
267. मुनिराज आत्मा की बात ही नहीं करते बल्कि आत्मा से बात भी करते हैं।
268. लौटने का नाम अध्यात्म है, भागने का नाम ज्ञान है।
269. ज्ञान के साथ इच्छा जुड़ी है, जानने का नाम ज्ञान नहीं बल्कि विशेष जानने का नाम ज्ञान है।
270. अध्यात्म हृदय का काम है, दर्शन मस्तिष्क का कार्य है।
271. अध्यात्म में जीने का काम होता है और दर्शन में मात्र देखने का काम होता है।
272. अध्यात्म में निकट से निकट का संवेदन होता है, जबकि दर्शन में मात्र बाह्य जड़ वस्तुओं में घूमने की बात होती है। दर्शन में स्वाद नहीं आता वह तो मात्र लेविल जैसा है।
273. जिनवाणी का सार शुद्धात्म तत्त्व है। ज्ञान प्राप्त करने के बाद रागद्वेष से युक्त आत्म तत्त्व को विभक्त कीजिये ।
274. मोह को कम करते जाओ भीतर आत्म तत्त्व प्राप्त हो जावेगा।
275. संसार में सबसे महत्त्वपूर्ण तो आत्म श्रद्धान है इसी में आनंद का अनुभव होता है।
276. आप अपने को अपने आईने में देख लो, अपने श्रद्धान के लिए किसी अन्य

वस्तु की आवश्यकता नहीं क्योंकि आत्मा संवेद्य भी है एवं संवेदक भी है।

277. स्व को पहचानने वाला अपना विकास कर लेता है।

278. अध्यात्म में सहानुभूति की नहीं बल्कि आत्मानुभूति की बात होती है।

279. मोक्षमार्ग में आत्म विश्वास महत्त्वपूर्ण है, इसी के आधार पर अंक मिलते हैं।

280. आत्मा के गुणधर्म अलौकिक हैं, अतुलनीय हैं, जिससे हम अनंतकाल से वंचित रहे हैं।

281. राम नाम सत्य होने से पूर्व आत्मतत्त्व की बात सोचो।

282. अध्यात्मनिष्ठ जीवन जीने से ही भारत सभी राष्ट्रों का गुरु माना जाता है। आज अध्यात्म इसलिए भूलते जा रहे हैं कि पश्चिमी हवा की ओर बढ़ रहे हैं।

283. सारी समस्याओं का समाधान है, अपने आप का बोध होना।

284. आत्मा से प्राप्त आनंद का स्वाद लेने वाला कर्मोदय जनित सुख-दुःख का स्वाद नहीं लेता।

आत्मानुभूति

285. रत्नत्रय की आराधना में लीन होने वाले को ही आत्मानुभूति होती है।

286. आत्मानुभूति स्मरण और श्रवण का विषय नहीं है, मात्र आत्मरमण का विषय है।

287. अक्षर ज्ञान के साथ आत्मसाक्षात्कार का सम्बन्ध है ही नहीं।

288. पाँच इन्द्रियों के माध्यम से उपयोग बाहर आना बंद हो जायेगा तो उपयोग आत्मा की ओर आ जायेगा।

289. अपनी ओर उपयोग को लाने के लिए यह देशावकाशिक व्रत लिया जाता है, इस प्रकार के संकल्प लेने से उपयोग अंतर्मुखी हो जाता है।

290. विश्वास को जैसे दिखाया नहीं जा सकता, वैसे ही अनुभूति को दिखाया नहीं जा सकता।

291. शुद्धात्म का संवेदन जिसे नहीं हुआ वह इससे विपरीत संसार दुःख का संवेदन कर रहा है।

292. शुद्ध तत्त्व का ध्यान किया जा सकता है, पर शुद्ध तत्त्व का ध्यान करने वाला अशुद्ध ही होगा।

293. जो स्वसंवेदन में आ रहा है, वह दूसरे के ज्ञान का विषय नहीं बन सकता।

294. अध्यात्म में संतोष रहता है क्योंकि वह पराश्रित नहीं होता।

295. संवेदन का प्रदर्शन कला के माध्यम से नहीं किया जा सकता।

296. बारहवें गुणस्थान तक विश्वास रखना होता है, उसके बाद आत्मा की अनुभूति होती है, मार्ग में अनुभूति नहीं होती।

297. आत्म साक्षात्कार के बिना व्रत आदि का पालन करना कोल्हू के बैल जैसी यात्रा है।

298. आत्म साक्षात्कार के बिना साधु जीवन व्यर्थ है।

299. आत्म स्वरूप की ओर देखने से शक्ति जागृत हो जाती है और आत्म-संतुष्टि प्राप्त होती है।

300. अध्यात्म कहता है दूसरे को दुःख बताने से और बढ़ता है, इस बोझ को उतार दो, वर्तमान में जीना सीखो।

301. मोही को अध्यात्म सुनाना काले रंग पर केशरिया रंग पोतने के समान है जो कभी दिख ही नहीं सकता। उस पर कोई असर ही नहीं पड़ता।

302. अध्यात्म पालन करना बहुत सरल है, क्योंकि यह स्वाश्रित है एवं प्रयोग का विषय है।

303. आत्म तत्त्व का परायण करने वाला पंचेन्द्रिय विषयों का रस छोड़ देता है, पंचेन्द्रिय के विषय खली के समान है और आत्म तत्त्व चिंतामणि रत्न के समान है।

304. बाह्य बिम्ब, भेष, प्रवेश द्वार है, अध्यात्म तो अंदर हैं।

305. शरीर के साथ-साथ आत्मा का परिणमन ही सही परिणमन है।

306. दिगम्बरत्व चश्मे के समान है, उसी से आत्म तत्त्व दिखेगा, लेकिन चश्मे में ही दृष्टि मत अटकाओ, दृष्टि को उससे पार ले जाओ।

307. वस्तु स्वरूप ज्ञात होते ही सप्तभय से मुक्त हो जाता है, वह सोचता है जो होगा वह कर्म के अनुसार ही होगा कोई कुछ नहीं कर सकता।

आत्मानुशासन

308. पर वस्तुएँ कभी भी राग-द्वेष प्रदान नहीं करती, ऐसा अगाढ़ श्रद्धान रखना ही ''आत्मानुशासन'' है।

309. दूसरे की आलोचना, प्रशंसा की ओर ध्यान ही नहीं देना, यह संसार बाजार है, इसमें मत लुटना।

310. आत्मा के स्वभाव के अनुरूप चलना ही 'आत्मानुशासन' कहलाता है।

311. ''आत्मानुशासन'' से रहित व्यक्ति शासन-प्रशासन को शासित नहीं कर सकता है। यह तात्कालिक कटु है, लेकिन इसका विपाक (फल) अति

मधुर है।

312. आगम को अच्छे ढ़ंग से जानने वाला ही व्यवहार कुशल हो सकता है।

313. इन्द्रिय और मन को पुष्ट न होने देना ही "आत्मानुशासन" है।

314. डॉट के बिना शिष्य और शीशी का भविष्य ही क्या ?

315. डॉट अर्थात् ढक्क न न हो तो शीशी की सामग्री फैल सकती है और शिष्य को डॉटा न जाए तो बिगड़ सकता है।

आज्ञा

316. आज्ञा देना आज्ञा पालने से भी कठिनतम कार्य है।

317. गणधर परमेष्ठी भी आज्ञा सम्यक्त्वी होते हैं।

आशा

318. जैसे आकाश में एक तारा है वैसे ही "आशा रूपी गर्त में सारा विश्व उस तारे के समान है।

319. आशा रूपी गड्डा कभी नहीं भरता।

320. किसी भी चीज की आशा न रहे, इस प्रकार की सभ्यता आना बहुत कठिन (दुर्लभ) है।

321. बार-बार उपदेश सुनने के बाद भी यदि आपको वैराग्य नहीं आता है तो समझना चाहिए कि आपके ऊपर आशा-तृष्णा रूपी देवी की कृपा है।

322. आशाओं की पूर्ति के लिए घर बस जाता है और मकड़ी की तरह यह जीव फँस जाता है।

323. आचार्य श्री ज्ञानसागरजी महाराज कहते थे जो गृहस्थी में फँस गया वह उस हाथी की तरह है, जो बलवान होकर भी कीचड़ में फँस जाता है।

324. बारहसिंगा घास की आशा के कारण झाड़ियों में फँसता जाता है, वैसे ही यह प्राणी सुख की आशा में गृहस्थी में फँसता जाता है।

325. आशा-तृष्णा पर नियंत्रण धन से नहीं बल्कि धर्म से ही किया जा सकता है।

326. चाह के रहते हुए संतोष प्राप्त नहीं हो सकता।

327. साधु संसार में रहकर भी चाह रहित है, वे संसार में जल से हरे-भरे तालाब की भाँति है, जिसमें चाह की दाह प्रवेश नहीं कर सकती। कुछ नहीं चाहिए वश यही मोक्षमार्ग है।

328. संसार रूपी जंगल में चाह रूपी दाह से प्राणी जल रहा है।

329. आवश्यकता कभी समस्या नहीं बनती बल्कि अनावश्यकता ही समस्या

की जननी है।

330. विषयों की आकांक्षा हो जाने से सम्यग्दर्शन का एक पैर टूट जाता है।

331. मोक्षमार्ग सम्बन्धी अभिलाषा बढ़ना चाहिए, न कि विषयों सम्बन्धी।

आयुकर्म

332. आयुकर्म किसी के साथ पक्षपात नहीं करता, भगवान् को भी उस भव में मरण करना पड़ता है, भले ही वह पंडित-पंडित मरण कहलाता है।

333. मरण को कोई नहीं रोक सकता, इसलिए मरण की नहीं बल्कि रोग की चिकित्सा की जाती है।

334. अकालमरण को औषधि के माध्यम से रोका जा सकता है।

335. जैसे राहु, सूर्य और चन्द्रमा को ग्रास बना लेता है, वैसे ही यह मृत्यु सभी जीवों को ग्रास बना लेता है।

336. जैसे वोट डालते समय यह जीव अकेला रहता है, वैसे ही कर्मोदय को यह जीव अकेला ही भोगता है।

337. शरीर और आयु की स्थिरता कभी खत्म नहीं हो सकती, इसलिए हमें स्थिरता का प्रयास न करके, मिले हुए समय में आत्मा की साधना करनी चाहिए।

338. शरीर को कितना भी खिलाओ-पिलाओ, लेकिन वह कभी भी आपका (आत्मा) का साथ नहीं देगा, वह तो मात्र आयु का ही साथ देगा।

339. आयुकर्म का संबंध काल से नहीं होता बल्कि कर्म के निषेकों से रहता है।

340. आयुकर्म की जिससे उदीरणा हो, वैसे कार्य कभी नहीं करना चाहिए, यत्नाचार पूर्वक ही कार्य करना चाहिए।

341. उदीरणा में आयुकर्म के निषेक ज्यादा खिरते हैं, सप्तम गुणस्थान में मुनि महाराज की आयुकर्म की उदीरणा रुक जाती है।

342. वेदना कषाय समुद्घात के द्वारा आयु कर्म का अपव्यय होता है।

आराध्यदेव

343. हमेशा हमारे चित्त का विषय हमारे आराध्यदेव ही होना चाहिए।

344. करो सो काम, भजो सो राम, सुनो आत्माराम।

इ

इन्द्रिय

345. व्यापार इन्द्रियाँ नहीं करती आत्मा व्यापार करती है, इन्द्रियाँ व्यावृत होती

है, इन्द्रियों का व्यापार बुद्धिपूर्वक होता है, आँखों की पलक का झपकना, नाड़ी का फड़कना, श्वसन क्रिया रक्त संचार का होना अबुद्धिपूर्वक है।

346. नेत्र और कर्णेन्द्रिय बहिर्मुखी होने के लिए सरल साधन है।

347. इन्द्रियाँ नियत स्थान और नियत विषयी ही होगीं, किन्तु मन का कोई नियत स्थान और विषय नहीं।

348. संपूर्ण शरीर में नहीं बल्कि शरीर की सतह पर स्पर्शेन्द्रिय है।

349. मन और इन्द्रिय का व्यापार आकुलता का प्रतीक है।

350. पंचेन्द्रियों के विषयों में रस लेने वालों को स्वानुभव प्रत्यक्ष नहीं होता, स्वानुभव प्रत्यक्ष का अनुभव करने के लिए इन्द्रिय विषय कषायों से ऊपर उठना अनिवार्य है।

351. सौधर्म इन्द्र इन्द्रिय के विषयों से ऊपर नहीं उठ पाता, इसलिए उसे जौंक की उपमा दी है, जिस प्रकार जौंक गाय के स्तन के पास रहकर भी दूध न पीकर खून ही पीती है।

352. पंचेन्द्रिय जीवों में जो देखने में आती है वह आनपान कहलाती है। जो एकेन्द्रिय एवं त्रस विकलेन्द्रिय हैं, उनकी क्रिया श्वसन की देखने में नहीं आती, वह श्वासोच्छ्वास कहलाती है।

353. अपने स्वरूप को छोड़कर जब आत्मा बाहर आती है तो इन्द्रिय व्यापार होता है।

354. पंचेन्द्रिय के विषय आकर्षण के विषय इसलिए बने हैं क्योंकि ये संसारी प्राणी के लिए स्पष्ट एवं प्रत्यक्ष हैं।

355. संसार का पंचेन्द्रिय सुख श्वान की हड्डी चबाने जैसा ही है।

356. पंचेन्द्रिय विषयों की ओर जो रास्ता जाता है वह बड़ा खतरनाक है, वह नरक रूपी गड्ढे में गिरा देता है।

357. इन्द्रिय सुख को सुख मानना महान् अपराध है।

358. अंधों में भी महान् अंधा वह है जो इन्द्रिय विषयों में आसक्त रहता है।

359. विषयाशक्त की इन्द्रियाँ और मन वस्तु के स्वरूप को नहीं जान पाती।

360. इन्द्रिय के विषयों में सुख ढूंढना रेत को पेलकर तेल निकालने जैसा है। जीवन की इच्छा रखकर विष का पान करना है। ये सब मोह के कारण हुआ करते हैं।

361. जो पंचेन्द्रियों के विषयों में लगा है, वह समझना ततूरी (गर्मी से संतप्त भूमि) में भटक रहा है, उसे कभी भी शांति नहीं मिल सकती।

362. पंचेन्द्रियों का व्यापार आपकी मानसिकता का परिचायक है।

363. यह जीव स्वयं इन्द्रिय और मन का दास बनकर उनकी पूर्ति करता रहता है, इसलिए दुःखी बना रहता है।

364. आप इन्द्रियों के दास बने हुए हैं, इसलिए बरसात में आप वाटरप्रूफ पहनते हो, सर्दी में एयरटाइट पहनते हो और गर्मी में एयर कंडीशनर इसलिए आपके जीवन में पापों का ही विकास हो रहा है। आप इन्द्रिय और मन के नौकर मत बनो, गर पाप से बचना चाहते हो तो इनको वश में करो।

365. रूप को देखने वाली, आँखें महत्त्वपूर्ण नहीं हैं, बल्कि जो स्वरूप को दिखावें, वे ही आँखें महत्त्वपूर्ण हैं।

366. इन्द्रिय व्यापार करने से पाप का बंध होता है।

367. पंचेन्द्रिय के विषय हमेशा अपकारक ही होते हैं।

368. यदि स्त्री आपका एक बार अपकार कर दे तो आप उसे छोड़ देते हो, लेकिन इन पंचेन्द्रिय के विषयों को क्यों नहीं छोड़ देते ? जबकि ये हमेशा ही अपकार करते रहते हैं।

369. जीव के पास इन्द्रिय रूपी पाँच खिड़कियाँ हैं, जिनमें से विषय चोर आते रहते हैं और मन सिंहद्वार के समान है, विषय रूपी चोरों को रास्ता दिखाता रहता है।

370. पंचेन्द्रिय रूपी विषयों से यदि यह वैराग्य सम्पदा लुट जाती हो तो उन्हें वश में करो, वरन् स्वयं की एवं धर्म की बदनामी होगी।

371. पंचेन्द्रिय निग्रह किये बिना जो ध्यान करना चाहता है वह सिर से पहाड़ तोड़ना चाहता है, लेकिन पहाड़ नहीं फूटेगा, बल्कि सिर ही फूट जायेगा।

372. साधु को, ज्ञानी को इन्द्रिय रूपी चोरों से हमेशा बचकर रहना चाहिए, क्योंकि उनके पास सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र रूपी रत्न हैं।

373. इन्द्रिय चोर चारों ओर घूम रहे हैं और मन इनका मुखिया है, जो इन्हें रास्ता बताता है।

374. पंचेन्द्रिय सुख से आत्मा कभी तृप्त नहीं होती बल्कि संतप्त होती है।

375. संसार में पंचेन्द्रिय और मन के विषयों के अलावा और है ही क्या, जिसके इस काल में ये विषय और नाम की कामना छूट गई समझो वह इस काल में केवली से कमी नहीं।

376. जो पंचेन्द्रिय विषयों से ऊब जाता है, ऊपर उठ जाता है वह सम्यग्दृष्टि हो जाता है।

377. पंचेन्द्रिय विषयों के त्याग बिना अमूर्त आत्मतत्त्व का ध्यान नहीं किया जा सकता।

378. इन्द्रिय विषयों को छोड़े बिना जो व्यक्ति आत्मा के ध्यान की बात करता है, लगता है उसे वात का रोग हो गया है।

379. इन्द्रिय सुख-भोग और मोक्ष का उपाय-योग दोनों एक साथ नहीं हो सकते।

380. पंचेन्द्रिय विषयों से नफरत मत करो, बल्कि उनसे बचकर युक्तिपूर्वक कर्म की निर्जरा करो।

381. इन्द्रिय सुख को तुच्छ कहा है, तुच्छ का अर्थ महत्त्वहीन और इसी महत्त्वहीन सुख के लिए संसार में घोर संघर्ष चलता रहता है क्योंकि भोग्य सामग्री सीमित है और एक-एक व्यक्ति की इच्छाएँ असीमित हैं।

382. जो इन्द्रिय सुख में आनंद लेता है वही एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय जीवों का घात करता है और मरण कर स्वयं एकेन्द्रिय आदि पर्यायों में जन्म ले लेता है।

383. स्पर्शेन्द्रिय में हाथी, रसना इन्द्रिय में मछली, घ्राणेन्द्रिय में भौंरा और चक्षु इन्द्रिय में पतंगा एवं कर्णेन्द्रिय में हरिण अपने प्राण गंवा देते हैं। जब एक-एक इन्द्रिय के विषय सुख में फँसकर ये प्राणी अपने प्राण गँवा देते हैं तो यह पंचेन्द्रियों के विषयों में जो आसक्त है उसकी क्या दशा होगी?

384. संसार में किसी भी गति में खोजो पंचेन्द्रिय के विषय वे ही मिलेंगे, क्योंकि प्रत्येक इन्द्रिय के विषय नियत हैं।

385. पंचेन्द्रिय विषयों को बार-बार भोगा है, लेकिन फिर भी अज्ञानी को यह विश्वास नहीं होता कि मैंने इन विषयों को बार-बार भोगा है, इसलिए उन्हें छोड़ नहीं पाता। जिन्होंने इन्द्रियों को नहीं जीता उनके जप, तप निष्फल हैं।

386. यदि इन्द्रिय और मन वश में हो गया फिर मुक्ति दूर नहीं।

इच्छा

387. भोगों की इच्छा रखने से आगे मिलने वाले भोग भी नहीं मिलते।

388. इच्छाएँ अनंत हैं और पदार्थ सीमित हैं, अतः इच्छाएँ कभी पूर्ण नहीं हो सकती।

389. तप रूपी अग्नि के माध्यम से ही इच्छाओं को जलाया जा सकता है।

390. इच्छा का परिमाण ही परिग्रह का परिमाण है।

391. संसारी प्राणी इच्छा का विकास तो कर सकता है लेकिन इच्छा का निरोध

भव्य पुरुष ही कर सकता है।

392. दृष्टि का सम्यक् हुए बिना इच्छाओं का निरोध नहीं हो सकता।

393. जो इच्छा/चाह को छोड़ता है, उसके चरणों में दुनियाँ आना चाहती है।

ईर्ष्या

394. जहाँ पर ईर्ष्या है, वहाँ पर मान अवश्य रहता है, भाव हिंसा भी होती है, वहाँ असत्य भी रहता है और मूर्च्छा भी।

395. ईर्ष्या, स्पर्धा आदि कषाय के ही अंश हैं, क्योंकि इनसे मान को धक्का लगता है।

उ

उपकार

396. इस काल में दूसरे को संभालना तूफान में दूसरे का हाथ पकड़ना है, वह तो जावेगा ही तुम भी चले जाओगे।

397. आज उपकार करना बड़ा कठिन कार्य है।

398. यदि हमारे उपादान में नहीं है तो देव भी कुछ भी उपकार नहीं कर सकते। देव तो मात्र निमित्त बन सकते हैं, आपके उपादान के अनुरूप निमित्त के रूप में काम कर सकते हैं।

399. धर्म में उल्लास होने से रक्त प्रवाह बढ़ता है और हतोत्साहित होने से घटता है।

उपदेश

400. जिसका उद्देश्य मात्र उपदेश देना ही है, इसलिए शास्त्र स्वाध्याय करता है तो वह सब्जी में पड़ी चम्मच के समान है, जो स्वयं कुछ भी स्वाद नहीं ले पाती।

401. उपदेश देने वाला चारित्रवान् होना चाहिए, वरन् उसका कोई असर नहीं पड़ता।

402. उपदेशक कभी भी सामने वाले को न उलझाये और न ही कभी अपना प्रभुत्व दर्शाये।

403. करुणा के बिना वक्ता का स्वभाव सही नहीं माना जाता, क्योंकि करुणा से भींगे शब्द ही असरकारक हुआ करते हैं।

404. गरजने और बरसने वाले बादल बहुत होते हैं, लेकिन भीतर से आर्द्र पानी बरसाने वाले दुर्लभ होते हैं, वैसे ही उपदेश सभी लोग देते हैं, लेकिन कल्याण

का उपदेश देने वाले दुर्लभ हैं, या यूँ कहो अनुभूति की कड़ाई में से तलकर आ रहे शब्दों में से उपदेश देने वाले कम होते हैं, एक बात हमेशा ध्यान रखना मानसूनी वर्षा ही लाभप्रद होती है, सामान्य वर्षा नहीं।

405. जिन्हें अंर्तदृष्टि प्राप्त नहीं है, उन्हें बारह भावना का उपदेश अच्छा नहीं लगता, जवानी में बारहभावना अच्छी लगनी चाहिए, बुढ़ापे में अच्छी लगी तो क्या ?

406. उपदेश उसे दिया जा सकता है, जिसकी धारणा कमजोर पड़ रही हो।

407. जैसे उबलते हुए दूध में जामुन डालने से दही नहीं जमता, दूध को ठण्डा होना चाहिए, वैसे ही चतुस्थानी के उदय में उपदेश काम नहीं करता, द्विस्थानी का उदय चाहिए, तभी उपदेश का असर पड़ेगा।

408. तर्क के माध्यम से युक्ति पूर्वक समझाने से एवं स्वयं समझने से भगवान् की आज्ञा का पालन होता है।

409. हेय-उपादेय दोनों की जानकारी के बिना उपादेयभूत तत्त्व को हम नहीं पा सकते।

410. उपदेश सुनना बहुत सरल है, यदि कठिन है तो उस उपदेश को स्वयं अपने जीवन में उतारना।

411. श्रमणत्व को प्राप्त नहीं कर पा रहे हैं इतना स्वाध्याय/उपदेश करने के उपरान्त भी, क्योंकि विशेष ज्ञान का उपयोग करने के लिए विशेष पुण्य की आवश्यकता होती है।

412. स्वाध्याय को, उपदेश को व्यवसाय का कारण बनाने वालों को समयसार का स्वाद नहीं आ सकता, क्योंकि परमार्थ के साधन को अर्थ का साधन बना लिया है।

413. देव, शास्त्र एवं गुरु के माध्यम से रत्नत्रय की उपलब्धि होती है, फिर रत्नों की इच्छा नहीं रखना चाहिए। भगवान् ने गृहस्थावस्था में उपदेश नहीं दिया और आज गृहस्थ उपदेश दे रहे हैं।

414. सर्वप्रथम आचार-शास्त्र का ही उपदेश दिया है जिसमें दया, अनुकम्पा की बात कही है। इसी से धर्म की शुरुआत होती है।

415. आज उच्चारण तो हो रहा है पर उच्च आचरण नहीं हो रहा।

416. स्वार्थसिद्धि के लिए उपदेश नहीं होता, हितकारी होना चाहिए वही उपदेश की संज्ञा पाता है।

417. दया से रहित उद्‌बोधन मात्र उच्चारण माना जाता है, उपदेश नहीं।

418. धर्म का ज्ञान नहीं पान करिये।

419. संकेत को समझकर अमल करना महत्त्वपूर्ण है, जो आत्म कल्याण के बारे में संकेत नहीं समझता उसे कोई केवलज्ञानी समझा नहीं सकते।

420. जो अपने हित की इच्छा रखता है उसे उपदेश कार्यकारी हो सकता है। जैसे माँ गर्भस्थ शिशु को जो भोजन अनिवार्य हो, वही स्वयं भोजन करती है जिससे गर्भस्थ शिशु का पालन होता है।

421. भोजन जल्दी जल्दी मत करो वरन् पचेगा नहीं ? कम/अधिक खाने से कोई मतलब नहीं, पचाना महत्त्वपूर्ण है। पचाने का अर्थ जिनवाणी का मायना, अर्थ क्या है यह समझना और उसे समझकर चारित्र में लाना।

422. अर्थ समझने का, प्रयोजन के अभाव में कोई अर्थ नहीं है।

423. श्रुत का अर्थ समझने के लिए, प्रयोजन ज्ञात करने के लिए गुरु की आवश्यकता पड़ती है। क्योंकि प्रयोजन सिद्ध होता है तो तृप्ति का अनुभव होता है।

424. रसोई बनाना अलग है उसको चखना/ स्वाद लेना अलग है।

425. चम्मच बनना चाहते हो तो स्वाद नहीं आवेगा। सुबह से शाम तक जिस चम्मच के माध्यम से दूसरे को खीर परोसी जा रही है, उस चम्मच को खीर का स्वाद तक नहीं आता। जिसको स्वाद आ रहा है सही मायने में वही सच्चा आराधक है (जिनवाणी का) बाकी सभी चम्मच के समान है।

426. आज पुस्तक पर मूल्य और आ गया अब पैसा ही दिख रहा है समयसार नहीं। पुस्तक में समयसार नहीं दिख सकता, क्योंकि जो रत्नत्रय से विभूषित आत्मा है वही जीवित समयसार है।

427. भावश्रुत ही महत्त्वपूर्ण है वही आत्म स्वरूप का स्रोत है चम्मच के बिना रसोई नहीं बनती ? लेकिन बाद में स्वाद चम्मच से नहीं जीभ से आवेगा। यदि उपयोग और कहीं अटका है तो जीभ में स्वाद नहीं आवेगा। साकार उपयोग के साथ ही उसका भाव-भाषन होता है। मात्र द्रव्य श्रुत से कोई लाभ नहीं होगा। आत्मशुद्धि के लिए प्रयोजन शुद्ध होना चाहिए।

428. तोता समझदार निकला संतों की वाणी सुनकर 24 घंटे में पिंजरे से मुक्त हो गया। बाहर से सोये बिना पिंजड़े के दरवाजे खुल नहीं सकते, ऐसा गुरु का उपदेश तोते ने आत्मसात् कर लिया था।

429. कुछ समझदार होकर भी बोलते नहीं, क्योंकि बोलना न बोलना समझदारी का आधार नहीं है।

430. उपदेश भी वही सही है जिससे बंधन मुक्त हो सकें।
431. पूर्व संस्कार के अनुसार चलोगे तो उपदेश कोई प्रभाव नहीं करेगा।
432. द्वादशांग श्रवण करने की अपेक्षा से है, इष्ट प्रयोजनभूत उपदेश तो थोड़ा-सा ही होता है।
433. जिनवाणी का प्रकाश हमें अंधकार में बिजली की कौंध (चमक) जैसा मिल गया है, इतना पर्याप्त है कई भव्य जीवों को वरदान सिद्ध हो गया।
434. उपदेश से उसी का बेड़ा पार होता है जो सछिद्र नहीं होता।
435. जो उपदेश देते हैं, उन्हें यह अवश्य समझना चाहिए कि उपदेश ग्रहण करना महत्त्वपूर्ण है देना नहीं। देशना (लब्धि)का लाभ हो तो सम्यग्दर्शन प्राप्त होता है। इससे सिद्ध होता है उपदेश देने से नहीं, लेने से कल्याण होता है।
436. वस्तु तत्त्व को न समझने वाला ही संकल्प-विकल्पों में उलझता है इसलिए तत्त्व का परायण करने के लिए स्वाध्याय का नियम लें। सही धन आत्म तत्त्व है शास्त्र के माध्यम से उसी दिव्य तत्त्व का ज्ञान होता है। तत्त्व विज्ञान की पहचान कहीं अन्यत्र नहीं मिलती।
437. स्वाध्याय से संघर्ष का समापन होना चाहिए।
438. हम दूसरे को बुरा न कहकर अच्छा क्या है, यह और जानने का प्रयास करें।
439. ज्ञान भावना का फल आलस्य का त्याग होना है, जो आलस्य का त्याग किये हैं, वह हमेशा स्वाध्याय कर रहा है।
440. आलस्य का त्याग है तो स्वाध्याय जीवित है, ध्यान में है।
441. आलस्य का त्याग नहीं हुआ तो स्वाध्याय का फल नहीं मिला, ऐसा समझना चाहिए।
442. समयसार की एक गाथा जीवन में उतर जावे तो जीवन गाथा ही बदल जावेगी।
443. स्वाध्याय का प्रयोजन ख्याति, लाभ प्राप्त करना मत रखो यह और ऐसा पाप बंध कराएगा, जो वज्रलेप के समान होगा हजार वर्ष तक उखड़ेगा नहीं। क्षणिक जीवन को चलाने के लिए कितने पाप करोगे ? इसके बारे में भी जरा सोच लो।
444. अंधे को समझाया जा सकता है, लेकिन अज्ञान अंधकार में पड़े हुये को नहीं। जैसे बच्चे पानी में बुदबुदे उठाते हैं, स्वयं नली से निर्माण करते हैं सत्य क्या है बच्चे जानते हैं लेकिन आनंद फूटने बनने में ही मानते हैं।
445. स्व को शास्त्र बनाना चाहिए जिसे भाव श्रुत कहते हैं, जिसका अंतरंग

शान्त होता चला जाता है, उसी को भावश्रुत प्राप्त होता है।
446. दूसरे को उपदेश देना दुनियाँ में सबसे सरल कार्य है।
447. जिनवाणी माँ बुलाती-बुलाती चली गयी अब खुरचन बची है, अब खरोंच कर खाओ।
448. उपदेश अपने देश (आत्मा) में आने के लिए होता है।
449. खोज पढ़ने और खोज करने में बहुत अंतर होता है।
450. अभी तो नींव में है, कलशा चढ़ाना बहुत दूर है, लेकिन यह कार्य अपने द्वारा ही सम्पन्न होना है।
451. स्वाध्याय धर्मोपदेश से प्रारम्भ नहीं करना चाहिए बल्कि वाचना से प्रारम्भ करना चाहिए। वाचना का अर्थ होता है प्रदान करना अर्थात् प्रदान करने का नाम वाचना है। शुद्ध शब्द, अर्थ एवं भाव प्रदान करना, तत्त्व निर्णय के बारे में बड़ों से पूछना। वाचना गुरु के सान्निध्य में ही होती है।
452. एक बार उजाला मिल गया तो फिर अनंतकालीन अंधकार दूर हो जावेगा।
453. मंजिल दूर नहीं है बस दिशाबोध मिल जावे, फिर कदम बढ़ाते ही मंजिल मिल जावेगी।
454. आकाशवाणी को नहीं बल्कि चिर-आकाश से फूटने वाली दिव्य-ध्वनि को सुनो।
455. जिनागम के माध्यम से ही धारणा बनानी चाहिए गलत उद्देश्य बनाकर प्रवचन नहीं करना चाहिए। वरन् वह उपदेश अंधकार में ले जावेगा।
456. निरीहता के साथ वस्तु तत्त्व का प्रतिपादन करोगे तो जिनधर्म की अच्छी प्रभावना हो सकती है।
457. धर्मोपदेश से यदि किसी की दृष्टि बदल जाती है तो बहुत बड़ा काम हो जाता है।
458. अपने जीवन को ही उपदेश मय बनाइए।

उपयोग

459. आत्मा और उपयोग का सम्बन्ध स्वर्ण से पीलापन के समान है।
460. आत्मा सोना है और उपयोग पीलापन है, जो एक दूसरे से पृथक् नहीं रह सकते।
461. शुद्धोपयोग ध्यान की परिणति है और केवलज्ञान, ज्ञान की पर्याय या परिणति है, क्योंकि कुछ पर्यायें सादि अनंत होती है, केवलज्ञान सादि अनंत पर्याय है और शुद्धोपयोग सादि सान्त पर्याय है।

462. आत्मा को विकल्प कराने वाला ज्ञानोपयोग है और आत्मा को समाधि की साधना में ले जाने वाला दर्शनोपयोग से ही आती है, ज्ञानोपयोग से नहीं।
463. अशुभोपयोग से निवृत्ति होना रात्रि का समापन है और शुभोपयोग में प्रवृत्ति होना भोर होना है और शुद्धोपयोग दिन का प्रकाश है।
464. शुभोपयोग में बैट घुमाओ और बाल (गेंद)दूर गई तो अवसर मिलते ही शुद्धोपयोग रूपी रन बना लेना चाहिए, ध्यान रखना शुभोपयोग की रेखा से बाहर खेलने नहीं जाना, जिस खिलाड़ी का बैट हाथ से छूट जाता है, वह अच्छा खिलाड़ी नहीं माना जाता है।
465. शुद्धोपयोग में प्रतिकार नहीं होता मात्र प्रतीति रह जाती है, इसलिए प्रतिकार नहीं करना जो आया, उसे स्वीकार करो।
466. हमारे उपयोग का विषय तत्त्वचिंतन बने, पंचपरमेष्ठी बने, विषय/कषाय भूलकर भी न बने।
467. गरम दूध में गिरा छोटा-सा तिनका जैसे चारों ओर घूमता है वैसे ही शरीर में कोई रोग हो जाये तो उपयोग तिनके की भाँति उसी की ओर जाता रहता है।
468. शुभोपयोग साधन रूप एकदेश उपादेय हैं और शुद्धोपयोग केवलज्ञान का साधनरूप उपादेय है।
469. उपयोग में जो विकार उत्पन्न होता है, वह आत्मतत्त्व को छोड़कर अन्य पदार्थों की ओर जाने से होता है।
470. शुभोपयोग, शुद्धोपयोग का कारण है और शुद्धोपयोग केवलज्ञान का कारण है।
471. शुभोपयोग का अभाव सो शुद्धोपयोग, ऐसा अर्थ नहीं लेना बल्कि शुद्धोपयोग में शुभोपयोग का अभाव होता है, ऐसा अर्थ लेना।
472. जिसके शुद्धोपयोग की भूमिका नहीं बनती उसे भूलकर भी शुभोपयोग नहीं छोड़ना चाहिए, क्योंकि वह भी परम्परा से मोक्ष का कारण है।
473. शुद्धोपयोग रूप गाड़ी बिना रुके मोक्ष ले जाती है और शुभोपयोग रूप गाड़ी कई स्टेशनों पर रुकती हुई जाती है, पर पहुँचती वहीं है।
474. शुद्धोपयोग तो उपादेय है, क्योंकि वह आत्मानुभूति कराता है। लेकिन शुभोपयोग भी उपादेय है, क्योंकि वह शुद्धोपयोग में कारण है।
475. ज्ञानोपयोग होने से भय होता है, दर्शनोपयोग होने पर भय नहीं होता।
476. अशुभोपयोग से बचने का नाम शुभोपयोग है, भगवान् की भक्ति, दान, व्रत, स्वाध्याय, दया व अनुकम्पा आदि क्रियाएँ शुभोपयोग कहलाती हैं।
477. वस्तु को विषय बनाने का जो आत्मा का प्रथम पुरुषार्थ है, उसका नाम

दर्शनोपयोग है। उपयोग लगाकर सुनो जीव उपयोगमय है, जीव का उपयोग से तादात्म्य सम्बन्ध है, जीव से उपयोग पृथक् नहीं होता, जैसे स्वर्ण से पीलापन।
478. उपयोग में उपयोग लगाओ तो समय का पता ही नहीं लगेगा।
479. ज्ञानोपयोग को दर्शन के समान बनाने का अर्थ है, चलाकर चिंतन नहीं करना, अवग्रह तक ही सीमित रहना, ईहा आदि को ज्ञान की ओर नहीं ले जाना।
480. दर्शनोपयोग में वस्तु का अस्तित्त्व मात्र होता है, भेद-उपभेद नहीं होते।
481. ज्ञानोपयोग के पूर्व में होने वाली उपयोग की दशा का नाम दर्शनोपयोग है।
482. सामान्य अवलोकन का नाम, निराकार, निर्विकल्प दशा का नाम दर्शनोपयोग है।
483. शुद्धोपयोग को यथाख्यात चारित्र या शुक्लध्यान के रूप में स्वीकारा है, इसी को निर्विकल्प समाधि, अभेद रत्नत्रय व वीतराग भाव भी कहते हैं।
484. उस शुद्धोपयोग का दर्शन तीन लोक में यदि कहीं होगा तो वह श्रमण (साधु) की चर्या में ही होगा।
485. शुभोपयोग बना रहेगा तो शुद्धोपयोग मिलेगा नहीं तो अशुभोपयोग में चला जावेगा।
486. शुद्धोपयोग सरल प्राकृतिक है, वह दबाव से पैदा नहीं होता।
487. शुद्धोपयोगी किसी से प्रभावित नहीं होता।
488. आत्म स्वरूप को प्राप्त करने का उपाय शुद्धोपयोग है।
489. शुद्धोपयोग की तरंग में अन्य तरंगे नहीं आती, उस समय मात्र शुद्ध द्रव्य का अनुभव होता है।
490. जिसके जीवन में शुद्धोपयोग की रुचि नहीं है, बहुमान नहीं है तो वह शुभोपयोग को भी अधिक समय तक नहीं रख सकता।
491. आटे की लोई शुभोपयोग की भाँति है, जो कि कोई काम की नहीं यदि उसे शुद्धोपयोग (रोटी) के रूप में नहीं ढाला गया तो लोई की उम्र ज्यादा नहीं होती।
492. योग और उपयोग आत्मा की दो ऐसी शक्तियाँ हैं, जिनके माध्यम से हम अच्छे-बुरे दोनों कार्य कर सकते हैं।
493. स्पन्दन क्रिया के बंद हुए बिना अंतरंग में क्या है यह दिखाई नहीं दे सकता।
494. योग सिद्धि के बिना कोई भी क्रिया सिद्ध नहीं हो सकती।
495. अस्थिर मन वाला व्यक्ति कभी सफलता प्राप्त नहीं कर सकता।
496. शुद्धोपयोग कभी भी प्रवृत्ति के समय नहीं हो सकता है।

497. योग और उपयोग के कारण ही गुणस्थान बनते हैं।

498. उस शुद्ध निश्चयनय की कृपा से ही सिद्ध बना जा सकता है।

499. कुम्भकार के उपयोग में कुंभाकार आये बिना योग में कुंभ नहीं बन सकते।

500. आत्मा के घर में विकल्प करने वाला एक ही है, वह है उपयोग। उपयोग चारों ओर दौड़ लगाता रहता है, इसलिए आत्मा की शक्ति समाप्त होती रहती है। अंतर्मुहुर्त के बाद ज्ञानोपयोग का अभाव होना अनिवार्य है और उस स्थान पर दर्शनोपयोग होना अनिवार्य है।

501. अग्नि से जैसे उष्णता पृथक् नहीं है, उसी प्रकार आत्मा से उपयोग पृथक् नहीं है।

502. अपने उपयोग के रेडियो में ज्ञान चेतना की ही स्टेशन लगाओ।

ऊर्ध्वगमन

503. कर्मों के उदय से ऊर्ध्वगमन नहीं होता बल्कि कर्मों के पूर्ण अभाव में जीव का ऊर्ध्वगमन होता है।

ए

एकता

504. एक में हर्ष तो हो सकता है, लेकिन संघर्ष एक में नहीं दो के बीच में ही होगा।

505. जहाँ एकता होती है, वहाँ वात्सल्य रहता है।

506. 1 के सामने 1 रखो 11 होते हैं। घर में एक, एक ही रहो लेकिन समाज में आते ही 11 हो जावे तो बहुत अच्छा होगा।

507. मकान बनाने में प्रत्येक चीप (पत्थर का छोटा-सा टुकड़ा) भी चीफ का कार्य करती है। एकता के द्वारा बड़े-बड़े कार्य भी सहजता से एवं कम समय में पूर्ण हो जाते हैं। जैसे एक हाथ लिख रहा है तो दूसरा हाथ विश्राम नहीं करता वह भी सहयोग देता है।

508. एक आँख जिस ओर देखती है, दूसरी भी उसका सहयोग देती है। एक कहती है तुम देखती रहो हम सहयोग दे रहे हैं, यही तो एकता का प्रतीक है।

509. बच्चा जैसे बातों को जल्दी भूलता है वैसे ही हमें एक दूसरे की गलती को जल्दी भूल जाना चाहिए।

510. समाज में एकता है, तभी तक वह समाज कहलावेगी, व्यक्तियों की संख्या का नाम समाज नहीं है।

511. दर्जी (टेलर) के यहाँ मशीन में एक लड़ी (गिट्टी)में धागा आता है, और सटल से नीचे से भी एक धागा आता है! दोनों मिलकर सिलाई प्रारम्भ कर देते हैं। सिलने में कितने भी धागे (सूत्र) हों, कार्य एक ही स्थान पर एक ही होता है सिलाई का।

512. एक आँख आ जाती है तो दूसरी आँख में आँसू आने लगते हैं, वे भाई-भाई जैसी है।

513. एक दूसरे के पूरक बने बिना लक्ष्य तक नहीं पहुँच सकते। मुट्ठी से पदार्थ आसानी से फोड़ा जा सकता है, कनिष्ठा आगे रहती है कोई अपने को छोटा बड़ा न समझे। लाख चाहिए तो मुट्ठी बंधी रखो वरन् राख।

514. कुछ दिन रहना है तो वात्सल्य, एकता के साथ रहो बहुत प्रतीक्षा के बाद नर तन मिलता है। संसार का चक्कर छूटता नहीं, प्रभु की भक्ति के लिए कुछ क्षण निकालो।

515. भवन में कितने छोटे-बड़े पत्थर लगते हैं पता नहीं, छोटी चीप भी चीफ का काम करती है।

516. एक माला तब बनती है, जब बहुत सारे मोती रहते हैं, एक सूत्र में बंधे होते हैं। एक दूसरे का सहयोग आपेक्षित रहता है।

517. नारंगी की कलियाँ छिलके से बंधकर रहें वरन् सूख जावेगी।

518. एक दूसरे से मिलते, मिलाते जाओ तो धर्म की वृद्धि होती जावेगी।

एकान्त/अनेकान्त

519. समाजवाद तो सिद्ध परमेष्ठी में है या निगोदिया जीव में है, जो एक साथ अनंत रहते हैं।

520. एकान्त से ज्ञान विकल्प का कारण है, ऐसा नहीं है बल्कि संयत ज्ञान विकल्प से छूटने का कारण है, संयत ज्ञान रक्षक है, पाप कर्म के उदय में ही किसी भी जीव को पाप करने के भाव होते हैं, इसलिए एकान्त से किसी को भी पापी नहीं समझना चाहिए।

521. अनेक यानि बहुत नहीं किन्तु एक नहीं है।

522. एक एकान्त का निषेधक अनेकान्त है, अनेकान्त यानि बहुत नहीं, बल्कि एक नहीं ऐसा अर्थ निकालना चाहिए।

523. छाछ में जो नवनीत के गोले का ऊपर का थोड़ा-सा भाग दिख रहा है, इतना ही नहीं इससे बारह आना अंदर छाछ में डूबा है यह स्वीकारना अनेकान्त है।

524. कारण के सदृश ही कार्य होता है, ऐसा एकान्त नहीं है।

525. संसारी प्राणी दृष्टि में अनेकान्त तो नहीं रखता लेकिन उसे अकेले में, एकान्त में चैन नहीं मिलती पर की ओर ही जाता है।

क

कर्म

526. कर्म क्षय स्वाश्रित है, लेकिन कर्म बंध कथञ्चित् पराश्रित है, दूसरे का निमित्त कथञ्चित् कर्म बंध में आपेक्षित रहता है, किन्तु मोक्षमार्ग में मात्र आप ही रहते हैं।

527. फिल्म की रील कर्म है और पर्दे पर चित्र नोकर्म हैं, कर्म के अनुरूप ही नोकर्म की व्यवस्था होती है।

528. ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से ही ज्ञान होता है, मात्र पढ़ने से नहीं।

529. कर्मोदय में गलत कार्य न करना चाहें तो भी करना ही पड़ते हैं, जैसे नरक में अशुभ विक्रिया न करना चाहें तो भी करना ही पड़ती है।

530. जिनके माध्यम से अशुभ कर्म का बंध होता है, आत्महितैषी को उनसे हमेशा बचना चाहिए।

531. आयु कर्म उस बॉटल के समान है, जो बूँद-बूँद से खाली हो जाती है।

532. यदि कर्म के भरोसे बैठे रहना होता तो प्रभु कर्म निर्जरा का उपदेश क्यों देते?

533. राग-द्वेष नहीं करोगे तो कर्म बंध नहीं होगा, ऐसा भगवान् ने देखा, जाना और अनुभव किया है, तभी तो उन्होंने संयम से अनुराग किया था और हम लोगों को भी राग-द्वेष छोड़ने का उपदेश दिया है।

534. यदि कर्म के उदय में सब कुछ हो जायेगा ऐसा सोचकर पुरुषार्थ नहीं करोगे तो कर्म निर्जरा कैसे करोगे? भगवान् ने हमें तप के माध्यम से कर्म निर्जरा करने का उपदेश दिया है।

535. संसारी प्राणी की सारी क्रियाएँ कर्म सापेक्ष ही हुआ करती है। दुःख, शोक, ताप, आक्रन्दन से असाता कर्म का बंध होता है।

536. आयु कर्म की हानि का नाम ही मरण है, इसी का नाम जीवन है, दीपक प्रकाशित हो रहा है कि तेल जल रहा है, इसे समझने का प्रयास करो। कलम (पेन) चल रही है कि स्याही खत्म हो रही है, इसे समझने का प्रयास करो, दिन अस्त होने से पहले प्रबंध कर लो वरन् इस संसार रूपी जंगल में भटक जाओगे।

537. नोकर्म के कारण भावों में गिरावट आ जाती है, इसलिए शरीर आदि नौ कर्मों को स्मृति में मत लाओ और भावों को पुनः स्थिर कर लो।

538. कर्मों की खेती कहाँ से होती है, उस खेती को समाप्त कैसे किया जा सकता

है? इन्हें पैदा करने वाले दुर्भाव को नष्ट कर दो।

539. जो कर्म काटने की कला को अपनाता है, वही तत्त्ववित् कहलाता है।

540. संसार में दो भूत खतरनाक हैं, पर द्रव्य कर्तृत्व और निमित्ताधीनता, जो इन दोनों से बच जाता है, वही कर्म बंध से बच सकता है।

541. कर्म के न्यायालय में जब कर्म न्याय करता है तो उस समय घूसखोरी नहीं चलती, वहाँ तो ''जैसी करनी वैसी भरनी'' का सिद्धान्त लागू होता है।

542. जो-जो भाव कर्मों के क्षय से आत्मा में होते हैं, वे सब सादि अनंत होते हैं, कभी नष्ट नहीं होते। जैसे क्षायिक सम्यग्दर्शन, क्षायिक ज्ञानादि।

543. कर्मों की कठिनता यदि लता के बराबर हो जाये तो फिर कोई कठिनाई नहीं।

544. कषाय ही कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति बंध का कारण है।

545. आठ कर्मों में मात्र वेदनीय (साता-असाता) कर्म का ही अनुभव होता है।

546. कर्मों की बाढ़ में तैराक भी बह जाते हैं, इसलिए आत्मा का रसास्वादन दुर्लभ है।

547. कर्म के पास इतनी शक्ति नहीं है कि आत्मा की शक्ति को पूर्ण रूप से मिटा सके, इसलिए सभी जीवों में सामान्य रूप से ज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम पाया जाता है।

548. कर्म के उदय में हर्ष-विषाद नहीं करना कर्म फल चेतना है।

549. कर्मों का उपादान कारण आत्मा ही है, लेकिन ये स्वभाव नहीं है।

550. कर्मों के वेग में भी युक्ति पूर्वक बचा जा सकता है, वेग में तैराकी जैसी कुशलता चाहिए। गाड़ी चालक भी वेगवान गाड़ी को युक्ति से साइड करते हुए गति धीरे-धीरे कम करता जाता है।

551. गति, आयु, पुण्य रूप नहीं हैं तो सारे पुण्य रूप नामकर्म पाप रूप ही हो जाते हैं।

कर्त्तव्य

552. जहाँ निरीहता वाली बात समाप्त हो जाती है, वहाँ कर्त्तव्यबोध नहीं रहता।

553. कर्त्तव्य तो करना चाहिए, लेकिन कर्तृत्व बुद्धि नहीं रखनी चाहिए।

554. कर्तृत्वनिष्ठ व्यक्ति आलोचकों की परवाह न करते हुये अपने कर्त्तव्य पालन में लगा रहता है।

555. कर्त्तव्यभाव हमें कर्त्तव्य से विमुख कर देता है।

556. हम देव, शास्त्र एवं गुरु को प्रामाणिक मानकर मोक्षमार्ग में बढ़ते चलें कर्त्तव्य की भूमि पर खड़ा रहना बहुत कठिन है।

557. हम दूसरों से कार्य कराना चाहते हैं हम खुद नहीं करना चाहते हैं यह संघर्ष की जड़ है।

558. अभिमान नहीं करना चाहिए कर्त्तव्य की ओर ध्यान रखना चाहिए।

559. सुन्दरता कर्त्तव्यशीलता से ही निखरती है।

560. जो पिता की आज्ञा का पालन करता है वही पुत्र माना जाता है, परम्परा का उल्लंघन करने वाला पुत्र कभी भी शांति को प्राप्त नहीं कर सकता।

561. कर्त्तव्य ही सही ज्ञान है, सम्यग्ज्ञान है।

562. दूसरे के कार्य में व्यवधान न होने देना एवं अपने कार्य में सावधान रहना ही कर्त्तव्य है। दूसरे के कार्य में अपने द्वारा व्यवधान तब होता है जब हम अपने कर्त्तव्य के प्रति सावधान नहीं रहते। सामान की समस्या नहीं है बल्कि दृष्टि की समस्या है कर्त्तव्य को दृष्टि में रखें।

563. धर्म और किसी वस्तु का नाम नहीं है बल्कि अपने कर्त्तव्य का नाम धर्म है।

564. कर्त्तव्य सामान्य व्यक्ति होकर किया जाता है और कर्तृत्व विशेष स्वामी बनकर किया जाता है।

565. कर्त्तव्य को दिशा बोध तत्त्व ज्ञान से प्राप्त होता है।

करुणा

566. औरों की पीड़ा अपनी करुणा की परीक्षा लेती है।

567. अपनी आत्मा पर करुणा करने लगोगे तो दूसरों पर करुणा होने ही लगेगी, करुणा के माध्यम से ही हम अपनी आत्मा की ओर आ सकते हैं।

568. पापों से भीति होने का नाम ही तो स्वयं पर करुणा है।

569. जो जीवों पर करुणा नहीं कर सकता, वह व्रतों का पालन नहीं कर सकता।

570. करुणा का होना अलग है और दुःखित होना अलग है, करुणा और अनुकम्पा से तो सातावेदनीय कर्म का बंध होता है।

571. एक करुणादान नाम का दान होता है, उससे विधि नहीं देखी जाती, भूखे की भूख शांत की जाती है।

572. धर्म के अनुरूप ही करुणा का स्रोत झरने लगता है।

573. जब गुणीजनों को देखकर प्रमोद भाव हो जावे, दुखियों को देखकर करुणाभाव आ जावे, सभी के अस्तित्त्व पर विश्वास हो जावे तो समझना

सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हो गई।

574. दूसरे के दुःख को महसूस करने का अर्थ है अपनी आत्मा में पीड़ा का अनुभव होना और करुणावश दूसरे के दुःख को दूर करने का प्रयत्न करना।

575. करुणा के धनी तो प्रभु हैं, लेकिन हम वस्तु तत्त्व को समझते हैं तो दया, करुणा क्या है ? यह समझ में आ जाता है।

576. दूसरे के दुःख को देखकर आँखों में पानी आना करुणा की निशानी है।

577. महिला, पशु और नादान पर विशेष करुणा, कृपा होनी चाहिए।

578. अनुकम्पा से द्रवित जीव ही दुःख में पड़े जीवों की सहायता कर सकता है और सम्यग्दृष्टि जीव में यह भाव उत्पन्न होना सहज ही है।

579. अपने बच्चों एवं परिवारजनों का पालन-पोषण मोह के कारण होता है, लेकिन अन्य पशु-पक्षियों के साथ करुणा का भाव धर्म का भाव माना जाता है।

580. आज पश्चिमी सभ्यता के कारण हम दया करुणा के भाव भूलते ही चले जा रहे हैं, हमें पुनः भारतीय संस्कृति की ओर लौटना होगा।

581. जब दया, करुणा हमें प्राणों से भी प्रिय हो जायेगी तब समझना हमारे जीवन में धर्म का अवतरण हो गया।

582. दया, करुणा को कर्त्तव्य समझकर करना चाहिए, तभी धर्म की संज्ञा प्राप्त होगी।

कषाय

583. कषाय और इन्द्रियों को वश में करो, कायक्लेश तप के द्वारा शरीर का शोषण करना चाहिए।

584. बहुत समय तक घोर से घोर तप मत करो, लेकिन कषाय तो मत करो।

585. दुनियाँ की चीजों में स्पर्धा न करके कषाय को जीतने की स्पर्धा करो, फिर मुक्ति तुमसे दूर नहीं।

586. अपनी शक्ति का उपयोग कषाय को जीतने में ही करना चाहिए।

587. ज्ञानी, विवेकी वही है, जो कषाय का शमन करता है।

588. कषाय करने से कषाय की फौज (सेना) और बढ़ती जाती है। जैसे युद्ध में रावण का एक सिर कटता है तो दस सिर और पैदा हो जाते हैं।

589. कषायों का शमन करना बच्चों का खेल नहीं बन सकता, इसलिए इस मार्ग पर चलना चाहते हो तो कषाय को जीतो, परिग्रह का त्याग करो।

590. कषाय की प्रचुरता के कारण ही यह जीव निगोद से नहीं निकल पाता ईर्ष्या, स्पर्धा आदि कषाय के ही अंश हैं, ये मान कषाय को टीस पहुँचाते हैं।

591. कषायों का आवेग आत्मा को अंधा बना देता है।

592. क्रोधादि चारों कषायों का एक साथ उदय नहीं हो सकता, वरन् संसार में हंगामा मच जायेगा।

593. कषाय आपके पास है तो आप कसाई हैं, फिर कोई आपसे कसाई कहता है तो आप आग-बबूला क्यों होते हो ?

594. क्रोध, मान, माया, लोभ हमारा स्वभाव नहीं है, जिन्हें ऐसा श्रद्धान हो जाता है, इनकी ओर अपना उपयोग नहीं ले जाता।

595. कषाय से बचना चाहते हो तो सबसे अच्छा सूत्र है, दूसरे के बारे में मत सोचो, अपने बारे में चिंतन करो, दूसरे के बारे में सोचो तो उसकी अच्छाई के बारे में सोचो।

596. कषाय के वशीभूत होकर धर्मात्मा को नीचा दिखाने का अर्थ है, अपने धर्म को ही अपमानित करना।

597. हमारी कषाय शरीरादि नोकर्म को देखकर उद्वेलित हो जाती है, अंदर कर्मों का बारूद भरा है, नोकर्म रूपी आग का सम्पर्क पाकर फूट पड़ता है।

598. कषाय का सहारा लेने वाला ज्ञान खतरनाक है, वह संसार का कारण बनता है।

599. अनन्तानुबन्धी कषाय के उदय में आते ही सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र दोनों नष्ट हो जाते हैं।

600. मद, अभिमान मान कषाय की उदीरणा के बिना नहीं हो सकता।

601. हम कषायों के माध्यम से ऊर्जा को विपरीत दिशा में ले जाते हैं तो हमारा विकास पतन को प्राप्त हो जाता है।

602. कषायों का वमन (त्याग)करते ही मन शांत हो जाता है, मन में हल्कापन आ जाता है।

603. जो कषाय वश मोक्षमार्ग को दूषित करता है, कषाय की प्रचुरता रखता है, वह निगोद में जाता है।

604. कषाय करने वाला स्वयं दुःखित है, क्योंकि प्रतिकार के भाव हुए हैं, लेकिन जिसे असाता का उदय है वह समता से सह लेता है तो वह दुःखी नहीं है।

605. कषाय करने वाला उस मुर्गे के समान है, जो दर्पण में अपने बिम्ब से ही लड़ता है।

606. कषाय रखना फटाके की दुकान के समान है, आग्रह रूपी अग्नि का संयोग मिलते ही दुकान तक जलकर समाप्त हो जाती है।

607. प्रतिकार के भाव करना कषाय की मौजूदगी बताते हैं।

608. यदि कषायें शांत हैं तो अपने घर में आ सकते हो वरन् नहीं, कषाय स्वयं अपनी आत्मा को कसती है।

609. कषाय को शमन करने की स्पर्धा करो, जिस स्पर्धा से कषाय उत्पन्न हो, ऐसी स्पर्धा छोड़ दो।

काम

610. काम कभी भी पीड़ा का हनन नहीं करता, बल्कि वह पीड़ा को और बढ़ा देता है, इसलिए जो पीड़ा देता है, उसे हम तप के द्वारा नष्ट कर सकते हैं।

611. काम की पीड़ा को जीव सहन कर लेता है, लेकिन तप से जो पीड़ा होती है, उससे भय खाता है।

612. जो तप के माध्यम से काम वासना का दहन कर देता है, उसे समाप्त कर देता है, वह विवेकी माना जाता है।

613. काम का दहन निःसंग अवस्था में ही संभव है, क्योंकि वस्त्र की ओट में तो काम जीता रहता है।

614. काम ने तीन लोक को वश में कर लिया है और जो उस काम को जीत लेता है, वह महान् योद्धा है।

615. काम रूपी अग्नि को सम्यग्ज्ञान रूपी अमृत की एक बूँद समाप्त कर देती है।

616. गर्मी की अपेक्षा सर्दी में जलाने की क्षमता अधिक होती है।

617. कमल वन लू से नहीं जलता बल्कि सर्दी में तुषार से जल जाता है, वैसे ही क्रोध से नहीं बल्कि काम के वेग से सब कुछ जल जाता है।

कार्य

618. धैर्य से कार्य करने से कार्य निर्विघ्न सानंद सम्पन्न हो जाते हैं।

619. कार्य-कर्त्ताओं को इधर-उधर देखे बिना नीचे निगाह किए हुए कार्य करते रहना चाहिए।

620. अंधे को जब संगीत में निष्णात देखते हैं तो मालूम होता है कि लगन से ही कार्य सिद्धि होती है।

621. समयोचित कार्य करना ही कार्य कुशलता मानी जाती है और आगामी भव सम्बन्धी जो पुरुषार्थ प्रबन्ध कर रहा है, वह कार्य कुशल माना जाता है। जैसे जो किसान बीज को अगली फसल के लिए रखता है, वही कुशल किसान माना जाता है।

622. करने योग्य ही कार्य करो, न करने योग्य कार्य मत करो, ज्ञानी ऐसी युक्ति से कार्य करता है कि जिससे कर्म निर्जरा अधिक और कर्मबंध कम हो।

काल

623. अनन्तकाल हो गया हमें कषाय मार्गणा में रहते हुए, अभी तक हम निष्कषाय नहीं हो पाये।

624. यदि काल द्रव्य नहीं है तो घड़ी क्यों बाँधते हो।

625. काल द्रव्य को विज्ञान ने समय के रूप में स्वीकारा है लेकिन निश्चय काल के बारे में विज्ञान मौन हो जाता है।

626. कुछ लोग काल द्रव्य को नहीं मानते, लेकिन घड़ी हाथ में बाँधते हैं, यही तो काल द्रव्य को मानना हो गया।

627. जीव और पुद्गल के माध्यम से काल की उत्पत्ति नहीं होती बल्कि काल की पहचान होती है।

628. जो काल परिणाम, क्रिया, परत्व (निकट) अपरत्व (दूर) लक्षण वाला है, वह व्यवहार काल कहलाता है और जो वर्तना लक्षण वाला है, वह निश्चय काल कहलाता है।

629. धर्म के क्षेत्र में काल पर आधारित रहकर चलना ठीक नहीं है, वरन् हम अपने आपको निर्दोषी मानने लगेंगे।

630. आज दुःखमा काल में सुख नहीं मिल सकता, सुख प्राप्ति की भूमिका बन सकती है।

631. अतीत के कथन करते समय वर्तमान की अनुभूति छूट जाती है।

632. आस्था को मजबूत करने के लिए यह दुःखमा काल वरदान सिद्ध होता है, आचार्य ज्ञानसागरजी महाराज कहा करते थे कि यह कौन-सा काल है पंचमकाल, इसका नाम दुःखमा काल है तो सुख नहीं दुःख ही मिलेगा ऐसा श्रद्धान रखो।

633. जिस काल में कर्म को बीमारी आ जाती है, वह समाधिकाल, स्वकाल है, इसलिए काल को हेय कहा है।

634. जीव और पुद्गल के अभाव में काल को पहचाना ही नहीं जा सकता है।

635. स्थान से स्थानांतर जाने रूप क्रिया कालाणु में नहीं होती।

636. कब, तब ये काल के संकेत करने वाले शब्द हैं।

637. कार्य काल के द्वारा नहीं होता काल में भी नहीं होता बल्कि काल का सहयोग लेकर होता है, उसके अस्तित्त्व में होता है, लेकिन परिणमन कार्य में

ही होता है, काल में नहीं।

638. आगम ग्रन्थों में कर्म चेतना, कर्मफल चेतना और ज्ञान चेतना का वर्णन तो मिलता है, लेकिन काल चेतना का वर्णन नहीं मिलता, इससे सिद्ध होता है काल कर्ता नहीं हो सकता, वह तो मात्र परिणमन में सहयोगी होता है।

639. काल द्रव्य के बिना शेष पाँच द्रव्य अस्तिकाय होते हैं।

640. संसार में अशांति का कारण पर का कर्ता बनना है।

641. आपकी क्रियाएँ आपकी रुचि को बता देती है।

642. जितना परिग्रह कम रहेगा उतना ही कर्तृत्वपन से दूर होगा।

क्रूरता

643. निर्दोष हिरण आदि प्राणियों का जहाँ संहार हो रहा हो, वहाँ अपराध करने वाले पर क्या जुल्म ढाया जाता होगा जरा सोचो ? यह तो क्रूरता की पराकाष्ठा ही हो गई।

644. क्रूरता के साथ अपराधी अपराध करता है तो क्रूरता के साथ दण्ड नहीं दिया जा सकता, जिस कलम से जज जजमेन्ट देता है, उस कलम को तोड़ देता है।

645. रावण माला फेरते हुए भी राम का अहित चाहता था, यह क्रूरता मानी जाती है और राम ने जंगल में भटकते हुए भी रावण को मारने के भाव नहीं रखे, यह करुणा मानी जाती है।

क्रोध

646. व्यर्थ कार्यों में शक्ति खर्च करने से क्रोध आता है, ज्यादा बोलने से भी गुस्सा आता है, आज्ञा का उल्लंघन हो जाने पर भी गुस्सा आता है, प्रतिकूलता में भी गुस्सा आता है, इन निमित्तों से हमें बचना चाहिए।

647. धीर-वीर की परीक्षा यही है कि वे क्रोध न लायें/करें।

648. क्रोध के कारण अपने कार्य की हानि सभी कर जाते हैं, क्रोध करना कषाय का, असंयम का द्योतक है।

649. क्रोध करने का अर्थ है, दूसरे की गलती की सजा अपने को देना।

650. कन्नड़ में कहा है कि-''शिटेन कई दगे बुद्धीयन कुडवारदू'' अर्थात् क्रोध के हाथ में अपनी बुद्धि नहीं देनी चाहिए।

651. क्रोध करते समय अपने आप को क्रोधी न मानना बहुत बड़ी भूल है।

652. क्रोध कायरता का प्रतीक है, क्रोध न करना ही वीरत्व है।

ख

653. धर्म की प्रभावना हो यह भावना ठीक है, लेकिन अपनी प्रभावना की कामना करना ख्याति लाभ में आ जाता है और ख्याति, लाभ व पूजा के कारण व्रत नष्ट हो जाते हैं।
654. मोक्षमार्ग में ख्याति को अपनाना यानि व्रतों को खा-पीकर साफ करना है।
655. ख्याति का प्राकृत शब्द 'खाई' बनता है। खाई का अर्थ होता है, गड्ढा अर्थात् ख्याति की ओर जाने का अर्थ है, गड्ढे में गिर जाना।
656. अज्ञान के कारण ही व्यक्ति मोक्षमार्ग पर चलते हुए भी ख्याति की कामना कर जाता है, अज्ञान ऐसा अंधकार है, जो कई लोगों को गड्ढे में गिरा देता है।
657. भोग, आकांक्षा, ख्याति व लाभ की कामना रखकर व्रत, पूजा आदि करने वाला रत्न बेचकर काँच खरीद रहा है, घी बेचकर छाछ खरीद रहा है।
658. जैसे बच्चा सौ रुपये देकर दो चॉकलेट चाहता है, वैसे ही मोक्षमार्ग पर आकर अज्ञानी यश, ख्याति की चाह रखता है, जो कि निरर्थक है।
659. भक्ति से जो भुक्ति मिलती है, उसमें निरीहता रखो, पुण्य बंध के फल में निरीहता रखो।
660. ख्याति, लाभ व प्रशंसा आदि मन के परिग्रह हैं, इनसे हमेशा मोक्षमार्गी को बचना चाहिए।
661. ख्याति, लाभ, पूजा के लिए ज्ञान का उपयोग करना ज्ञान का दुरुपयोग करना है।

ग

गुण

662. गुण, गुणी के साथ रहते हैं गुण और गुणी का सम्बन्ध वैसा ही है जैसा कि फूल और महक का सम्बन्ध है। आप महक को चाहते हैं लेकिन फूल के बिना नहीं मिल सकती। सुगंधी की कीमत होती है फूल की नहीं। सुगंधी निकल जाने के बाद फूल को फेंक देते हैं।
663. फूल को खरीदा जा सकता है उसके स्वामी बन सकते हो लेकिन खुशबू को नहीं खरीद सकते क्योंकि महक सभी के पास पहुँच जाती है।
664. आप यदि अपने को विकासवान् मानते हो तो गुण भी आना चाहिए, गुणों का विकास होना चाहिए।
665. जीवन जीने का ढंग खरीदा नहीं जाता बल्कि अंदर से उद्घाटित किया जाता है।
666. किसी भी पदार्थ का मूल्यांकन उसके गुणों के आधार पर किया जाता है।

667. भगवान् को इसलिए पूजते हैं क्योंकि उनमें अनंत गुण प्रकट हुए हैं, उन गुणों की प्राप्ति के लिए ही उन्हें नमस्कार करते हैं।
668. कोई भी देश विकासशील तभी माना जाता हैं, जब उसमें गुणों का विकास हो, धन वैभव का विकास, विकास नहीं माना जाता वह तो विनाश की ओर ले जाता है।
669. भगवान् नाम से नहीं बल्कि गुणों से पूज्य होते हैं। व्यक्ति की पूजा नहीं बल्कि गुणवत्ता की पूजा होती है।
670. जो गुणों को प्राणों से भी प्यारा मानता है, उसी के पास विजय लक्ष्मी पहुँच जाती है।
671. मोक्षमार्ग में मात्र गुण ही पूज्य हैं, इस मार्ग में दोष सहनीय नहीं हैं।
672. केवल भेष पूज्यता का प्रतीक नहीं है, बल्कि उस रूप गुण भी होना चाहिए।
673. गुणों की क्षति होने पर सर्वत्र अनादर ही अनादर मिलता है कोई कीमत नहीं करता, जैसे शव पर ढके कफन की कोई कीमत नहीं करता।
674. बहुत सारे गुण एक अवगुण के कारण निर्मूल्य हो जाते हैं।
675. औचित्य गुण के अभाव में सभी गुण विष जैसे हो जाते हैं (प्रासंगिक गुण)जैसे दूसरे के दुःख व्यक्त करना यह औचित्य गुण है।
676. प्रसंगानुसार कार्य करना बहुत बड़ा गुण माना जाता है।
677. बच्चों को कुछ देने से पहले पिता का कर्त्तव्य होता है, वे यह ध्यान रखें कि वह उसका किस रूप में उपयोग करता है।
678. गुणों के पुरस्कार के साथ दोषों का समालोचन ही होना चाहिए।
679. दोष गुणों का समीचीन आलोढ़न (अध्ययन) करना ही सही समीक्षा मानी जाती है।
680. वह हमारा मित्र है जो हमारे मत को पुष्ट करने के लिए प्रशंसक शब्द नहीं बोलता, रोगी बनता मिठाई खाने से (प्रशंसा करने से) निरोगी बनता कड़वी दवाई से, इसलिए कड़वी दवाई पीना सीखो, तभी दोष से मुक्त हो सकते हो।
681. गुणों का आदान और दोषों का परिहार करो।
682. जिन साधनों के माध्यम से गुणों का विकास हो, ऐसे साधन अपनाना ही विद्वत्ता मानी जाती है।
683. दोषों का निष्कासन हो गया कि गुण उत्पन्न हो जाते हैं, गुणों को उत्पन्न करने का ज्यादा प्रयास नहीं करना पड़ता, जैसे कपड़े का गंदापन साफ

किया जाता है, उसमें उज्ज्वलता अपने आप आ जाती है, इससे सिद्ध होता है कि दोषों को हटाने के लिए पैसा और पुरुषार्थ लगता है, गुणों को पाने के लिए नहीं।

684. गुणों को अपनाने से यश और सम्मान मिलता है, जब तक मुक्ति नहीं मिलती।
685. मोह को हटाने का प्रयास किया जाता है, मोक्ष पाने के लिए नहीं वह तो अंदर ही है, जैसे मिट्टी को हटाने के लिए परिश्रम करना पड़ता है, पानी के लिए नहीं। वह तो मिट्टी के हटते ही फूट पड़ता है।
686. दोष दुर्गति का कारण है, गुण सद्गति का कारण है, यह जानकर अविरल रूप से उत्साह के साथ दोषों का उन्मूलन करिए।
687. गुण ग्रहण में निमित्त कोई भी बन सकता है, जैसे अंजनचोर को प्रभु, गुरु निमित्त न बनकर जिनदत्त सेठ निमित्त बना।

गर्भ

688. गर्भ में जीव के मित्र कृमि होती है, वहाँ पर अंधकार ही अंधकार है।
689. गर्भ के दुःख यदि याद आ जायें तो व्यक्ति को तप कष्टदायी महसूस नहीं होगा।

गुरु

690. गुरु महाराज के सान्निध्य में ही जीवन का रहस्य उद्घाटित होता है।
691. अपनी चिकित्सा करने वाले चिकित्सक गुरु ही होते हैं।
692. अज्ञान को दूर करने वाले गुरुदेव ही हुआ करते हैं।
693. गुरु की वाणी जीवन जीने की सामग्री है। गुरु के द्वारा दिये गये सूत्र जीवन जीने के तरीके हैं।
694. गुरु जमाने के अनुसार नहीं बल्कि सिद्धान्तानुसार चलने को कहते हैं।
695. एकलव्य ने मूर्ति में भी गुरु की स्थापना करके उनकी विद्या को प्राप्त कर लिया था। यह शिक्षा सभी को अनुकरणीय है।
696. गुरु विश्व को महान् ज्योति प्रदान करते हैं।
697. गुरुदेव डॉक्टर जैसे करुणावान होते हैं। विवेक के साथ करुणा होती है।
698. गुरु के वचन हमारी जीवन रूपी गाड़ी की यात्रा में पेट्रोल के समान हैं।
699. गुरु के वचन अनुभव भरे होते हैं, बोध नहीं ये शोध वाक्य हैं।
700. सब कुछ भूल जाना लेकिन गुरु के वचन नहीं भूलना वरन् जीवन में सफलता प्राप्त नहीं हो सकती।
701. गुरुओं का भीतरी पक्ष, निष्पक्ष हुआ करता है।

702. गुरु का जीवन वह सांचा है जिसमें हम अपने को ढालकर उन्नत बन सकते हैं, उन जैसे बन सकते हैं।
703. गुरु कभी किसी को वचन नहीं देते मात्र प्रवचन देते हैं।
704. ज्ञान रूपी अंजन सलाखा से हमारी आँखें खोलने का प्रयास गुरु करते हैं। लेकिन जब हमारी आँखों में ज्योति विद्यमान हो तब यह गुरु की ज्ञान रूपी अंजन सलाखा काम करती है।
705. गुरु के संकेत ऐसे होते हैं कि हम यदि एक ही संकेत पर अमल करें तो हमारा बेड़ा पार हो जावेगा।
706. गुरु को खेवटिया, तारण हारा कहा है लेकिन उनके अनुसार चलने से तन्मय होने से पार हो सकते हैं।
707. गुरु की वाणी को जीवन में नहीं उतारते तो वह वाणी कागज के फूल के समान है, जैसे कागज के फूल से नासिका तृप्त नहीं होती वैसे ही सुनने मात्र से जीवन तृप्त नहीं होता। यदि जीवन में अमल करते हैं तो जीवन फूल की तरह महक उठता है।
708. गुरुओं के दर्शन से, उनकी कृपा से जो अनादिकाल से सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं हुआ था, वह प्राप्त हो जाता है मोक्षमार्ग का रास्ता मिल जाता है और यात्रा प्रारम्भ हो जाती है। गुरु ऐसे मंत्र देते हैं कि जिनको अपनाने से जीवन में विकास प्रारम्भ हो जाता है। गुरुओं का लक्ष्य मात्र सम्बोधित करने का नहीं होता फिर भी सम्बोधित करते हैं यह उनकी अनुकम्पा है।
709. ज्ञान गुरु नहीं होता, अनुभव ही गुरु होता है।
710. भले ही ज्ञान आत्मा का स्वभाव है लेकिन गुरु के बिन ज्ञान नहीं हो सकता।
711. गुरु की वाणी रूपी चाबी से अनंतकालीन मोह रूपी जंग लगा ताला भी खुल जाता है।
712. गुरु की पाठशाला के बाद ही प्रयोगशाला में प्रवेश किया जाता है।
713. शरीर और आत्मा का मेल हल्दी और चूना के मेल जैसा है उसे गुरु की वाणी रूपी रसायन से ही पृथक् किया जा सकता है।
714. गुरुत्वाकर्षण के अभाव में प्राणी गिर जाता है मोह माया के आकर्षण से आत्मा पतन को प्राप्त होता है।
715. विषयों की बाढ़ में बहती जनता को 'गुरु' ही हितोपदेश के माध्यम से बाहर निकालते रहते हैं।
716. गुरु कहते हैं, ''तेरी दो आँखें, तेरी ओर हजार'' सतर्क हो जा।
717. यदि आप गुरु के रूप में हैं तो दूसरों के दोषों को भी दूर करें।

718. जो छोटे-छोटे दोषों को भी बढ़ा-चढ़ा कर बता देता है, वह गुरु है, सरसों को सुमेरु पर्वत के रूप में बताने वाला खल अच्छा है, दोष को ढकने वाले गुरु की अपेक्षा।

719. गुरु की कठोर उक्तियाँ ही आपके जीवन को फूल की तरह खिला सकती हैं।

720. सूर्य का उदय होना अनिवार्य है, वरन् अंधकार ही अंधकार होगा, इस धरा पर, वैसे ही गुरु के वचन अनिवार्य हैं, वरन् सभी जीव अंधकार में ही जीवन निकाल देगे।

721. शिष्य का मन फूल की बोड़ी (कलिका) के समान होता है, उन्हें गुरु रूपी सूर्य खिला देते हैं।

722. गुरु यदि जिस समय अमृत को जहर कहते हैं तो वह जहर है और जिस समय जहर को अमृत कहते हैं तो वह अमृत है, यही श्रद्धान संसार से पार लगायेगा।

723. एक शिष्य बहुत से गुरु न बनावे, लेकिन एक गुरु बहुत शिष्य बना सकते हैं, गुरु यदि शिष्य के अनुसार पीछे-पीछे चलने लगे तो उन्हें नहीं अपनाना, यह मेरा आदेश है।

724. गुरुओं की आराधना करने से जगत् में सम्मान, भोग, कीर्ति प्राप्त होती है।

725. तपस्वियों (गुरुओं) की स्तुति करने से भक्त की कीर्ति स्वर्गों तक पहुँच जाती है, देवता भी उसका गुणगान करते हैं।

726. गुरु कहते हैं कि शरीर की दासता को छोड़कर आत्मा की सेवा करनी चाहिए।

727. ''नौका पार दे, सेतु हेतु मार्ग में गुरु साथ दे।'' अर्थात् नाव एवं पुल नदी पार कराने में हेतु होते हैं, लेकिन गुरु तो मंजिल तक साथ देते हैं।

728. हमारा हमेशा अधोपतन हुआ है, क्योंकि हम गुरु के आकर्षण को, संकेत को नहीं समझ सके।

729. हमारे भीतर विद्यमान भगवत् सत्ता का उद्घाटन गुरुदेव के माध्यम से ही होता है।

730. जिनका वर्तमान उज्ज्वल हो चुका है, उनके माध्यम से हम अपने वर्तमान को सुधार लें तो अपना भविष्य भी उज्ज्वल हो जायेगा।

731. गुरु जो कह रहे हैं, उसे करो अपने मन से कुछ मत करो, ऐसा करने से इच्छा का निरोध अपने आप हो जावेगा।

गुप्ति

732. गुप्ति में अंदर बैठ जाने से आत्मा की पूर्ण सुरक्षा हो जाती है, वहाँ कोई दूसरा तत्त्व प्रवेश कर ही नहीं सकता। गुप्ति में शरीर और मन दोनों की रक्षा हो जाती है।

733. व्रत लिए बिना समिति का व्यवहार नहीं होता और समिति के पालन बिना गुप्ति में नहीं जाया जा सकता।

734. असत्य वचन नहीं बोलना वचन गुप्ति में आता है।

735. आगम के अनुसार वचन बोलना वचन गुप्ति में आता है।

736. राग-द्वेष की होली से बचना चाहते हो तो गुप्ति का आधार लेना चाहिए।

737. गुप्ति गुप्त होने का अर्थ है, एयरकंडीशनर में पहुँच जाना। पाप-पुण्य रूप बाहरी हवा से बच जाना।

738. आत्मानुभूति के लिए गुप्ति आवश्यक है, जैसे मंजिल के लिए सीढ़ी आवश्यक है।

च

चारित्र

739. आचारांग की शरण लेने से ही मुक्ति मिलती है, चारित्र का वृक्ष 28 मूलगुण पर आधारित है।

740. चारित्र की शुद्धि के लिए मूलाचार ग्रन्थ बार-बार पढ़ना चाहिए।

741. कषाय चारित्र मोहनीय कर्म के बंध का कारण है।

742. स्वाध्याय करना महत्त्वपूर्ण नहीं है, बल्कि उसे चारित्र में धारण करना महत्त्वपूर्ण है।

743 मुक्ति को चाहने वाले यत्नपूर्वक समितियों का पालन करते हैं, यदि समितियों का सही पालन नहीं होगा तो हिंसा से नहीं बच सकते।

744. लोग पथ से तो चलते हैं पर ईर्यापथ से नहीं चलते लेकिन चारित्रवान् हमेशा ईर्यापथ से ही चलते हैं।

745. चारित्र के बिना सद्गति सम्भव नहीं है।

746. देवायु को छोड़कर यदि अन्य किसी आयु का बंध हो गया है तो फिर चारित्र ग्रहण करने के भाव नहीं होते।

चिन्तन

747. चिंतन नहीं करें, पर मन कहीं और चला गया तो क्या होगा, यह चिंता होती है।

748. नदी के तटों के ऊपर यदि चिन्तन करें तो चिन्ता अपने आप ही भंग हो जाती है और उस चिन्तन में चेतना लीन होती चली जाती है।

749. चिंतन नहीं होता तो चिंता क्यों करते हो ? तुम तो चित् स्वरूपी हो।

750. नरक के दु:खों से तो वह भी भयभीत है, लेकिन स्वर्ग सुख अथवा विषयों

की चाह है तो उससे कर्मों का ही बंध होगा।

751. जिसको जिसमें सुख होता है, वह उसी को पाने का प्रयास करता है।

752. परमात्म भावना से उत्पन्न सुधारस को पीने वाला संसार के सुख को नहीं चाहता।

753. रस का और रसना का मूल्य क्या बिना चर्वण के।

754. अव्यक्त सुख दुखानुभव स्वरूप कर्म चेतना है।

755. इच्छापूर्वक राग-द्वेष रूप से जो परिणाम हो, वह कर्म चेतना है, जिससे कर्म का स्पष्ट रूप से बंध होता है।

756. मुनिराज अपने उपयोग को बाहर न ले जाकर आत्मा की ओर ले जाते हैं, यह कर्म चेतना से हटने का प्रयास है।

757. आत्मा का अनुभवन होना सो ज्ञान चेतना है, यह केवली भगवान् को हुआ करती है।

758. आप आनंद का अनुभव करना चाहते हो तो वह आनंद का स्रोत चेतना में ही है, अन्य का सहारा मत लो।

759. कर्मफल चेतना महत्त्वपूर्ण है, यह जीव यदि कर्मफल में हर्ष-विषाद नहीं करता तो बहुत बड़ा फल प्राप्त कर लेता है, निगोद से मनुष्य भव प्राप्त कर लेता है।

760. चिन्ता और चिन्तन दोनों निश्चयनय से विकल्प के ही कारण हैं।

761. संसार व शरीर के स्वभाव का चिन्तन करने से वैराग्य की उत्पत्ति होती है।

762. आप भी संसार का चिंतन कर निर्मोही बनो। निद्रा पर विजय प्राप्त करने के लिए अपने किए गए अनर्थों पर चिन्तन करना चाहिए।

चिन्ता

763. भौतिकी जीवन हमेशा-हमेशा चिन्ता का कारण है।

764. चिन्ताग्रस्त होने से कभी समस्या का हल नहीं हो सकता।

765. अंतरंग जगत् की पहचान होने पर बाहरी जगत् का वैभव चिन्ता का कारण नहीं बन सकता।

766. चिन्ताग्रस्त मानव को मानव के पास नहीं बल्कि प्रकृति के पास जाना चाहिए।

767. खिलते हुए फूल को देखकर चिन्ता में कमी आने लगती है।

768. भविष्य की चिन्ता छोड़कर अतीत में पूर्वजों ने कैसा जीवन जिया है? उस ओर ध्यान दें, तभी भविष्य उज्ज्वल हो सकता है।

769. चिन्ता की बात नहीं, चिन्तन करो, चित् चमत्कार पैदा करो।

ज

जीव

770. जीव उपाधि से रहित है, शरीर या पर्याय की अपेक्षा जो उपाधि है, उनमें यह जीव उसी रूप हो जाता है, यह अज्ञान है।

771. जब अविनश्वर जीव की पहचान हो जाती है तब इसके संरक्षण की सारी दौड़-धूप समाप्त हो जाती है।

772. शुद्ध निश्चयनय की अपेक्षा से जीव आदि, मध्य और अंत से रहित है।

773. जीव स्व-पर प्रकाशक है, आज तक हमने अपनी शक्ति को दूसरों को प्रकाशित करने में लगायी है, स्वयं को जो प्रकाशित करता है और जो दूसरों को प्रकाशित करने की योग्यता रखता है, वही सम्यग्ज्ञानी माना जाता है।

774. अमूर्त जीव द्रव्य अवधिज्ञान का विषय नहीं बन सकता, परोक्षज्ञान में मात्र हमारे पास आगम ज्ञान है, जिसके माध्यम से हम जीव को जान सकते है, क्योंकि आँखों से अमूर्त जीव दिखता नहीं है।

775. जब जीव अमूर्त है तो पंचेन्द्रिय के विषयों में घटन-बढ़न होने पर हर्ष-विषाद नहीं करना चाहिए।

776. निश्चयनय से आत्मा तो आत्मस्थ है पर संसार परावर्तन करने के कारण संसारस्थ है, यह जीव संसार में रहकर भी संसारातीत का श्रद्धान कर सकता है।

777. एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक के सभी जीव शुद्ध नय से ज्ञान-दर्शन रूप हैं।

778. वर्तमान में जीव नारायण स्वरूप है, पर दरिद्र नारायण बना हुआ है।

779. निश्चय से शुद्ध स्वरूप है, जीव पर अभी मोह के कारण कर्मों से जकड़ा हुआ है।

780. अशुद्ध निश्चयनय से जीव राग-द्वेष रूपी भाव कर्म का करता है, व्यवहारनय से पुद्गल कर्म आदि का करता है, शुद्धनय से शुद्ध भावों का करता है।

781. जीव द्रव्य सक्रिय है बिना शरीर के भी एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाता है, वह एक समय में सात राजू पार कर जाता है।

त

तृष्णा

782. तृष्णा की पूर्ति करने से वह कभी उपशमित नहीं होती, उसे पीठ दिखाये बिना वह उपशमित नहीं होगी।

783. तत्त्व ज्ञान के माध्यम से ही तृष्णा को शांत किया जा सकता है।

784. तृष्णा रूपी अग्नि को बुझाना चाहते हो तो धनादि की इच्छा छोड़ दो और जो रखा है, उसे भी त्याग दो।

785. तृष्णा नागिन का जहर भव-भव में भी नहीं उतरता, जैसे इमली का पेड़ भले ही बूढ़ा हो जाये पर उसकी खटाई कम नहीं होती, ऐसे ही तृष्णा भी कम नहीं होती।

786. तृष्णा रूपी अग्नि में संसार की सम्पदा ईंधन का काम करती है, उससे तृष्णा कम नहीं होती, बल्कि और बढ़ती है।

787. ''लार गिरती, गर्दन तो हिलती, तृष्णा युवती''।

तप, तपस्या

788. धर्म, तप, तपस्या, आशा के साथ मत करो बल्कि कर्म निर्जरा के लिए करो।

789. जब आग को पकड़-पकड़ कर आप अभ्यस्त हो जाते हो तो थोड़ा-थोड़ा तप करके तप में अभ्यस्त क्यों नहीं होना चाहते हो, तप आग तो नहीं है ना।

790. तप के माध्यम से अप्रशस्त प्रकृतियों की निर्जरा होती है और अतत्त्व बाहर निकल जाते हैं और प्रशस्त प्रकृतियाँ बढ़ती ही चली जाती है।

791. इस जीवन में घोर तपश्चरण मत करो लेकिन पाँच पापों की सीमा बना लो, गर पूर्णतः पाप नहीं छोड़ सकते तो।

792. विकल्पों की, परिग्रहों की सीमा बना लो, व्रती श्रावक बन जाओ, सादगी से जीवन जियो, अब तो स्वयं के जीर्णोद्धार की बात सोचो, तपस्या में मन लगाओ।

793. ज्ञान, ध्यान, तप को लेकर बंध स्थान नहीं होना चाहिए, बल्कि निर्जरा स्थान और बढ़ना चाहिए।

794. तपस्या का उद्देश्य प्रदर्शन नहीं आत्मदर्शन होना चाहिए।

795. तप के कारण जीवन में अद्‌भुत अनुभूतियाँ होती हैं, लगनशील ऐसे तप को और बढ़ाते जाते हैं।

796. तप और ध्यान के माध्यम से रत्नत्रय में निखार आता है।

797. व्रतों में लगे दोषों का निर्मूलन तप, प्रायश्चित्त के द्वारा भी होता है।

798. यह मनुष्य पर्याय जितनी दुर्लभ है, उतनी ही अशुद्ध और दुःखमय है और कर्मों की निर्जरा भी इसी पर्याय में ही की जा सकती है। इसलिए तपस्या करके कर्मों की निर्जरा कर लेना चाहिए।

799. शक्ति का यद्वा-तद्वा व्यय करने से वीर्यान्तराय कर्म का बंध होता है।

800. श्रावकों का परम कर्त्तव्य है कि पंच, पंचायत को छोड़कर पंचपरमेष्ठी के स्मरण में मन को लगाएँ।

801. तप के माध्यम से क्षमा, शांति आदि अनेक ऋद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं, फिर विवेकीजन उस तप को क्यों नहीं चाहेंगे।

802. फूल सूख जाता है, फल बढ़ता जाता है, वैसे ही तप बढ़ता जाता है और शरीर सूखता जाता है। तपस्या बाल सूर्य के समान बढ़ते क्रम से होना चाहिए।

803. शरीर से तपस्या करो, वरन् शरीर की पुष्टि के साथ पापार्जन ही होगा।

804. तप करते समय इतना ध्यान अवश्य रखना, दूध तपाते हैं, लेकिन दूध सुरक्षित रहता है, पानी ही तपता है, वैसे ही कर्म को तपाना है, शरीर को नहीं।

805. तप करते समय प्राणों को बाधा नहीं पहुँचना चाहिए, प्राणों की किस-किसाहट आ जायेगी तो तप करने में आनंद नहीं आयेगा, यदि मशीन गरम हो गई तो वह कुछ दाना माँगती है, उसे दाना देना चाहिए, वरन् चक्की के पाट घिस जाते हैं।

806. समीचीन तप करने वालों को अंत में निश्चित ही समाधि का लाभ होता है।

807. जहाँ आशा-तृष्णा नहीं पलती वहाँ पर दुःख का नामोनिशान नहीं रहता, वहाँ उससे बड़ा कोई सुख और हो ही नहीं सकता।

808. वस्तु की चाह ही वस्तु की कीमत बढ़ाती है, चाह रहित के सामने वस्तु की कोई कीमत नहीं रहती।

809. बाह्य तप, अग्नि को बढ़ाने वाली हवा के समान है और आभ्यन्तर तप अग्नि के समान है कर्म आभ्यन्तर तप से ही कटते हैं।

810. तप के माध्यम से सारा दुराचार,पाप नष्ट हो जाता है, जैसे साबुन और पानी से बहुत पुराना गंदा कपड़ा भी स्वच्छ-साफ हो जाता है।

811. जो तप का फल ख्याति, लाभ, पूजा को चाहता है, वह तप रूपी वृक्ष को जड़ से काट रहा है, फूल को तोड़कर उसकी गंध मत लो वरन् उसका फल प्राप्त नहीं कर पाओगे।

812. हमारा तप कच्ची पूड़ी की तरह है जल्दी मत करो, अच्छे से पकने दो वरन् स्वास्थ्य बिगड़ जायेगा।

813. ख्याति, लाभ, पूजा संसार के सुख, कच्चे फल के समान हैं, इन्हें मत चखो, वरन् दाँत गोंठले हो जायेंगे।

814. तप और श्रुत का सदुपयोग कर्म निर्जरा में करना महत्त्वपूर्ण है।

815. यह शरीर मुनीम है, लेकिन मालिक बन बैठा है, अब अवसर आया है, इसे तप के माध्यम से अपने वश में करो।

816. जीवित अवस्था में इस शरीर को तप के द्वारा जलाओ, वरन् लोग इसे अंत समय तो जलायेंगे ही, जैसे टार्च का सेल उपयोग करते हैं तो ठीक है वरन् बच्चे उससे खेलते रहते हैं।

817. शक्ति का सही उपयोग न कर पाने से फल कम मिलने से वहाँ स्वर्गों में पहुँचकर दुःख होता है, अफसोस होता है कि मैंने उपलब्ध समय में शक्ति का उपयोग तप में नहीं किया।

818. तपस्वियों की पूजा करने वाले को हर जगह सम्मान मिलता है।

819. तपस्वियों (मुनिराजों) को प्रणाम नमस्कार करने से उच्चगोत्र का बंध होता है, साधु बनने योग्य संस्कारित परिवार में जन्म होता है।

820. तपने के बाद अकाल की कोई सम्भावना नहीं रहती।

तपस्वी

821. काम की वंचना में तपस्वी नहीं आता।

822. मान और अपमान की बू तपस्वी को छू ही नहीं सकती, बल्कि तपस्वी के चरणों में लगी धूल को इन्द्र; मान छोड़कर अपने मस्तक पर लगा लेते हैं।

823. तपस्वी की अपनी नहीं बल्कि धर्म की प्रभावना हो, ऐसी भावना रहती है।

त्याग

824. जिस बाह्य पदार्थ का हमने त्याग किया वह हमारा था ही नहीं,ऐसा भाव आना चाहिए तभी वह त्याग सार्थक होगा। वरन् त्याग का अभिमान हो सकता है।

825. त्यागीजन नृत्य, वाद्य, संगीत में भाग नहीं ले सकते, व्रती श्रावक को भी उपवास के दिन स्नान आदि का त्याग करना चाहिए और गृहस्थ श्रावक को अनथौ का अर्थ थोक में नहीं बल्कि थोड़ा-सा होता है।शाम को थोड़ा-सा भोजन करना चाहिए।

826. जब तक छोड़ने योग्य है, तब तक छोड़ते जाओ, जब शरीर मात्र रह जाये तो कायोत्सर्ग लगा लो, फिर मुक्ति दूर नहीं।

827. जो त्याग करते हुए भी मद को नहीं छोड़ता वह कर्म बंध से नहीं बच सकता।

828. धन से धर्म की प्रभावना नहीं होती बल्कि धन के त्याग से धर्म की प्रभावना होती है, त्याग तप के बारे में कंजूसी नहीं करना चाहिए और त्याग-तप के बदले में कुछ माँग भी नहीं रखनी चाहिए।

तत्त्व

829. तत्त्व ज्ञान होने से आत्मा में विश्वास जागृत हो जाता है और शरीर कमजोर होने पर भी साधना में उत्साह बना रहता है।

830. स्वाध्याय करने से तत्त्व ज्ञान प्राप्त होता है और तत्त्व ज्ञान प्राप्त होने से कहीं भी रहो विषय रुचते नहीं हैं, वैराग्य बना रहता है।

831. तत्त्व ज्ञानी बाह्य वस्तुओं को छोड़ते समय विस्मय करता है, न मद करता है और न ही शोक करता है।

832. तत्त्व पथ का अर्थ है, परमेष्ठी के चरणों की शरण, यही पथ है और यही पथ्य है।

833. तत्त्वज्ञान के संस्कार स्वर्गों में, भव-भवान्तरों में, काम करते रहते हैं और बुरे भाव भी ऐसे ही प्रभाव डालते हैं।

तीर्थङ्कर

834. तीर्थङ्करों के घर में वियोगकृत दुःख नहीं होता।

835. 24 तीर्थङ्करों के नाम पर 24 परिग्रह छोड़ दो तुम भी आगे चलकर तीर्थङ्कर बन सकते हो।

836. अरहंत भगवान् का शरीर सप्तधातु से रहित होता है, इसका अर्थ यह नहीं लेना चाहिए कि उनके शरीर के हड्डी संहनन आदि समाप्त हो जाते हैं, बल्कि ऐसा अर्थ लेना चाहिए कि उनके शरीर में सड़न/गलन नहीं होती।

837. परमौदारिक केवली भगवान् के शरीर में निगोदिया जीव नहीं रहते।

838. भव्य जीवों को मार्ग दिखाने के लिए तीर्थङ्कर भगवान् स्वयं उद्यत रहते हैं।

839. तीर्थङ्कर भगवान् का परहित सम्पादन ही एक मात्र कार्य रह जाता है।

840. तीर्थङ्कर भगवान् को जगत् मुमुक्षु कहा जा सकता है।

841. तीर्थङ्कर भगवान् ने भी आचारांग मार्ग पर चलकर ही सिद्धत्व रूप फल प्राप्त किया है।

842. तीर्थङ्कर भगवान् ने भी इस चारित्र को स्वीकारा है, धन्य हैं वे लोग जो इस महाव्रत का पालन करते हैं।

843. तीर्थङ्कर बालक अवस्था (गृहस्थावस्था) में कभी भी आहारदान नहीं देते, फिर भी सभी को पूजा और दान का उपदेश देते हैं, 8 वर्ष की उम्र के बाद तीर्थङ्कर देश संयमी जैसे हो जाते हैं।

द

दर्शन

844. ''प्रदर्शन तो उथला है दर्शन गहराता है''।

दान

845. दानादि करने से पाप घटता है, पुण्य बंधता रहता है एवं मोह भी कम होता जाता है।
846. जिस घर में मुनि को आहारदान नहीं दिया जाता वह घर, मरघट के समान है।
847. दाने-दाने पर खाने वाले का नाम के साथ दाने-दाने पर देने वाले का भी नाम लिखा होता है।
848. दान देने का अर्थ है, सागर में से पानी निकालना सागर का पानी निकालने से कभी कम नहीं होता वैसे ही दान देने से धन कभी कम नहीं होता।
849. दान करने से धन नहीं घटता बल्कि पुण्य क्षीण होने से धन घटता है।
850. दान देने से तो पुण्य की वृद्धि होती है और लक्ष्मी (धन, दौलत) पुण्य की दासी हैं।
851. जो दान देते समय लेखा-जोखा नहीं रखता, उसके यहाँ धन की कभी भी कमी नहीं आती।
852. धन का जो बांध है, उसे विधानादि के माध्यम से रिसाना चाहिए वरन् खतरा पैदा हो सकता है।
853. धन का त्याग संसार त्याग व मोक्ष प्राप्ति का उपाय है।
854. यदि हमारी मन, वचन एवं काय की चेष्टाओं के निमित्त से किसी को मोक्षमार्ग मिलता है तो इससे बढ़कर और कोई लाभ नहीं, आज इससे बड़ी और कोई साधना नहीं है, उपलब्धि नहीं है।
855. दूसरे के जीवन में भी यह आत्मवैभव का श्रद्धान हो जावे ऐसा दान चैतन्य दान है।
856. सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का दान अनमोल दान है।
857. दान करें पर अभिमान न करें वरन् उस दान का सही फल प्राप्त नहीं होगा, कर्म निर्जरा नहीं होगी, दान अपने आप में वैयावृत्त नाम का तप है।
858. दान, पुण्य के द्वारा अपने पापों की गंदगी धो लो।
859. पात्र के योग में दाता का पाप पुण्य में बदल जाता है या पाप नष्ट हो जाता है।
860. जैसे जल खूनादि को धो देता है वैसे ही दान, गृहस्थी सम्बन्धी कार्यों से उपार्जित सुदृढ़ कर्मों को नष्ट कर देता है।

861. मन में विशुद्धि पैदा होना दानादि का तात्कालिक फल है।
862. अभयदान प्राप्त होना ही दान का सही फल है।
863. शुद्धि का अर्थ-दाता शरीर से निरोग हो एवं अपवाद से रहित हो वही शुद्ध दाता है यही दाता की बाह्य शुद्धि है।
864. दान देने में पास तो सभी हो जाते हैं पर शत/प्रतिशत अंक सभी को नहीं मिल पाते।
865. दान देने से राग छूट गया यही तो साक्षात् फल मिल गया एवं संवर निर्जरा हो गयी। यह सब श्रद्धान का फल है। दान देने से कर्मों का संवर व निर्जरा होती है ऐसा श्रद्धान रखना चाहिए।
866. दानादि तो श्रावक के कर्त्तव्य हैं, उनमें प्रदर्शन का सवाल ही नहीं उठता।
867. दान के विषय में कहा है कि दायें हाथ से दिया तो बायें हाथ को भी पता न लगे।
868. दान, प्रतिदान की भावना रखकर नहीं देना चाहिए जैसे तंत्र, मंत्र मिल जाएगा, ऐसे भाव रखकर दान देना प्रतिदान की भावना कहलाती है।
869. धर्मामृत की प्राप्ति हो ऐसी भावना से दान देना चाहिए, धन प्राप्ति के लिए नहीं।
870. पात्र, साधुजन यथाजात बालक के समान होते हैं, उन साधुओं को भी बालकों जैसा विधि-विधान से आहारदान देना चाहिए।
871. ज्ञानदान को उपकरण दान के रूप में स्वीकारा है। सम्यग्दर्शन के कारणभूत जिनायतन भी उपकरण दान में आते हैं।
872. शास्त्र, पुस्तक को तो मात्र मनुष्य ही पढ़ सकता है लेकिन प्रतिमा का, वीतराग मुद्रा का दर्शन तिर्यंच भी कर सकता है और सम्यग्दर्शन भी प्राप्त कर सकता है।
873. आहारदान तब तक काम करता है जब तक भूख दुबारा न लगे पर जिनायतन में दिया गया दान अनंतकालीन मिथ्यात्व को धो देता है।
874. मनुष्य का कार्य एक जंगली सुअर ने कर दिया और वह आवास दान में प्रसिद्ध हो गया।
875. पूर्व दान, त्याग, तप के माध्यम से इस भव में माहात्म्य वैभवादि प्राप्त होता रहता है। जैसे जब तक पेड़ है तब तक उससे छाया, फल आदि मिलते रहेंगे।
876. मान/सम्मान के लिए नहीं बल्कि दान का सही उपयोग हो इसलिए दान दिया जाता है।

दया

877. आगम का उल्लंघन करने वाला कभी भी दया का पात्र नहीं बन सकता,

उसकी दशा हवा की संगति में आये बादलों की तरह हो जाती है।

878. जिनवाणी की उपासना करने का अर्थ है, हृदय का दया से ओतप्रोत हो जाना।

879. वासना का नहीं बल्कि दया, अहिंसा का आदर्श निर्णय होता है। जैसे नेमिनाथजी ने लिया था।

880. दया के बिना धर्म की शुरुआत ही नहीं होती।

881. दया धर्म के अभाव में कोई पूज्य नहीं बन सकता, दया धर्म का पालन करने वालों को देवता भी बार-बार नमस्कार करते हैं।

882. अहिंसक की उपासना भी अहिंसा पूर्वक ही होनी चाहिए।

883. जिसे मात्र वस्तु का स्वरूप ही धर्म लगता है और "दया विसुद्धो धम्मो" धर्म नहीं लगता वह अपने परिणाम आप ही जाने।

884. यदि आपके पास दया है तो धर्म आपके पास है, वह आपकी रक्षा हमेशा करता रहेगा।

885. दया धर्म की महिमा अपरम्पार है, राजा श्रेणिक ने मुनिराज पर उपसर्ग करने के बाद पश्चात्ताप करके तैंतीस सागर की आयु को चौरासी हजार वर्ष में परिवर्तित कर दिया।

886. अपने मन में दूसरे के प्रति करुणा के भाव उमड़ते रहना, धार्मिक बने रहने का अहसास देता रहता है।

887. दया, करुणा, अनुकम्पा अंतरंग क्रियाएँ हैं और वह बाहर अपनी प्रतिक्रिया दिखा देती है।

888. घोड़े को चलाने वाला व्यक्ति चाबुक मारते समय लगाम को छोड़ देता है, क्योंकि उसके अंदर भी दया के अंकुर हैं।

889. यदि आप दया नहीं करते तो आपके हाथ भी पैर के रूप में (जानवर की तरह) कार्य करने लगेंगे।

890. जिनशासन की प्रभावना विश्व भर में दया के माध्यम से ही हो सकती है।

891. दया, दम के लिए और दम त्याग के लिए और त्याग, समाधि के लिए कारण है।

892. दयावान के सामने शेर और गाय एक ही घाट पर पानी पीते रहते हैं।

893. दया धर्म के कारण तिर्यञ्च भी जात्य बैर छोड़ देते हैं।

894. दया (अभयदान) से बढ़कर और कोई दान नहीं होता।

895. दया, अनुकम्पा सहित सम्यग्दर्शन ही सक्रिय सम्यग्दर्शन माना जाता है।

896. दयापूर्वक किया गया तपश्चरण मोक्षरूपी वृक्ष का बीज है और सभी ऋद्धियों का कारण है।

897. अहिंसा सभी व्रतों की माँ है, रत्नत्रय की खान है एवं समस्त जीवों का हित करने वाली है।

दण्ड

898. व्यवहार में शरीर को दण्डित किया जाता है और निश्चय में भावों को दण्डित किया जाता है।

899. धन का, समय का अपव्यय करना सबसे बड़ा दण्ड माना जाता है।

दुःख

900. यदि आप दुःख भोगना नहीं चाहते हो तो, जिससे दुःख होता है, ऐसे कार्य करना छोड़ दो।

901. जब आप दुःख से डरते हो तो जहाँ दुःख है वहाँ क्यों जाते हो ?

902. दुःख से डरने से दुःख नहीं छूटेगा, बल्कि दुःख के कारण छोड़ देने पर दुःख स्वतः ही छूट जाता है।

देश

903. भारत में अंदर भले महाभारत हो, लेकिन बाहर भारत एक हो। भारत के पास सभी अंग है लेकिन हृदय नहीं है, मैं भगवान् से प्रार्थना करता हूँ कि हे भगवान्! इन हृदय शून्य भारतवासियों को हृदय दे दो।

904. मांस निर्यात् रुक जावेगा तो भारत का इतिहास बन जावेगा।

905. मांस निर्यात, स्वतंत्रता के नाम पर महान् अभिशाप है, कलंक है।

906. आदमियों का नाम भारत देश नहीं है, बल्कि संस्कृति का नाम देश है।

907. गाँधीजी ने कहा था यह आंदोलन विश्व की स्वतंत्रता के लिए है।

908. महान् व्यक्तियों का उद्देश्य विश्व के लिए होता है, संकीर्ण नहीं होता।

909. भारत कभी खोटा काम करके उन्नत नहीं हो सकता, क्योंकि ऐसे कार्यों में साधु, संतों का आशीर्वाद नहीं मिलेगा। सत्य का समर्थन नहीं करना यानि असत्य का समर्थन करना है।

910. मनुष्य तो जियें पर पशु-पक्षियों को भी जीने दें, यही लोकतंत्र है।

911. देश को धन, प्रासाद से नहीं बल्कि अहिंसा से समृद्ध बनाइए।

912. विदेश में विदेह की बात नहीं मिलती। सूख-सूख कर सोंठ जैसे बन जाओगे तो भी वहाँ सुख नहीं मिलता।

913. वोट से आप नोट नहीं मांगिये बल्कि अहिंसा की बात करिये, पशुओं के संरक्षण की बात करिये। (डिब्बे का दूध देशवासियों की बुद्धि को भ्रष्ट करने वाला है)।

914. चेतन धन (पशुधन) का बेचना जिस देश में होगा उस देश का कभी भी विकास नहीं हो सकता।
915. जो मनु के, भगवान् के कहे अनुसार चलता है वही मनुष्य है।
916. विदेशी संस्कार नंबर से चलते हैं, देशी भारतीय संस्कार नाम से चलते हैं।
917. भारत को स्वतंत्रता मिली नहीं है बल्कि मान ली गयी है।
918. प्रतिभारत भारत चाहिए दूसरा भारत, महाभारत नहीं चाहिए।
919. उन्नत भारत के लिए उन्नत भावना को संस्कारित करने की आवश्यकता है।
920. राष्ट्रीय पक्ष को लेकर कार्य करना चाहिए पक्ष/विपक्ष को छोड़कर स्वतंत्रता का अर्थ अपना तंत्र होता है स्वच्छंदता नहीं।
921. योग्यता के बिना स्वतंत्रता लाभप्रद नहीं हो सकती।
922. मोबाइल, फोन के साथ देशावकाशिक व्रत पल ही नहीं सकता।

देशनालब्धि

923. देशनालब्धि का अर्थ गुरु के मुख से कहा हुआ, सुनना है और उपदेश का अर्थ किसी से भी सुनना होता है।
924. अनादि मिथ्यादृष्टि को देशनालब्धि पूर्वक ही सम्यग्दर्शन हुआ करता है।
925. प्रभु की धर्म-देशना को सुनकर तिर्यञ्च भी अपना कल्याण कर लेते हैं।
926. प्रभु की दिव्य-देशना सभी जीवों को अपनी-अपनी भाषा में सुनाई देती है।

दोष

927. संसारी प्राणी अपनी कमजोरी को बताना नहीं चाहता इसलिए दूसरे को दोष देता है।
928. दोष दृष्टि वाले की नेत्र ज्योति कमजोर भी हो तो उसे दूसरे की कमी दिखाई दे जाती है, चाँद में भी दाग दिख जाता है।
929. चन्द्रमा तुम्हारी चाँदनी ही तुम्हें दागदार बता रही है, गर चाँदनी न होती तो दाग दिखते ही नहीं।
930. छोटी-सी कमजोरी पर ध्यान न देने से जीवन का विकास रुक जाता है।
931. गुरु हमारे छोटे-छोटे दोषों को भी दिखाते हैं तो वे हम पर दया कर रहे हैं, ऐसा समझना चाहिए।
932. जिस हेतु से दोष आ रहे हैं, उस हेतु के कारण को ही दूर करने से दोषों से मुक्त हुआ जा सकता है।
933. दूसरों के दोष देखना, दोषों की कथा करना, जिनका यह भोजन है, समझना वह अपने दोषों को पुष्ट कर रहा है।
934. परनिंदा रूप भोजन करने वाले के राग-द्वेष आदि अजीर्ण रोग हमेशा बना ही रहता है।

935. खुरापात ही जिनकी खुराक हो, वे बैल, श्वान और चूहे के समान हैं, जैसे चूहे खुरापात से जमीन खोदकर सुरंग बनाकर दूसरे के घर में घुस जाते हैं।
936. दोष लगना तो सरल है, राग-द्वेष की कोठरी में बैठकर सदा सफेद (दाग रहित) नहीं रहा जा सकता।
937. चन्द्रमा का दाग उसकी प्रभा के कारण संसार को देखने के लिए मिला लेकिन चन्द्रमा जैसा गुण कोई प्राप्त नहीं कर पाता, शरद पूर्णिमा के चाँद से औषधियाँ निर्मित होती हैं, यह गुण संसारी प्राणी प्राप्त नहीं कर पाता जबकि उसके दाग की आलोचना कर बैठता है।
938. रागी को साधु के दोष तो दिखते हैं लेकिन वह एक बार साधु बनकर देख ले तो उसे ज्ञात हो साधु बनना कितना कठिन है।
939. क्या करें? सफेद कपड़े पर एक छोटा-सा दाग दिख ही जाता है उसकी सफेदी नहीं दिखती, दोष तो अंधा भी देख लेता है, पर गुणों को प्राप्त नहीं कर पाता।
940. दूसरों के दोषों को देखकर मौन धारण कर लेना चाहिए।
941. कोई राग-द्वेष कर रहा है तो एकान्त से वह दोषी नहीं है, क्योंकि उसके कर्म का भी उदय है, ऐसा समझना चाहिए।
942. दोषों का त्याग, गुणों का ग्रहण तभी संभव है, जब हम दोष को दोष के रूप में एवं गुण को गुण के रूप में स्वीकार करेंगे।
943. संसार में तीन प्रकार के पदार्थ होते हैं-हेय (छोड़ने योग्य), उपादेय (ग्रहण करने योग्य) एवं ज्ञेय (जानने योग्य)।
944. ऋण, वृण् (घाव), अग्नि, कषाय के छोटे से कण को भी कम नहीं समझना चाहिए।
945. बुरे कार्यों में अंधा, गूँगा, लँगड़ा, लूला, बहरे बन जाओ, अर्थात् बुरा कार्य न देखो, न सुनो और न करो, न ही बुरे कार्य की अनुमोदना करो, बुरे विचारों से बचने का सही उपाय है कि उन्हें छोड़कर अब जो पाना चाहते हो, मन को उसी ओर लगाइए।

दृष्टि

946. स्वरूप की ओर दृष्टि रखने से जीव अनंत सुख का भोक्ता हो जाता है।
947. जिस वस्तु से वीतरागता प्राप्त हो सकती है, उसी वस्तु से रागी व्यक्ति राग प्राप्त कर लेता है, यह दृष्टि का ही परिणाम है।
948. सम्यक् रूप से दृष्टि रखने से ही उद्धार होगा।

949. निश्चय दृष्टि आते ही व्यवहार के सारे भूत उतर जाते हैं।

950. सम्यग्दृष्टि को अपनी पहचान में कुशलता रखनी चाहिए।

951. स्व की पहचान के बिना श्रद्धान मजबूत नहीं बनता एवं सही दिशा में कदम भी नहीं उठते।

952. मोक्षमार्ग में जब स्वयं अपने दोषों का गुरु के सामने बखान करें तभी योग्य प्रायश्चित्त मिल सकता है।

953. बाह्य शरीर को जड़ मान लो तो क्रोध व राग-द्वेष नहीं होगा, यह ज्ञाता-दृष्टापन बहुत महत्त्वपूर्ण है।

954. हमारी दृष्टि के कारण ही वीतरागता में भी राग दिखता है एवं राग में भी वीतरागता दिखती है।

955. श्रावक मुनि के पीछे चलता है और उसकी दृष्टि हमेशा मुनिव्रत की ओर ही लगी रहती है।

956. जितने पदार्थ में गुण हैं, उनमें पक्षपात न करना, मोहित न होना अमूढ़दृष्टित्त्व अंग है।

957. विशेष रूप से तत्त्व चिन्तन होने पर विषय-सुखों से दृष्टि हट जाती है।

द्वादशांग

958. द्वादशांग को सुनने वाले मुनि होते हैं, उन्हें ''विस्तार सम्यग्दर्शन'' प्राप्त होता है।

ध

धन

959. अर्थ के लिए जीवन नहीं बल्कि जीवन चलाने के लिए कुछ अर्थ रख लें तो ठीक है।

960. संग्रह का विरोध नहीं, परिग्रह का विरोध है। संग्रह इसलिए किया जाता है कि समय आने पर उसे बांट दिया जावे और चमड़ी जावे पर दमड़ी ना जाये इस वृत्ति का नाम है परिग्रह।

961. ज्यादा अर्थ आने से भी परमार्थ छूट जाता है इसमें ब्रेक लगाना भी आना चाहिए नहीं तो गड्ढे में चले जाओगे।

962. आपके जीवन में धन है तो ठीक है पर यदि आप धन के जीवन में चले जाओगे तो क्या होगा?

963. नाव जब तक पानी में तैरती है तब तक ठीक है और यदि नाव में पानी आ जाता है तो नाव में हाहाकार मच जाता है।

964. यह धन का संयोग तो संयोग है, पर हाथ की रेखायें मैल नहीं होती उन रेखाओं में पुरुषार्थ लिखा होता है, भाग्य बनाया जाता है।

965. वह धन पैसा किस काम का जो गले का फंदा बन जावे।

966. धन को उतना ही ग्रहण करना चाहिए जितना उपादेय हो, भोजन जैसा ही।

967. धन के त्याग से धर्म प्रभावना होती है, धन से नहीं।

968. धन से सम्बन्ध उतना ही रखो, जैसे दीपक जलाते वक्त माचिस से तीली निकालते हैं, अंगुली, अंगूठा उससे दूर रखते हैं और ज्यादा गड़बड़ करे तो तीली को फेंक देते हैं। ठीक उसी प्रकार धन रखो लेकिन आँख बंद होने से पहले फेंक दो। छोड़ जाओगे तिजोरी में तो रखवाली करने आना पड़ेगा, कुंडलीमार बनकर।

969. इतना ही अर्थ (धन) अपने पास रखो जिससे परमार्थ का दरवाजा बंद न हो सके।

970. भगवान् ने जिस ओर से मुख फेर लिया आपने उस ओर मुख कर लिया। आप जोड़ने में लगे हैं लेकिन अपार धन राशि केवल पूर्व सात्विक साधना से प्राप्त होती है, पूर्व में जो महाव्रती बनते हैं वे ही अगले भव में चक्रवर्ती आदि पद प्राप्त करते हैं। आप अहिंसा का आधार लेकर साधना करो, धन-लक्ष्मी तो आपके पीछे-पीछे आवेगी।

971. यदि मल संचय रोग का कारण बनता है तो धन संचय दोष का कारण बनता है।

972. युक्तिपूर्वक तन, मन एवं धन का उपयोग किया जाता है वरन् पाप का बंध होता है। धन विषयों में लगाओगे तो पाप बंध होगा और पाप से कमाई सम्पदा भी नष्ट हो जाती है।

973. आप लोग पुण्य के फलों में रचो-पचो नहीं, इसे धर्म में लगा देते हैं तो अगले भव में अच्छे-अच्छे पद प्राप्त होते हैं।

974. अपना द्रव्य तो शाश्वत है, इस नश्वर द्रव्य (धन) के बारे में मत सोचो इसे प्रभु के चरणों में चढ़ा दो।

975. इस प्राण (जान) से रहित सम्पदा की रक्षा में आपके प्राण भी जा सकते हैं।

976. धनवान बनने से पहले ये सोचिये कि धन क्या है? धन पाप है तो क्या आप पापी होना चाहोगे?

977. धन कमाने से पहले उसके सदुपयोग की बात सोच लो।

978. आपका धन बैंक में है, वह परिग्रह है, वहाँ से पाप की नाली आप तक हर

क्षण आती रहती है।

979. शुद्ध धन (सात्त्विक धन) के द्वारा सज्जनों की भी संपत्तियाँ विशेष नहीं बढ़ती हैं, जैसे नदियाँ शुद्ध जल से कभी भी परिपूर्ण नहीं होती।

980. ''वैधानिक तो, पहले बनो फिर धनिक बनो''।

981. धन चाहते हो तो आशा अवश्य आवेगी, फिर उससे जलोगे ही।

धर्म

982. धर्म को मात्र सुनना सार्थक नहीं है, बल्कि उसके पालन करने में ही सार्थकता है।

983. संसार में चाहे कोई सुखी रहे, चाहे दुःखी रहे उसे धर्म ही करने योग्य है।

984. अविनश्वर सुख पाने के लिए धर्म का ही अनुष्ठान करो।

985. धर्मात्मा को कभी प्रमाद नहीं करना चाहिए, पुण्यशाली व्यक्तियों पर भी पूर्व कर्म के उदय से आपत्तियाँ आ जाती हैं।

986. बैंक में पैसा जमा है तो वह बढ़ता ही जावेगा, भले आप कुछ पुरुषार्थ करो या न करो, वैसे ही धर्म करते जाओ तो सुख भले न चाहो लेकिन मिलता ही जावेगा।

987. धर्म कभी भी इन्द्रिय सुख का भी विघातक नहीं हो सकता।

988. धर्म का फल बिन माँगे मिलता है और अचिंत्य फल मिलता है।

989. कल्पवृक्ष या चिंतामणि रत्न के सामने चिंतन करना पड़ता है, माँगना पड़ता है, लेकिन धर्म का फल आप सो रहे तो भी मिलेगा, उसमें कभी भी घटा-बढ़ी नहीं हो सकती।

990. धर्म करिये, चिंता न करिये, सब कुछ उपलब्ध होगा, जैसे वृक्ष की शरण में जाने से छाया माँगनी नहीं पड़ती अपने आप मिलती है।

991. धर्म को छोड़कर धनोपार्जन करते रहना मनुष्य के लिए अभिशाप सिद्ध होगा।

992. धर्म की रक्षा प्रयोग से ही होती है, मात्र कोरे ज्ञान से नहीं।

993 आप समय निकालकर भगवान् के पास आ तो जाते हो, लेकिन मन को घर में ही छोड़ आते हो, एक बार मन के साथ आओ तो धर्म समझ में आयेगा।

994. लोगों की साधारणतया से धारणा बन जाती है कि जब से धर्म करना प्रारम्भ किया है, तब से विघ्न आना प्रारम्भ हो गये हैं, लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि धर्म के कारण आपत्ति आ रही है, बल्कि अब कर्म की निर्जरा प्रारम्भ हो गयी है, ऐसा श्रद्धान रखना चाहिए।

995. तोता रटन्त का नहीं बल्कि आत्मरमण का नाम धर्म है।

996. धर्म ही परम रस का रसायन है, धर्म ही समस्त निधियों का निधान है, धर्म ही कल्पवृक्ष है, धर्म ही कामधेनु गाय है और धर्म ही चिन्तामणि रत्न है।

997. जिनेश्वर के द्वारा कहे हुए धर्म को प्राप्त होकर दृढ़ बुद्धि के धारक सम्यग्दृष्टि हुए हैं, वे ही धन्य हैं।

998. इन्द्रिय सुख को दुःख मानना ही धर्म की शुरुआत है।

999. इन्द्रिय सुख की सामग्री को इकट्ठा करना यानि धर्म से विमुख होना है।

1000. धर्मानुराग राग नहीं है, बल्कि विषयों को भुलाने वाला है।

1001. धर्मानुराग उदित होते सूर्य की लालिमा जैसा है, जो संसार विषयों से जगाता है/बचाता है।

1002. धर्म वस्तुतः एक अजेय शस्त्र है धर्म के बिना जीवन में कुछ हॉसिल नहीं किया जा सकता। यदि धर्म की रक्षा की है तो आपकी भी रक्षा हो सकती है।

1003. दर्शन का नाम धर्म है प्रदर्शन तो मात्र धर्म की ओर आकर्षित करने का उपाय है।

1004. साधु को अपने आत्म धर्म के अलावा किसी की आवश्यकता नहीं होती।

1005. धर्म के माध्यम से ही संतोष मिलता है, धन से नहीं।

1006. आशा को नियंत्रण में धन से नहीं बल्कि धर्म से किया जा सकता है।

1007. किसी के खून को चूसकर अपने खून को बढ़ाना धर्म नहीं माना जाता।

1008. धर्म के स्थानों में यदि मान कषाय करोगे तो ध्यान रखना सद्गति नहीं मिलेगी।

1009. धर्म का सेवन भी प्रत्येक व्यक्ति को भोजन की तरह करना चाहिए।

1010. सुख-दुःख की अपेक्षा नहीं रखना ही धर्म की सही सेवा है।

1011. अन्याय का पक्ष भगवान् नहीं लेते लेकिन धर्म की परीक्षा अवश्य होती है।

1012. धन कमाने की स्पर्धा की जगह धर्म कमाने की स्पर्धा में लगे रहो, इसमें जितना तन, मन व धन लगेगा वह सबसे बड़ा सदुपयोग होगा। प्रचलन में धर्म आवेगा तो बढ़ेगा।

1013. क्षत्रिय ही धर्म की रक्षा कर सकता है।

1014. स्वयं जीते हुए जीने वालों को सहयोग देना धर्म है धर्म का मायना बहुत विस्तृत है कर्त्तव्य निष्ठा के बिना धर्म की गंध नहीं आ सकती। कर्त्तव्य ही सही ज्ञान है, सम्यग्ज्ञान है।

1015. जो कुछ कार्य या चेष्टायें अपने को अच्छी नहीं लगती वह दूसरों को भी अच्छी नहीं लगती ऐसा समझना धर्म है।

1016. हमारी भावना धर्ममय हो जाती है तो प्रकृति साथ देती चली जाती है।

1017. प्रकाश प्रदान करो प्रकाश में मत आओ, जब धर्म का कार्य कर रहे हो तो धर्म का ही नाम होना चाहिए। आपका नाम तो टेम्प्रेडी है।

1018. धर्म रूपी ऊष्मा के साथ जीवित रहो यह अपूर्णदशा से पूर्णदशा की ओर जाने का रास्ता है।

1019. हमेशा धर्मध्यान का वातावरण बना रहे ऐसा सम्यग्दृष्टि सोचता रहता है।

1020. धार्मिक क्षेत्र में शक्ति को छुपाओगे तो आगे फिर शक्ति कम प्राप्त होगी।

1021. संसार में सब कुछ सुलभ है, एक मात्र धर्म ही दुर्लभ है उसे पाने के लिए यदि सब कुछ त्यागना पड़े तो भी पीछे नहीं हटना चाहिए।

1022. धर्म को स्वीकार करते ही संतुष्टि (आत्मसंतुष्टि) उपलब्ध होने लगती है। धर्म को जितने अंशों में स्वीकारोगे उतनी संतुष्टि प्राप्त होगी।

1023. पशु-पक्षी भी धर्म से संतुष्टि का अनुभव करते हैं और अपना हिंसक भाव छोड़ देते हैं धर्म के अलावा प्राणी को तीन लोक में और कोई संतुष्टि नहीं दे सकता।

1024. जो विषय/कषायों की सामग्री के बीच में रहकर भी धर्म रूपी कील का सहारा लेता है वह बच जाता है। संसार में भी मुक्ति का अनुभव किया जा सकता है पर्याय को गौण करना पड़ता है।

1025. धर्म दिखाने और किसी पर मेहरबानी करने के लिए नहीं किया जाता बल्कि कर्मक्षय के लिए किया जाता है।

1026. धर्म शुद्धवृत्ति का नाम है, इसे स्वयं में प्रकट करना होता है इसे थोपा नहीं जा सकता।

1027. जो धर्म, कर्म विनाशक नहीं होता वह समीचीन धर्म नहीं हो सकता।

1028. विषय/कषायों को छोड़कर जो धर्म को स्वीकार कर लेता है, उसे वर्तमान में आत्मसंतुष्टि प्राप्त हो जाती है एवं कर्मों की निर्जरा भी प्रारम्भ हो जाती है बाद में मोक्ष की प्राप्ति भी होती है।

1029. धर्म, भाव परक होता है लेकिन बाह्य क्रियाओं से भीतरी भाव धर्म का ज्ञान होता है।

1030. धर्मात्मा संख्यात ही होंगे अधर्मात्मा असंख्यात होते हैं एक धर्म की पार्टी है एक अनंत की पार्टी है।

1031. आप धर्मात्मा हैं तो आपको यह श्रद्धान कर लेना चाहिए कि कर्म की निर्जरा प्रारम्भ हो गयी है।

1032. धर्मध्यान करना बहुत कठिन है और महंगा भी है।

ध्यान

1033. अपने उद्देश्य को सही बनाये रखना ही धर्मध्यान है।

1034. आर्त्त, रौद्रध्यान को पहचानकर उसे छोड़ दो, फिर धर्मध्यान मिल जायेगा।

1035. हमारा कितना समय प्रमाद में निकल गया यह भी ध्यान में रखना चाहिए।

1036. सामायिक में तन, मन कब हिलता है, यह देखो इसी का नाम ध्यान है।

1037. ध्यान का कार्य ड्रायवर के जीवन के समान है, जो सभी व्रत, नियम रूपी यात्रियों को मंजिल तक पहुँचाता है।

1038. ध्यान सब अनुष्ठानों का उपसंहार है।

1039. सामायिक की सामर्थ्य से ध्यान धारण करते हैं और ध्यान से केवलज्ञान प्राप्त होता है।

1040. स्वभाव की ओर दृष्टि रखने से ध्यान अपने आप लग जाता है।

1041. ध्येय की ओर दृष्टि रखें ध्याता की ओर नहीं, क्योंकि ध्याता अशुद्ध है, ध्यान में शुद्ध को रखो।

1042. ध्यान करना फिर भी आसान है, लेकिन ध्यानातीत होना बहुत कठिन है, गुणस्थानातीत होने के लिए ध्यानातीत होना अनिवार्य है।

1043. ऐसा कोई भी गुणस्थान नहीं है जिसमें ध्यान नहीं हो, इसलिए कहा है कि ध्यानातीत हुए बिना मुक्ति नहीं हो सकती।

1044. ध्यान का अर्थ है अस्त-व्यस्त योगों को व्यवस्थित करना।

1045. सभी शुभ-ध्यानों से कर्म प्रकृतियों की निर्जरा होती है।

1046. शुद्धात्मा की आराधना से तात्पर्य हैं आत्म-ध्यान में लीन होना।

1047. शुद्धात्मा का ध्यान करने वाला रत्नत्रय का धारी होता है, रत्नत्रय महाव्रत धारण करने से प्राप्त होता है।

1048. ध्यान आत्मा का स्वभाव नहीं है, आत्मा का परिणाम है।

1049. ज्ञान और ध्यान में उतना ही अंतर होता है जितना प्रवृत्ति और निवृत्ति में हुआ करता है।

1050. शक्ति ज्ञान से नहीं ध्यान से आती है।

1051. दूसरे के दुःख को देखकर दुःखी होना एवं दूसरे का दुःख दूर कैसे हो, ऐसा

विचार करना अपायविचय धर्म ध्यान कहलाता है।

1052. ध्यान रूपी अग्नि के माध्यम से ही कर्म रूपी ईंधन को जलाया जा सकता है।

1053. शुक्लध्यान की ओर ध्यान रखने से धर्मध्यान अच्छे से होता है।

1054. शारीरिक वेदना होने पर भी उसमें हर्ष-विषाद नहीं करना धर्मध्यान का कारण है।

1055. ध्यान में एक काम अच्छा हो जाता है कि स्वार्थ मिट जाता है।

1056. ध्यान मुद्रा में भद्रता होनी चाहिए यह प्रसन्नता का प्रतीक है यह हास्य नहीं है, हर्ष -विषाद से परे है।

1057. दूसरों के दुःख को देखकर आँखों में पानी आना धर्म ध्यान है। आज पानी का स्तर नीचे क्यों जा रहा है ? क्योंकि आज दूसरों के दुःख को देखकर आँखों में पानी नहीं आ रहा है।

1058. ध्यान में कंडीसन तो होती है लेकिन एयर कंडीशन नहीं।

1059. स्वार्थ के लिए रोना आर्त्तध्यान माना जाता है। स्वार्थ को भूलने से धर्म ध्यान अपने आप हो जाता है।

1060. ध्यान द्वारा संसार का भी संपादन होता है तो ध्यान द्वारा मुक्ति का भी सम्पादन होता है।

1061. एक ध्यान सोपान का कार्य कर जाता है तो एक ध्यान मदिरापान का।

1062. एक ध्यान के माध्यम से हम गिर जाते हैं, एक ध्यान के माध्यम से हम उन्नत हो जाते हैं, आगे बढ़ जाते हैं।

न

1063. निश्चिंतता में जहाँ भोगी सो जाता है, वहाँ योगी आत्मा में खो जाता है।

1064. द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के अनुरूप हमारी शक्ति सो भी जाती है और जाग भी जाती है।

1065. निमित्ताधीन दृष्टि होने से ही परिणाम विकृत होते हैं।

1066. नदी पहाड़ों, पत्थरों से डरकर कभी वापस नहीं लौटती जबकि मानव को थोड़ी-सी कठिनाई का अनुभव हो जाता है तो वह अपना रास्ता बदलने लग जाता है।

निश्चय/व्यवहार

1067. वह व्यवहार, व्यवहार नहीं माना जाता जो निश्चय की ओर न ले जाए और

वह निश्चय, निश्चय नहीं माना जाता, जो व्यवहार को बिल्कुल ही तोड़कर रख दे, गौण कर दे।

1068. बाहरी पक्ष, भीतरी पक्ष दोनों आपस में सम्बन्ध रखते हैं, जिसे हम व्यवहार या निश्चय कह सकते हैं।

1069. निश्चय-व्यवहार दोनों नय सापेक्ष हैं। जैसे एक आँख विषय बनाती हैं तो दूसरी आँख सहयोग देती है। परस्पर सापेक्षता से ही काम चलता है।

1070. निश्चय कहता है तुम बाह्य में कुछ नहीं कर सकते यदि करना है तो अपने में कुछ करो।

1071. निश्चय में कर्म, कर्त्ता, करण सामग्री अभिन्न हुआ करती है और हमारी दृष्टि हमेशा भेद पर जाती है, अभिन्न की ओर जाना महत्त्वपूर्ण है। अभिन्न से निरालम्ब, परनिर्पेक्ष अपने आप रुचने लगता है।

1072. हम निश्चय के स्थान पर व्यवहार और व्यवहार के स्थान पर निश्चय की बात करते हैं यही गलत है।

1073. व्यवहार में भी जिसे छोड़ रहे हो उस ओर दृष्टि न रखकर जो निश्चय ग्रहण करना है उस ओर दृष्टि रखना चाहिए।

1074. भगवान् निश्चय से आत्मज्ञ हैं और व्यवहार से सर्वज्ञ हैं।

1075. निश्चय में अपना आत्म तत्त्व ही उपादेय है।

1076. अशुद्ध निश्चयनय बारहवें गुणस्थान तक चलता है क्योंकि वहाँ तक अशुद्ध उपादान चलता रहता है।

1077. त्याग और ग्रहण निश्चय में होता ही नहीं।

1078. नरकों में जो वेदना है, वह सम्यग्दर्शन का भी कारण बनती है।

1079. केवली भगवान् निश्चय से आत्मा को देखते-जानते हैं, व्यवहार से सभी को जानते हैं, अर्थात् निश्चय से आत्मज्ञ हैं और व्यवहार से सर्वज्ञ हैं।

1080. स्वसंवेदन तो निश्चयनय का आलम्बन लेकर ही किया जा सकता है।

1081. अपने आप को उन्मार्ग से उठाकर सन्मार्ग पर लाना निश्चय सम्यग्दर्शन है।

1082. यदि गुरु महाराज हमेशा निश्चय में ही बैठे रहते तो हम लोग इस मार्ग पर कैसे आ पाते ?

1083. व्यवहार में धर्म तीर्थ की प्रभावना होती है और निश्चय में आत्मा को प्राप्त करने की भावना होती है।

1084. व्यवहार धर्म के अभाव में धर्म तीर्थ का लोप हो जायेगा और निश्चय धर्म के अभाव में आत्म तत्त्व का लोप हो जायेगा, अतः दोनों धर्म की आपस में

मित्रता है, एक दूसरे में कार्य-कारण या साध्य-साधक का सम्बन्ध है।

1085. निश्चय या शुद्धोपयोग तो उपादेय है ही लेकिन व्यवहार, शुभोपयोग उसका कारण है उपकारक है, इसलिए यह भी उपादेय है।

1086. अशुद्ध निश्चयनय से राग जीवात्मा ने किया, निश्चय से तो आत्मा में राग है ही नहीं ऐसा श्रद्धान रखना ही सही श्रद्धान है तभी हम राग को छोड़ सकते हैं।

1087. निश्चयनय से संसारी प्राणी कषायों से, पापों से रहित है। फिर मोक्षमार्ग पर चलो, ऐसा कहना गलत है पर ऐसा नहीं है इसलिए व्यवहार धर्म आवश्यक है।

1088. व्यवहारनय से जो भगवान् का श्रद्धान नहीं कर सकता, वह निश्चय से भी श्रद्धान नहीं कर सकता।

1089. निश्चयनय की अपेक्षा न बंध है, न मोक्ष है बल्कि सभी जीव शुद्धनय से सिद्धस्वरूप ही हैं।

1090. निश्चय का अर्थ स्वभाव होता है इसलिए राग-द्वेष जीव से नहीं बल्कि जीव के स्वभाव से भिन्न है, ऐसा विश्वास रखने पर ही हम राग-द्वेष से बच सकते हैं, वरन् हम कभी राग-द्वेष को छोड़ ही नहीं सकते।

1091. श्रमण (साधु) को दो ड्रेसे (पोसाक) दी गयीं हैं, आत्मा से बाहर आते ही व्यवहार में मूलाचार और निश्चय से जब आत्मा में जाते हैं तो समयसार है, लेकिन एक बात हमेशा ध्यान रखना बिना मूलाचार के समयसार में प्रवेश नहीं किया जा सकता क्योंकि व्यवहार मुद्रा से ही निश्चय मुद्रा बनती है।

1092. आत्मा दूध की भाँति है और राग-द्वेष आदि कर्म पानी की भाँति हैं, इनका आपस में अनादिकाल से सम्बन्ध है ऐसा जब तक श्रद्धान नहीं होगा, तब तक दोनों को पृथक्-पृथक् करने की बात ही नहीं होती।

1093. शुद्धोपयोग अशुद्ध निश्चयनय का विषय है, क्योंकि वह स्वभाव नहीं है।

1094. अपने आपको उन्मार्ग से उठाकर सन्मार्ग पर लाना निश्चय सम्यग्दर्शन को पुष्ट करना है।

1095. जितने भी सिद्ध हुए हैं, उन्हें सबसे पहले व्यवहार मोक्षमार्ग प्राप्त हुआ है फिर निश्चय मोक्षमार्ग।

1096. व्यवहार पराश्रित नहीं है, क्योंकि पर के सहयोग से वह अपने में ही होता है, व्यवहार धर्म चकमक से उत्पन्न आग जैसा है और निश्चय धर्म लाइटर जैसा है।

1097. सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र रूप हलुआ बना है वही आत्म तत्त्व निश्चय रत्नत्रय है, ध्यान रूपी अग्नि से पकाया हुआ।

1098. सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों अभिन्न हों, तभी मोक्ष प्राप्त होता है, जैसे

नृत्यकार, गीतकार और वादक तीनों का स्वर एक हो तभी संगीत में आनंद आता है, निश्चय में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की एकता रहती है।

1099. जब व्यवहार में अनुपात सही रहेगा तभी निश्चय धर्म प्राप्त होगा।

प

परमार्थ

1100. स्वार्थ वही सही माना जाता है जिससे परमार्थ की सिद्धि होती है।

1101. तत्त्वोपदेश परमार्थ की भावना से ही दिया जाता है।

1102. तत्त्व का प्ररूपण करने के लिए स्वार्थ का विमोचन करना अनिवार्य है।

1103. अर्थ एवं काम पुरुषार्थ श्रावकों को धर्म पुरुषार्थ पूर्वक ही करना चाहिए, तभी जीवन सार्थक हो सकता है।

1104. साधु उसी को कहते हैं जो परमार्थमय हो क्योंकि परमार्थरत ही मोक्ष को प्राप्त करते हैं।

प्रशंसा

1105. भोजन कराने वालों की प्रशंसा तब तक नहीं करनी चाहिए जब तक भोजन पच न जाये, यह नीति वाक्य है।

1106. जब तक राजा युद्ध में जीतकर न आ जाये तब तक राजा की प्रशंसा मत करना।

1107. जब तक नारी वृद्धा नहीं हो जाती भले शीलवती हो प्रशंसा नहीं करनी चाहिए।

1108. जब तक साधना पूरी नहीं हो जाती, तब तक अपनी साधना की प्रशंसा नहीं करनी चाहिए।

1109. नाविक की प्रशंसा नाव के उस पार जाने तक नहीं करनी चाहिए, जैसे बीज बोने के उपरांत किसान की प्रशंसा तब तक नहीं करनी चाहिए जब तक वह फसल को काटकर घर नहीं ले आता।

1110. आप किसी की प्रशंसा नहीं कर सकते तो एक नियम ले लो कि हम कभी किसी की निन्दा नहीं करेंगे।

प्रज्ञा

1111. प्रज्ञा के द्वारा आत्मा और कर्म के सम्बन्ध को जानो तथा प्रज्ञा के द्वारा आत्मा को जानो एवं प्रज्ञा के द्वारा कर्म का छेदन करो।

1112. प्रज्ञा के द्वारा ही धर्म का स्वरूप जाना जा सकता है।

प्रमाद

1113. प्रत्येक प्रवृत्ति में प्रायः प्रमाद जुड़ा रहता है।

1114. प्रमाद आत्मा की कमजोरी का नाम है, तीर्थङ्कर भी छद्मस्थ अवस्था में प्रमाद में, छट्ठे गुणस्थान में आ जाते हैं।

1115. अभ्यन्तर प्रमाद तो वर्धमान चारित्र वाले तीर्थङ्करों में भी आ जाता है।

1116. अप्रमत्त का अर्थ प्रमाद रहित अवस्था है, यह मुनिराज के सप्तम-गुणस्थान में गुप्ति एवं समिति दोनों में रह सकती है।

1117. आहार एवं स्वाध्याय के समय भी मुनियों के सप्तम-गुणस्थान होता है।

1118. समितियों का पालन करते समय बुद्धिपूर्वक प्रमाद होता है और गुप्ति आदि के समय अबुद्धिपूर्वक प्रमाद होता है।

1119. शनिवार की रात को सोया विद्यार्थी रविवार को जानबूझकर देर से उठता है, क्योंकि उसे मालूम है कि आज उसे स्कूल नहीं जाना, यह प्रमाद (आलस्य) कहलाता है, प्रमाद वास्तव में असावधानी ही है, इसे भी कषाय में ही गिना है।

1120. इस जीव को जब तक योग्य पदार्थ नहीं मिलता तब उसके लिए प्रयास करता है और मिल जाने पर प्रमाद करने लगता है।

प्रत्यक्ष-परोक्ष

1121. जिसमें आत्मा को ज्ञेय की ओर उपयोग ले जाना पड़ता है, वह परोक्ष ज्ञान है और जिसमें आत्मा को उपयोग बाहर नहीं ले जाना पड़ता वह प्रत्यक्ष ज्ञान है।

1122. परोक्ष का ही विश्वास किया जाता है, क्योंकि मानना तभी होता है जब तक उसकी साक्षात् अनुभूति नहीं होती।

1123. मान्यता में विवाद आ जाता है, जबकि प्रत्यक्ष होने पर विवाद समाप्त हो जाता है।

1124. स्वाध्याय के समय वाद-विवाद होता है और ज्यों ही भगवान् के सामने पहुँचे वाद-विवाद समाप्त, शांति मिल जाती है, यह सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष की महिमा है।

1125. परोक्ष साक्षात् सुख नहीं देता मान्यता में है कि सुख मिलेगा।

1126. किसी की परोक्ष में निंदा करना हिंसा का प्रतीक है।

1127. अवधिज्ञान प्रत्यक्षज्ञान होकर भी मर्यादित पदार्थ आदि को जानता है।

1128. जिसमें, द्रव्य, क्षेत्र, काल एवं भाव रूप व्यवधान उपस्थित हो जाते हैं, उसे परोक्ष कहते हैं।

1129. परोक्ष ज्ञान के द्वारा भक्ति अच्छी होती है, भक्ति के माध्यम से अपनी प्यास बुझा सकते हैं।

1130. परोक्ष ज्ञान में ही मन को संयत बनाने की बात होती है, प्रत्यक्ष ज्ञान के बाद कुछ नहीं होता।

प्रसन्नचित्त

1131. हमेशा प्रसन्नचित्त रहना चाहिए, प्रसन्नचित्त रहने से कर्मों के वेग में भी आत्मा का संवेग भाव काम करता रहता है, इसलिए फूल की तरह हमेशा 'प्रसन्न' रहना चाहिए।

1132. प्रसन्नचित्त होकर ही आवश्यकों का पालन करें, उससे और निखार आ जाता है दिनोंदिन चर्या के प्रति उल्लास बढ़ता जाता है।

1133. रोते हुए दिन निकालने की अपेक्षा मुस्कान के साथ दिन निकाल लो, कैसे निकालें ? प्रभु को देख लो वे हमेशा शांत रहते हैं।

1134. हम दुःखी रहते हैं तो सामने वाले भी दुःखी रहेंगे तो दोनों को असाता का बंध रहेगा, तो क्या आप दूसरों को असाता का बंध कराना चाहते हैं।

1135. प्रभु! आपने मोक्षमार्ग का प्ररूपण किया पर कुछ भी बदले में चाह, इच्छा नहीं रखी, धन्य है आपकी यह अलौकिक वृत्ति।

1136. आत्महित के साथ-साथ परहित की भी सोच सकते हैं, यह अपायविचय धर्म्यध्यान में आ जाता है।

प्रमोद

1137. श्रावकों के लिए मोक्षमार्ग के प्रति एवं मोक्षमार्गी के प्रति ''प्रमोदभाव'' रखना चाहिए, क्योंकि यह भाव सम्यक्त्वाचरण चारित्र में बहुत बड़ा सहयोगी है।

पाप-पुण्य

1138. पाप एक दलदल है, उस पाप के दलदल के कारण संसारी प्राणी अपने आप को आज तक ऊपर नहीं उठा पाया है।

1139. पाप पाताल की ओर ले जाते हैं।

1140. पाँचवें पाप (परिग्रह) को छोड़ने के लिए बोलियाँ लगायी जाती हैं यह परिग्रह पाप सभी पापों का बाप है।

1141. अपव्यय सबसे बड़ा पाप है।

1142. आज हवा कुछ ऐसी चल पड़ी है कि पाप को नहीं पुण्य को मिटाने की बात करते हैं और पापमय होते जा रहे हैं।

1143. जिनके पास पाप नहीं है, वे पूजन योग्य हैं।
1144. भूलकर भी तत्त्ववेत्ता पुण्य कर्म की निर्जरा के बारे में न सोचें, तभी वह सच्चा श्रद्धानी माना जावेगा।
1145. पाप कर्म की निर्जरा की जाती है, जैसे-जैसे पापकर्म की असंख्यात गुणी निर्जरा होती है वैसे-वैसे पुण्य का अनुभाग बढ़ता जाता है।
1146. पाप करोगे तो पापी कहलाओगे और पुण्य/ धर्म करोगे तो पुण्यात्मा/ धर्मात्मा कहलाओगे, क्योंकि स्वयं के कार्यों के माध्यम से टाइटल मिलते हैं किसी की कृपा से नहीं।
1147. प्रतिशत में जीने वालों को सुख कहाँ से मिलेगा 90% पाप जिसके जीवन में हो उसे सुख नहीं मिल सकता।
1148. 10% पुण्य की सुगंध 90% पाप की दुर्गंध के बीच नहीं आ सकती।
1149. दोषों से अनुराग और गुणों से द्वेष रखने से पाप बंध ही होता है और गुणों में अनुराग दोष में द्वेष रखते हैं तो पुण्य बंध होता है और इन दोनों में राग-द्वेष नहीं रखने से कर्म की निर्जरा होती है, मोक्ष होता है।
1150. जो वर्तमान में पाप नहीं करता वह यहाँ भी सुखी है और आगे जहाँ भी जावेगा वहाँ भी सुखी रहेगा, इसलिए सुख चाहते हो तो पापों का त्याग कर दो।
1151. इन्द्रियनिग्रह, संयम, तपश्चरण, जिनभक्ति, दयाभाव ये सभी दुर्लभ गुण महान् पुण्यात्मा जीव के ही होते हैं, जिनके संसार रूप समुद्र का किनारा निकट में आ चुका हो।
1152. सात्त्विक भाव, पुण्य स्वयं के साथ दूसरों को भी उन्नति की ओर ले जाने में सहायक होता है।
1153. मोक्षमार्ग में आलोचना, प्रायश्चित्त को स्वयं स्वीकारना होता है, पाप बाँधा है तो स्वयं को परिमार्जित करना चाहिए।
1154. संसारी प्राणी में जन्म-मरण, विकास-ह्रास का क्रम चलता रहता है, उसके पीछे उसके जन्मान्तर में अर्जित पाप-पुण्य का ही हाथ रहता है।
1155. तुम्हारा वध तुम्हारे ही अहितकारी पाप कर्म के द्वारा होता चला आ रहा है।
1156. जिससे आपको कष्ट होता हो, उसे क्या आप अपने पास रखना चाहोगे, उन पाँच पापों को छोड़ने के लिए जल्दी तत्पर हो जाओ।
1157. पाप छोड़ने की दिशा में साधारण लोगों की गति नहीं हो और यदि वह छोटा भी हो और पाप छोड़ने की दिशा में उत्साह के साथ लीन हो तो उसकी

मजबूत आस्था, आत्मबल एवं पुरुषार्थ प्रशंसनीय है।
1158. जो पुण्यवान है और पुण्य के कार्यों में लगे हुए हैं, उनके यहाँ लक्ष्मी और सरस्वती दौड़ी चली आती है।
1159. पुण्यवानों की नौकरी में तो लोग लग जाते हैं लेकिन पुण्य के कार्यों में नहीं लगते।
1160. आत्महितैषी को नश्वर शरीर के लिए पाप करना बंद कर देना चाहिए।
1161. पति-पत्नि दोनों एक दूसरे के लिए अपना पुण्य समाप्त करते रहते हैं, लाभ-हानि के बारे में सोचा जाये तो पुरुष स्त्री के लिए और स्त्री पुरुष के लिए अभिशाप सिद्ध होते हैं।
1162. घर नहीं छोड़ सकते तो घर के प्रति जो मूर्च्छा है उसे तो छोड़ सकते हो, जीवन में निरीहता होना अनिवार्य है, वरन् प्रतिपल पाप का बंध हो रहा है।
1163. पुण्यानुबंधी पुण्य के माध्यम से ही चक्रवर्ती आदि पद मिलते हैं।
1164. आत्मा के परिणाम ही सब कुछ हैं उसी से पुण्य-पाप होते हैं। जब कर ही रहे हैं तो धार्मिक परिणाम ही क्यों न करें? हाँ, संक्लेश विशुद्धि घटती-बढ़ती रहती है, ये बात अलग है।
1165. यह परिणामों का ही खेल है, नारायण ने कोटिशिला उठा ली, हार्टफेल नहीं हुआ, किन्तु भाई का वियोग सुनकर हार्टफेल हो गया।
1166. जैसे सूर्य का प्रकाश कमल के विकास में सहायक है, उसी प्रकार पूर्व में किया हुआ पुण्य समय पर अवश्य ही काम आता है, आपत्तियों को भी सम्पत्ति में बदलता जाता है।
1167. पुण्य क्षीण होने पर सारी शक्तियाँ छोड़कर चली जाती है।
1168. यह स्वार्थ की दुनियाँ है, यह जानते हुए भी यह जीव दूसरे के लिए स्वयं पाप कमाता है, यह अज्ञान ही तो है।
1169. पूर्व पुण्य का उदय नहीं है तो वर्तमान में कितना ही पुरुषार्थ करो तो कुछ भी पल्ले नहीं पड़ता।
1170. जिस पुण्य से धन मिलता है, उससे धर्म मिले यह कोई नियम नहीं, धर्म पाने के लिए दुर्लभ पुण्य चाहिए।
1171. पुण्य कर्म की निर्जरा के लिए कोई विशेष परिश्रम नहीं करना पड़ता, पाप कर्म की निर्जरा के लिए ही पुरुषार्थ करना पड़ता है।
1172. पुण्य के फल के प्रति हेय बुद्धि रखना, न कि पुण्य कर्म के प्रति क्योंकि पुण्य मोक्षमार्ग में बाधक नहीं है।

1173. जैसे वर्षा हो रही है तो ठण्डी लहर आवेगी उससे बच नहीं सकते, वैसे ही सम्यग्दर्शन होते ही पुण्यकर्म का बंध होगा ही उससे बच नहीं सकते, सातवें गुणस्थान से साता का ही बंध होगा, भले वहाँ असाता कर्म का उदय हो।

1174. धर्म से, सुख से जो आत्मा की रक्षा करता है, उसे पाप कहते हैं।

1175. खेत में खरपतवार (घासफूस) बिना उगाये उग आती है, वैसे ही इस जीवन रूपी खेत में पाप रूप घास अपने आप पनपती रहती है।

1176. शुभ भाव किया तो पुण्यात्मा, अशुभ भाव किया तो पापात्मा हो गया एवं इन दोनों से ऊपर उठ गया तो परमात्मा बन गया।

परिग्रह

1177. आरम्भ-परिग्रह का त्याग कर दो, शोर सूतक समाप्त, पहला सोपान यही है। मोक्षमार्ग प्रारम्भ नहीं हुआ तो संसार कितना है यह हम नहीं कह सकते। मन जितना भी हल्का होगा परिग्रह छोड़ने से ही होगा।

1178. भार छोड़कर आओगे तो यहाँ मन लगेगा वरन् धर्मध्यान में मन नहीं लगेगा। पैसा परिग्रह रखते हो तो रौद्रध्यान परिग्रहानंद से नहीं बच सकते।

1179. जड़ की सेवा हमारे यहाँ वर्जित है क्योंकि उससे बुद्धि गाफिल हो जाती है।

1180. ताला लगाना रौद्र-ध्यान का प्रतीक है परिग्रहानंद नामक रौद्रध्यान है।

1181. शरीर का ममत्व भी परिग्रह है, यह भी अपना नहीं है, फिर कौन अपना होगा ?

1182. आत्मा परिग्रह वाला होता ही नहीं, यह भ्रम है हम पर द्रव्य को फिर भी अपनाते हैं।

1183. परिग्रह ने आपको पकड़ रखा है कि आपने परिग्रह को। धन का लोभी अगले भव में वहीं कुंडलीमार बनकर बैठ जाता है। पर द्रव्य के वियोग में आपको पीड़ा होती है जबकि पर द्रव्य को नहीं क्योंकि परद्रव्य में ज्ञान नहीं होता।

1184. धन के बिना काम नहीं चलता लेकिन जिस धन से अपना जीवन अंधकार की ओर चला जाये वह धन किस काम का ?

1185. परिग्रह त्याग का पाठ समझ में आ गया तो लगे रहो और दूसरों को भी लगाते रहो। अर्जित धन अंजुली के पानी की तरह बह जाता है। यदि रह गया तो अगले भव में परिग्रही जीव सर्प बनकर उस परिग्रह की रक्षा करने आता है। यह पर्याय लोभ के कारण मिलती है। चमड़ी जाय पर दमड़ी न जाये लेकिन जब चोर आ जावे तो सब ले जाये।

1186. अग्नि हाथ में रखोगे तो जलोगे ही वैसे ही परिग्रह हाथ में रखोगे तो चलोगे ही।

1187. अतिथि-संविभाग व्रत का अर्थ है, धन का कुछ हिस्सा देव, शास्त्र एवं गुरु की भक्ति में समर्पित करना।

1188. हमारी नाव इसलिए डूब रही है कि हमारी नाव में पानी भरता जा रहा है। पानी भीतर जा रहा है तो डॉट लगाओ।

1189. आत्मा को हल्का बनाने की प्रक्रिया परिग्रह त्याग है, पर वस्तु से दूर होना है।

1190. आत्मा का स्वभाव लकड़ी से भी ऊपर घी की तरह तैरना है।

1191. आत्मा कभी डूब नहीं सकती लेकिन परिग्रह लेप के कारण संसार में डूबी हुई है। हमने पर वस्तु को भावों से अपना लिया इसलिए सिद्ध नहीं हो सके।

1192. धन संचय से मूर्च्छा रूपी गंदगी पैदा होती है।

1193. वैभवमात्र विलासता का प्रतीक नहीं है बल्कि उसके प्रति गृद्धता का नाम विलासता है।

1194. आपत्तियों की जड़ परिग्रह है, परिग्रह वस्तुओं का नाम नहीं है बल्कि मूर्च्छा का नाम परिग्रह है।

1195. जब शरीर के प्रति भी मूर्च्छा का अभाव हो जाता है तब वह दिगम्बर मुद्रा को धारण करके मोक्षमार्ग पर आरूढ़ हो जाता है।

1196. राग की बुनियाद बहिरंग पदार्थ है, वह जब तक सामने केन्द्र में नहीं रहता तब तक राग हो ही नहीं सकता। इसलिए राग छोड़ने के लिए बाहरी पदार्थ का विमोचन करना आवश्यक है। तन एवं मन से त्याग होना चाहिए और फिर स्वप्न में भी बाह्य पदार्थ याद नहीं आना चाहिए।

1197. यदि शरीर के प्रति ममत्व है तो आहार, भय, मैथुन व परिग्रह रूप संज्ञाओं में यह जीव आसक्त रहता है।

1198. दूसरे पदार्थ को देखकर उसे ग्रहण करने का भाव करना ही मूर्च्छा (परिग्रह)है यह सबसे बड़ी कमजोरी है, पर पदार्थ के ग्रहण से ही जीवन में ग्रहण लग जाता है।

1199. आग के हट जाने पर पानी का उबलना बंद हो जाता है, वैसे ही परिग्रह त्याग करने के बाद मन शान्त हो जाता है, पूर्व संस्कार होने से थोड़ा अशान्त भी रह सकता है।

1200. परिग्रह का त्याग किये बिना अपने आपको ज्ञानी मानना मात्र एक नाटक ही है।

1201. दस प्रकार के परिग्रह का त्याग किये बिना आत्मा की बात करना सन्निपात रोग जैसा है।

1202. अध्यवसाय वस्तु के बिना नहीं हो सकता, इसलिए सर्वप्रथम वस्तु (परिग्रह) का त्याग करो।

1203. जहाँ परिग्रह है, वहाँ शान्ति नहीं रह सकती, परिग्रह और शान्ति का बिल्ली और चूहे जैसा जात्य वैर है।

1204. जो परिग्रह पाप में रत है, वह हमेशा और हर जगह दुःखी ही रहेगा।

1205. बाह्य और अंतरंग दोनों परिग्रह को छोड़े बिना अहिंसा धर्म की महक नहीं आ सकती आत्मानुभूति तो दूर की बात है।

1206. परिग्रह का त्याग आत्मा का कायाकल्प कर देता है, जिससे नई स्फूर्ति आ जाती है, जैसे कल्प करने से पेट साफ हो जाता है, शरीर निरोग हो जाता है और जैसे मूसलाधार वर्षा से सारा दल-दल समाप्त हो जाता है।

1207. चक्रवर्ती के चौदह रत्नों में स्त्री भी एक रत्न में आती है इसलिए पति-पत्नि एक दूसरे के लिए परिग्रह है, जो सौभाग्यशाली होते हैं, वे इसे अपनाते ही नहीं हैं।

1208. वस्तु परिग्रह नहीं है, उसे पकड़ने के भाव का नाम, मूर्च्छा का नाम परिग्रह है।

1209. परिग्रह उतना ही रखो जिससे धर्मध्यान में बाधा न आवे।

1210. परिग्रह को जितना छोड़ोगे उतनी हिंसा कम होगी और दया आती जावेगी, धन परिग्रह को उचित (धर्म) स्थान पर लगाना ही खर्च करना ही उसका सदुपयोग है।

परीषह

1211. नदी में ही नाव की शोभा है, ठीक वैसे ही परीषहों से ही साधु की शोभा है।

1212. स्वाभिमान रखने से याचना परीषह सहन हो जाता है।

1213. परीषहजय के बिना अनुप्रेक्षाओं का कोई महत्त्व नहीं होता।

1214. मोक्षमार्ग में दुःख को सहन करने से कर्मों की निर्जरा होती है।

1215. परीषहों का सहन मार्ग से स्खलन न हो और कर्म निर्जरा होती रहे इसलिए किया जाता है। उपसर्ग, परीषहों में जीने वाले को स्वाध्याय की क्या आवश्यकता उनकी हर क्षण कर्म की निर्जरा हो रही है।

1216. संसारी प्राणी आराम चाहता है लेकिन मोक्षमार्ग में सबसे पहले परीषह सहन करना पड़ते हैं, ये परीषह मोक्षमार्गी को संवर मार्ग में बनाये रखते हैं।

1217. अनुकूल-प्रतिकूल वातावरण में समता बनाये रखना ही तो दृढ़ श्रद्धान माना जाता है।

परीक्षा

1218. ऐसे विद्यार्थी को हम पढ़ाना नहीं चाहते जो परीक्षा (सल्लेखना या उपसर्ग परीषह) से डरते हैं, साधु वही जो हमेशा सुखी रहे, क्योंकि त्यागी कभी मौत से नहीं डरता, वह तो उसका स्वागत करता है।

1219. कठिन परिस्थितियों से गुजरना बहुत बड़ी परीक्षा है, इसमें पास होने वाले को महान् फल मिलता है।

1220. परीक्षा के माध्यम से ही ज्ञात होता है कि हमारा पथ कितना सुगम, सरल एवं सीधा है।
उस पथिक की क्या परीक्षा जिस पथ में शूल न हो।
उस नाविक की क्या परीक्षा जिसकी धारा प्रतिकूल न हो॥

1221. परीक्षा के बाद सफलता मिलती है तो परीक्षा देते समय हुई वेदना अपने आप गायब हो जाती है।

1222. ज्ञानी पुरुष वही है जो विपत्ति के समय, परीक्षा के समय धैर्य से काम लेता है।

1223. यदि आपने अध्ययन किया है और प्रगति चाहते हो तो परीक्षा देना अनिवार्य है।

1224. परीक्षा के बिना हमारी आस्था और ज्ञान में निखार नहीं आ सकता।

1225. आज तो मात्र चुनाव में जीतना ही सफलता मान लेते हैं, यह एक सबसे बड़ी कमजोरी है।

1226. प्रलोभन के माध्यम से साधक की परीक्षा हो जाती है।

1227. स्वर्ण की परीक्षा तपाकर, तोड़कर, घिसकर की जाती है।

1228. चारों ओर से हमारी योग्यता क्या है इसका निर्णय लेना परीक्षा है।

1229. परीक्षा के बिना प्रामाणिकता नहीं मिलती।

1230. आत्मा की परीक्षा के लिए शरीर को तप की अग्नि में तपाना पड़ता है।

1231. इस शरीर का बिछुड़न ही एक मात्र मोक्षमार्ग में परीक्षा है।

1232. परीक्षा का नाम सुनते ही कई कमजोरियाँ सामने दिखने लगती हैं।

1233. संदेह को दूर करने के लिए परीक्षा जरूरी है।

1234. जहाँ देह है वहाँ संदेह नियम रूप से रहता है देह रहित में संदेह नहीं रहता।

1235. सत्य को सिद्धि की आवश्यकता नहीं होती संदेह के निवारण के लिए प्रदर्शन अवश्य करना पड़ता है, यह व्यवहार है।

1236. विद्यालय जाये बिना विद्या नहीं आती, विद्या आयी है कि नहीं इसकी

जानकारी के लिए परीक्षा होती है।

1237. परीक्षा के पूर्व जागृति रखना चाहिए, कमर कस लेना चाहिए।

1238. परीक्षा नहीं देना चाहते हो तो फार्म नहीं भरना चाहिए।

1239. अध्ययन के समय आपके साथ बस्ता, किताबें, गुरु सब होते हैं लेकिन परीक्षा के समय मात्र आपका दिमाग साथ होगा। (हम न किसी के कोई न हमारा)।

1240. परीक्षा से घबराओ मत, परीक्षा के बिना अगली कक्षा में प्रवेश नहीं मिलता।

1241. क्षमता का मूल्यांकन परीक्षा से ही होता है। अध्ययन कितना भी हो पर प्रश्न तो कठिन ही होते हैं।

1242. परीक्षा के समय अपने आप पर विश्वास होना चाहिए।

1243. आत्म-विश्वास का होना परीक्षा में बहुत अनिवार्य होता है।

1244. परीक्षा में अपने आप पर विश्वास होना चाहिए कि 4+4 = 8 ही होते हैं। अध्ययन किया है तो विश्वास अडिग होना चाहिए।

पुरुषार्थ

1245. इस शरीर में आत्मा (जीव) को किसी ने बाहर से नहीं डाला। जैसे दूध और पानी का सम्बन्ध अनादि सत्य है, वैसे ही जीव और शरीर का है, इन्हें पुरुषार्थ पूर्वक ही जुदा-जुदा किया जा सकता है।

1246. आत्मा के पास ऐसी क्षमता है कि वह अंतर्मुहूर्त में पुरुषार्थ के द्वारा सभी कर्मों को नष्ट कर सकता है।

1247. कर्म के उदय में होने वाले औदयिक भावों को जानो, देखो, इसमें गाफिल न होना बहुत बड़ा पुरुषार्थ है।

1248. मोक्षमार्ग में बहुत जागरुकता चाहिए तभी पुरुषार्थ मूलक कुछ हो सकता है, अन्यथा नहीं तीव्र कर्म के उदय में पुरुषार्थ भी काम नहीं करता।

1249. धर्म, मोक्ष पुरुषार्थी के लिए अभिमान और दीनता को छोड़कर अपने कर्त्तव्य में लग जाना चाहिए।

1250. उपदेश में शब्दों के साथ-साथ सन्मार्ग पर लाने का पुरुषार्थ होता है।

1251. पुरुषार्थ के माध्यम से अतीत को भी बदला जा सकता है और भविष्य की खाई को भी थोड़ा पूरा जा सकता है।

1252. स्वाश्रित कार्य में पुरुषार्थ को मुख्यता देनी चाहिए।

1253. जब मृत्यु निश्चित है तो आत्म हितैषी को निश्चिंत हो जाना चाहिए और आत्म पुरुषार्थ में लग जाना चाहिए, जैसे-सुकुमाल मुनिराज ने तीन दिन में ही निश्चिंतता से आत्म कल्याण कर लिया।

1254. भविष्य की उज्ज्वलता के लिए वर्तमान में पुरुषार्थ आपेक्षित होता है।

1255. मृत्युंजयी बनना चाहते हो तो अभी से पुरुषार्थ करना प्रारम्भ कर दो।

1256. हे विवेकी जनो! आत्महित में लगो, जीवन की उन्नति के लिए पुरुषार्थ करो।

1257. दूसरे के द्वारा दिया गया धनादि द्रव्य काम में नहीं आता, अपने पुण्य पुरुषार्थ के माध्यम से ही जो कमाया है, वही काम में आता है।

1258. पुरुषार्थ उसी का नाम है जो वर्तमान में संघर्ष से जूझे।

1259. श्रावक भी मोक्षमार्ग में श्रद्धा रखता है लेकिन बहाव के अनुसार बहना भी एक प्रकार से तैरना ही है, डूबने से बचने का प्रयास करना एक महान् पुरुषार्थ है।

1260. हमारा पुरुषार्थ दूसरों को जानने से नहीं स्वतत्त्व को जानने से ही स्वस्थ्य होगा।

1261. बुद्धिपूर्वक कार्य करना पुरुषार्थ है और अबुद्धिपूर्वक होना दैव (भाग्य) है।

1262. पुरुषार्थ के माध्यम से जब क्रोध उपयोग में नहीं आता तो क्रोध उदय में आकर चला जाता है। पुरुषार्थ से उदीरणा की क्रमबद्धता छूटती जाती है।

1263. उद्देश्य सही होने पर पुरुषार्थ का फल अवश्य मिलता है।

1264. सागर का मंथन गोताखोर ही कर पाते हैं। सागर की गहराई से जो अपरिचित है वह रत्नों को नहीं पा सकेगा।

1265. छोटी-छोटी बातों में, कषायों में इस नर काया को मत गंवाओ, इससे मोक्ष-पुरुषार्थ का प्रयास करो। कषायों का हनन करते हुए पाप नष्ट करते हुए इस नर काया का उपयोग करना चाहिए।

1266. यात्रा का अंत हो सकता है लेकिन भटकन का अंत नहीं होता।

1267. यात्रा में चिन्ता नहीं होती बल्कि भटकन में चिन्ता होती है।

1268. अपना पुरुषार्थ अपने ही क्षेत्र में होता है।

1269. योग्यता एवं पुरुषार्थ मुक्ति के लिए अनिवार्य है।

1270. जितनी सीमा है उतना पुरुषार्थ तो करना ही चाहिए।

1271. पुरुषार्थ से एक साथ पूरा छोड़ा जा सकता है, त्यागने के लिए ज्यादा पुरुषार्थ नहीं करना पड़ता।

1272. कषायों को कम करने का प्रयास करना चाहिए, एक दूसरे की कषाय कम करने में भी निमित्त बनना चाहिए।

1273. कर्मफल भोगना अज्ञान स्वभाव है, पुरुषार्थ के द्वारा इससे बचा जा सकता है।

1274. अंतर्मुहुर्त के बाद क्रोध समाप्त होगा ही जरा धीरज रखो।

1275. वस्तु और व्यक्ति से परिचित होते हुए भी उसकी स्मृति की ओर अपने उपयोग को न ले जावे इतना पुरुषार्थ तो किया जा सकता है।

1276. कर्म के उदय को गौण करना पुरुषार्थ का फल है।

1277. ज्ञानावरणादि कर्म रूपी ढक्कन को खोलने का पुरुषार्थ ही सही पुरुषार्थ माना जाता है।

1278. बुद्धिपूर्वक जितना बन सके उतना तो प्रमाद से बचने का पुरुषार्थ करना ही चाहिए।

पुद्गल

1279. पुद्गल (शरीर) छोटा होने के कारण आत्मवैभव में कभी कमी नहीं आती।

1280. तत्त्वार्थसूत्र ग्रन्थ में सुख-दुःख, जन्म-मरण को पुद्गल के उपकार कहा गया है। इसलिए ज्ञानी को इनमें हर्ष-विषाद नहीं करना चाहिए।

1281. यह सब पुद्गल का संसार है, पुद्गल के अलावा और कुछ दिखाई नहीं देता।

1282. अजीव तत्त्व व्यापक है और पुद्गल व्याप्य है। अजीव, जीव के विपरीत स्वभाव वाला है एवं पुद्गल स्पर्श, रूप, रस, गंधात्मक है।

1283. पुद्गल को चिंतन का विषय बनाने से विकल्प होता है और जीव को चिंतन का विषय बनाने से विकल्प शांत होता है।

1284. ये पुद्गल शब्दादि पुद्गल द्रव्य की विभाव व्यंजन पर्यायें हैं।

1285. पुद्गल द्रव्य अस्तिकाय वाला नहीं है परंतु मिल-मिल कर स्कंध बन जाता है।

1286. पुद्गल द्रव्य अनित्य है, क्योंकि इसमें परिवर्तन होता रहता है।

प्रतिशोध

1287. दुनियाँ में प्रतिशोध की भावना रहती है, मोक्षमार्ग में यदि प्रतिशोध लेना चाहो तो इस शरीर से लो, इस शरीर ने कई बार धोखा दिया है, अब तुम उसे धोखा देकर तप करते हुए मुक्ति को प्राप्त करो।

1288. प्रतिशोध में हमेशा हिंसा के भाव होते हैं।

प्रथमानुयोग

1289. महापुरुषों के जीवन चरित्र पढ़ें आगे बढ़ें, अभी नहीं तो अगले भव में तो मोक्षमार्ग की भूमिका बन ही जावेगी, अगले भव की इस जीवन में भूमिका बना सकते हैं।

1290. हमारे साहस को बढ़ाने वाली महापुरुषों की गौरव गाथा को पढ़ना चाहिए।

उनका गुणानुवाद करने से हमारे अंदर शक्ति जागृत हो जाती है।

1291. आदर्श पुरुषों को याद करते ही हमारा जीवन लहलहा उठता है दर्पण को जितनी बार देखो उतनी कमियाँ (अपने में) दिखेंगी।

1292. महापुरुषों के प्रत्येक कार्य में, श्वांस में, परोपकार के भाव रहते हैं।

1293. उन राम, महावीर ने वह आस्था जमायी थी तभी इन सभी जीवों को रास्ता मिला है।

1294. आपके चरण भी उनके चरणों के साथ आदर्शों पर चले आपके चरण भी पवित्र हो जावेंगे।

1295. रागी, द्वेषी एवं मोही पर प्रथमानुयोग का ही सही प्रभाव पड़ता है।

1296. महापुरुषों के जीवन को पढ़कर संसारी प्राणी प्रशमभाव के साथ अपने जीवन को सम्हाल सकता है।

1297. चार कषायों को छोड़ने का ही आचार्यों ने प्रयास किया है एवं उपदेश ग्रन्थ लिखे हैं।

1298. उपन्यास नहीं ऐसे चारित्र पढ़ो, ताकि आचरण बदल जावे।

1299. इरादों को मूर्तरूप देने के लिए इतिहास देखना पड़ता है।

1300. पुराण-ग्रन्थ पढ़ने से दुर्भाव भी सद्भाव के रूप में बदल जाते हैं।

1301. यदि अहंकार को छोड़ना चाहते हो तो पुराण, ग्रन्थ पढ़ा करो।

1302. पुराण-ग्रन्थों से अद्भुत चीजें मिलती हैं जिससे प्रेरणा मिलती है उनको आत्मसात् करने से पता चलता है कि यह जीवन कितना महत्त्वपूर्ण है।

1303. पुराण-ग्रन्थों से विकृत मन को बोध प्राप्त हो जाता है।

1304. तत्त्व का परायण करने के लिए स्वाध्याय करना अनिवार्य है।

1305. सबसे बड़ा धन आत्म तत्त्व है स्वाध्याय के माध्यम से इसका ज्ञान होता है।

परिहार विशुद्धि संयम

1306. जो जन्म से 30 वर्ष तक की अवस्था को सुख पूर्वक व्यतीत करके वर्ष पृथक्त्व (3 से 9 वर्ष) पर्यन्त तीर्थङ्कर भगवान् के पादमूल में प्रत्याख्यान को पढ़कर तीनों संध्याकालों को छोड़कर प्रतिदिन दो कोश गमन करते हैं ऐसे मुनिराज को परिहार विशुद्धि संयम होता है।

परिवर्तन

1307. परिणाम प्रत्यय (भावों) के माध्यम से बहुत कुछ परिवर्तन किया जा सकता है।

1308. भावों को हम पुरुषार्थपूर्वक परिवर्तित व संयत कर सकते हैं लेकिन कर्मों

के बंधने के बाद परिवर्तित नहीं कर सकते।

1309. आवश्यकों में परिवर्तन करने से स्वाद (अनुभव) भिन्न-भिन्न आने लगता है, परिवर्तन का अर्थ है-व्रत, नियम को बढ़ाते जाना और कठोर साधना करते जाना।

1310. जो व्यक्ति प्रकृति को आत्मसात् करता है, वह व्यक्ति कभी बीमार नहीं पड़ता।

भ

भगवान्

1311. भगवान् का नाम लेते रहने से वचन शुद्ध एवं सिद्ध हो जाते हैं।

1312. जिनेन्द्र भगवान् की भक्ति मोक्ष रूपी घर के ताले को खोलने के लिए कुँजी के समान है।

1313. भगवान् की भक्ति विषय रूपी जंगल में भटकते हुए मन रूपी हाथी को बाँधने के लिए जंजीर के समान है।

1314. आज भले ही साक्षात् भगवान् नहीं है फिर भी उनकी प्रतिमा को आदर्श मानकर हम भगवान् के स्वरूप का अवलोकन कर सकते हैं।

1315. जो 18 दोषों से रहित होते हैं, वही निर्दोष व्यक्तित्व हमारे आराध्य देव हैं।

1316. भूतों के बीच रहकर भी जो एवंभूत का अनुभव करने वाले हैं, वे मुनिराज धन्य हैं, धन्य हैं, धन्य हैं।

1317. सभी संसारी जीवों को भूत ही लगे हैं, किसी को क्रोध का, किसी को मान का, किसी को माया का, किसी को लोभ का, इससे तन, मन व वचन आहत हो रहे हैं, यह भीतरी बाधा है, ऊपरी बाधा नहीं है।

1318. भगवान् के चरणों में आने से हमारे जीवन की कुण्डली बदल जाती है।

1319. भक्त और भगवान् में दूरी अवश्य होती है किन्तु दिशा एक ही हुआ करती है।

1320. भगवान् की भक्ति जैसे आप आदर के साथ करते हैं, वैसे ही उनकी आज्ञा का पालन भी आदर पूर्वक करना चाहिए।

1321. भगवान् की आज्ञा है कि संसार में जहाँ भी दुःख, पीड़ा व अज्ञान है उसे दूर करने का प्रयास करना चाहिए। इसमें सफलता मिलना विश्वास के माध्यम से ही संभव है।

1322. जब भक्ति, भक्त के अंदर प्रकट हो जाती है तो भगवान् भी अंदर प्रवेश कर जाते हैं, प्रकट हो जाते हैं।

1323. भगवान् ने कभी किसी को वशीभूत नहीं किया, उन्होंने स्वयं को वश में किया है, इसलिए सभी उनके वशीभूत हैं।

1324. आत्मा का स्वरूप मात्र देव, शास्त्र एवं गुरु से ही प्राप्त हो सकता है।

1325. भगवान् का अवतार नहीं होता बल्कि भगवान् तो बनते हैं।

1326. आज साक्षात् भगवान् नहीं हैं लेकिन उनका पथ तो है, जो संस्कारवान एवं आस्थावान होता है, वही इस पथ पर चल सकता है।

1327. दुनियाँ में जब कहीं सहारा नहीं मिलता तब भगवान् व गुरु का दरवाजा हमेशा खुला रहता है।

1328. जब प्रभु आस्था के विषय बन जाते हैं, तब जीवन में वैर-भाव गौण हो जाते हैं।

1329. जहाँ भगवान् जन्म लेते हैं, उस भूमि का एक-एक कण पूज्य हो जाता है।

1330. आज भी भगवान् मिलते हैं, महावीरजी में एक ग्वाले को मिले, लेकिन ध्यान रखना सात्त्विक जीवन जीने वालों को मिलते हैं।

1331. भगवान् के ऊपर उपसर्ग करने वाले को भी सम्यग्दर्शन प्राप्त हो गया, यह भगवान् पार्श्वनाथ का भीतरी परिचय था।

1332. माता-पिता भी तीर्थङ्कर भगवान् के प्रभाव से वैराग्य धारण कर लेते हैं, विषय वासनाओं को भूल जाते हैं।

1333. भगवान् का कीर्तन करने से अपनी कीर्ति तीनों लोकों में फैल जाती है।

1334. जिनेन्द्र भगवान् की भक्ति के बिना मुक्ति नहीं मिल सकती है।

1335. जो अर्हन्त भगवान् को द्रव्य, गुण, पर्याय के भेद से जानता है, उसका मोह क्षय को प्राप्त होता है और सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होती है।

1336. भगवान् की प्रतिमा का अभिषेक करके स्वर्ग के देवतागण भी भगवान् को जैसे साक्षात् स्पर्श कर लिया हो, ऐसा आनंद प्राप्त करते हैं।

1337. ज्ञान में अभिमान हो सकता है लेकिन भक्ति में लघुता प्रकट होती है, क्योंकि विवेक पूर्वक की गयी भक्ति ही सच्ची भक्ति मानी जाती है।

भव

1338. अनंत भव गँवा दिये, इस भव में मोक्षमार्ग की भूमिका बना लो यह भव सार्थक हो जायेगा और इतिहास के पृष्ठों पर स्वर्ण के अक्षरों से अंकित हो जायेगा।

1339. संसार के भोग औपचारिक हैं, इन औपचारिक भोगों के पीछे ही संसार में प्राणी इतना कष्ट उठा रहा है, ज्ञानी यह समझकर इन भोगों को छोड़ देता है।

भव्य-अभव्य

1340. भव्य का अर्थ होनहार होना है, जो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र प्राप्त करने की योग्यता रखता है, वह भव्य है।

1341. युक्ति और आगम के आधार पर जो धर्म को धारण करता है, वह भव्य है।

1342. जैसे माँ गर्भस्थ शिशु का ख्याल रखती हुई भोजन का सेवन करती है, वैसे ही गुरु महाराज स्वयं मोक्षमार्ग पर चलते हुए 'भव्य' जीवों के लिए ग्रन्थ रचना करते हैं।

1343. अभव्य को भव्य नहीं बनाया जा सकता और भव्य को अभिशाप देकर भी अभव्य नहीं बनाया जा सकता, क्योंकि स्वभाव की कभी भी कोई चिकित्सा नहीं हो सकती, विभाव की चिकित्सा तो हो सकती है।

1344. द्रव्य, क्षेत्र, काल एवं भव मिल गया लेकिन भाव स्वाश्रित है, जो भाव करता है, वह भव्य है, ऐसा ज्ञानसागरजी महाराज कहते थे।

1345. जो कर्मदहन की बात नहीं करता, भाव नहीं करता, वह अभव्य है।

1346. यह संसार भव्यों से भी खाली नहीं होगा, अभव्य के समान भव्यों से भी खाली नहीं होगा और अभव्यों से तो खाली होगा ही नहीं।

1347. जिसे विषय विष के समान लग रहे हों, जो संसार एवं पाप से डरता हो और जिसे गुरु के वचनों पर भरोसा हो, समझना वह भव्य जीव है।

1348. संयम में, धर्म में उत्साह के अभाव के कारण ही यह जीव अभव्य के समान रह रहा है।

1349. सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रादि से विभूषित हो जावे तो उस भव्य को सुख दूर नहीं, सुख तो अंदर है।

1350. जब सम्यग्दर्शनादि की संयोजना हो जाती है तो भव्यत्व का प्रदर्शन हो जाता है।

1351. वह भव्य भी कभी मुक्त नहीं होता जो रत्नत्रय की अभिव्यक्ति नहीं करता।

1352. भव्यत्व की सार्थकता रत्नत्रय की अभिव्यक्ति में है। अंध पाषाणवत् स्वर्ण तो रहता है पर पाषाण से निकल नहीं पाता, उपयोग में नहीं आता।

1353. जिस प्रकार चावल कभी अंकुरित नहीं होता कितना भी खाद पानी क्यों ना दिया जावे उसी प्रकार अभव्य कभी भी रत्नत्रय को प्राप्त नहीं कर सकता।

1354. मूँग और ठर्रा मूँग दोनों देखने में एक से लगते हैं पर ठर्रा मूँग समुद्र भर पानी और अग्नि दोनों से सीज नहीं सकता उसी प्रकार अभव्य भी कभी सीज नहीं सकता, यह उसका स्वभाव है।

1355. आत्मतत्त्व को यदि हम पुरुषार्थ से सिझा देते हैं तो ध्यान रखना दूध, घी

बनने के बाद पुनः दूध नहीं बन सकता, यह त्रैकालिक सत्य है।

1356. सभी का कल्याण हो ऐसी अंदर से भावना भाने वाला भव्य ही होता है।

1357. किसी को अभव्य कह दो तो वह पूछ सकता है, मैं कभी मुक्त नहीं हो सकता अच्छा मैं कभी मुक्त नहीं हो सकूँगा। यदि बार-बार ऐसा भाव करता है तो समझना वह निश्चित भव्य है। हमें प्रमाद से उठना है ऐसा बार-बार भाव करने वाला भव्य है।

भाव

1358. पाप का बंध भावों पर आधारित है, मात्र सुख का अनुभव करने से पाप का बंध नहीं होता।

1359. सर्वार्थसिद्धि स्वर्ग में सबसे ज्यादा सुख का अनुभव होता है इसलिए सबसे ज्यादा उन्हें पाप का बंध होना चाहिए, जबकि ऐसा नहीं है, क्योंकि उनके पाप के भाव ज्यादा नहीं होते, जिसे भावभासन होता है, उसे कुछ बोलने की आवश्यकता नहीं।

1360. हमारे ही घट में, भावों में दोनों रहते हैं, राम और रावण, जो चाहो प्राप्त कर लो सत्युग कलयुग हमारे भावों की ही देन है।

1361. भाव मन भागता है और द्रव्य मन वहीं स्थिर रहता है, जैसे बल्ब वहीं रहता है, उसका प्रकाश इधर-उधर फैलता है।

1362. संवेग, निर्वेग भाव के साथ जो दीक्षित होते हैं, वह बिना (शाब्दिक) ज्ञान के भी बहुत आगे बढ़ जाते हैं।

1363. दीर्घ संहनन की अपेक्षा हीन संहनन के साथ भी असंख्यातगुणी कर्म की निर्जरा होती है, इसलिए हमें हमेशा अपने भावों को उज्ज्वल बनाये रखना चाहिए, भावलिंग का प्रदर्शन नहीं होता, भावलिंग का तो दर्शन होता है।

1364. भावों के द्वारा मोह की पर्त को अनपढ़ भी जल्दी हटा लेता है, अंजनचोर की भाँति ''आड़म-ताड़म कछु न जानम सेठ वचन परमाणं'' ।

1365. भावों की पहचान करना धर्म क्षेत्र में बहुत अनिवार्य है।

1366. आँखों से आँसू भावों से ही आते हैं, किराये से नहीं।

1367. भाव कर्म से, राग-द्वेष से बचो, तभी संवर सहित निर्जरा होगी।

1368. भाव से नग्न होना महत्त्वपूर्ण है, यह किसी को दिखाया नहीं जा सकता।

1369. भाव कर्म के माध्यम से नोकर्म में अंतर आ जाता है।

1370. क्रियायें जड़ की नहीं आत्मा की है, यह व्यक्त शरीर से होती है, लेकिन उनके कर्त्ता हमारे भाव ही हैं।

1371. भावों को मोड़ने का सबसे अच्छा तरीका है मोह को मरोड़ (छोड़) दो।

1372. द्रव्य के लिए शायद किसी से पूछना पड़े लेकिन भावों के लिए किसी से पूछने की आवश्यकता नहीं है।

1373. भावों में द्रव्य की मुख्यता नहीं होती, द्रव्य से जब काम लेते हैं तब उपयोगी होता है लेकिन भाव तो हमेशा उपयोगी है।

1374. तिर्यंचों में द्रव्य प्रणाली नहीं चलती वहाँ तो भावों से ही कार्य होता है।

1375. जैनधर्म भाव-प्रधान है द्रव्य को नकारता तो नहीं है पर गौण अवश्य कर देता है।

1376. भाव बढ़ते हैं तो द्रव्य बढ़ता जाता है, बाजार में भाव बढ़ने पर थोड़ा-सा भी माल हो तो मालामाल हो जाते हैं। द्रव्य अंक है और भाव उसके पीछे लगने वाला शून्य है।

1377. भावों के परिवर्तन से द्रव्य के रूप लावण्य व वैभव में परिवर्तन आ जाता है।

1378. भाव सुधारने का प्रयास करो द्रव्य तो अपने आप नाचता हुआ आ जावेगा।

1379. अर्हंत-भक्ति में मेंढ़क का नाम आ गया आपका नाम नहीं आया। यह भावों की ही महिमा है।

1380. भावों में उन्नति नहीं होती है तो इन द्रव्यों का कोई मूल्य नहीं है।

1381. मानसिक मंत्र महत्त्वपूर्ण माना जाता है, मानसिक मंत्र में मन, वचन एवं काय तीनों में स्तब्धता आ जाती है जिसके माध्यम से अंतर्मुहुर्त में कैवल्यज्ञान की प्राप्ति हो जाती है। सांसारिक सुख के साथ मोक्ष सुख का दाता भी वही है। मनोयोग से सुनने पर सम्यग्दर्शन की भूमिका बनती जाती है।

1382. भावों के संकल्प से ही (आप रक्षासूत्र से) शोर/सूतक से बच जाते हैं।

1383. विमान से भी वेगवान भाव(कर्म) हैं।

1384. वातावरण की शुद्धता/अशुद्धता भावों पर ही आधारित है।

1385. आपको पूजन का प्रशिक्षण मेंढ़क के भावों से लेना चाहिए।

1386. संगीत का आनंद भाषा से नहीं भावों से आता है।

1387. जो भाव परक साधना में जागृति नहीं रखता वह कभी उन्नति नहीं कर सकता।

1388. जो अभी नहीं कर पा रहे हैं लेकिन भावना भा रहे हैं तो वह कार्य परभव में अच्छे से कर लेता है।

1389. अपनी प्रभावना नहीं प्रभावना धर्म की हो ऐसी अपनी भावना हो।

1390. संकल्प और भावनाओं से कार्य बहुत जल्दी हो जाता है।

1391. भावना (उद्देश्य) के अनुसार ही हमारे जीवन का निर्माण होता है।

1392. जीवन में भावों के माध्यम से ही सब कुछ पाया जा सकता है।

1393. उद्देश्य के प्रति हमारे भाव जागृत रहें, हमें वीतराग-विज्ञान पाना है।

1394. भाव के अभाव में जो घटना घटती है वह धर्म, अधर्म का रूप नहीं ले सकती।

1395. सुख-दुःख के कारण संसार में और कोई नहीं मात्र हमारे ही परिणाम हैं।

1396. अभिशाप के भाव हमेशा पतन के कारण होते हैं।

1397. किसी भी काल में सुधारो अपने परिणामों को स्वयं अपने को ही सुधारना है।

1398. पशु द्रव्य को नहीं भाव को ही पकड़ता है कभी भी पशु में द्रव्य, भाव लिंग का भेद नहीं किया गया।

1399. भावों की पकड़ के लिए भाषा की आवश्यकता नहीं होती।

1400. सम्प्रेषण के माध्यम से दूसरे के दुःख को दूर करने के लिए भाव रूपी तरंगों को भेजा जा सकता है। इसके लिए मात्र आत्मीयता चाहिए।

1401. गुणीजनों को देखकर प्रमोद भाव प्रकट करें, इसमें गुणी का आदर हो जाता है।

1402. पारिणामिक भाव त्रैकालिक होते हैं, इसलिए परम शुद्ध पारिणामिक भाव को ध्येय बनाना चाहिए।

1403. जिससे आत्मा के परिणाम का लाभ होता है, उसे पारिणामिक भाव कहते हैं।

1404. स्वप्न भावना का मॉडल है।

1405. बारह भावनाएँ वैराग्य उत्पन्न कराने में माँ के समान काम करतीं हैं।

1406. परिणामों में ही सब कुछ है परिणाम ही परिवर्तित होते रहते हैं इसलिए हमें हमेशा अच्छे परिणाम बनाये रखना चाहिए।

भक्ति

1407. आत्मतत्त्व की भावना नहीं हो रही हो तो परमात्मा की भक्ति करते हुए भी आत्मा को पाया जा सकता है।

1408. जो दूसरों को व्यवधान उपस्थित नहीं करता, वही विवेक से भक्ति पूजन करता है।

1409. भक्ति में भाव प्रत्यय ही महत्त्वपूर्ण है, शब्दज्ञान नहीं।

1410. उपास्य के पास स्वरूप का भान, आत्म श्रद्धान प्राप्त होता है, लेकिन वह अंतर्दृष्टि रखने वालों को ही प्राप्त होता है।

1411. प्रभु के चरणों में जो विशुद्धि प्राप्त होती है, वह अन्यत्र कहीं भी प्राप्त नहीं

हो सकती।

1412. प्रभु की भक्ति से, उनके पादमूल में मोहनीयकर्म का क्षय हो जाता है, क्षायिक सम्यग्दर्शन प्राप्त हो जाता है।

1413. देव, शास्त्र व गुरु के समागम से अनन्तानुबन्धी कषाय नष्ट हो जाती है। जैसे पुलिस को देखकर शराब का नशा उतर जाता है, वैसे ही इन्द्रभूति क्या पूछने जा रहा है। यह भी भूलता जा रहा है मानस्तम्भ देखते ही उसका मान स्तंभित हो गया/डाउन हो गया। अब चिकित्सा के योग्य हो गया। दीक्षा की प्रार्थना करने लगा और दीक्षित होकर महावीर भगवान् का प्रथम शिष्य बन गया।

1414. भगवान् का पक्ष आते ही सब पक्ष /विपक्ष समाप्त हो जाते हैं।

1415. भगवान् का पक्ष संसार से पार लगा देता है और पक्षपात संसार का विस्तार करता है।

1416. जिनदर्शन के प्रति हमेशा विशुद्धि बनी रहनी चाहिए।

1417. श्रद्धा और विवेक के साथ जो भक्ति की जाती है, उसी का सही फल प्राप्त होता है।

1418. जिसके हृदय में आराध्य को स्थान होता है, उसका हृदय पवित्र होता है।

1419. जो भक्ति के माध्यम से साधु परमेष्ठी को स्वीकारता है, बदले में स्व-पर कल्याण की भावना भाता है, वही सही भक्त माना जाता है।

1420. भक्ति के बीच में भुक्ति की चाह आकर खड़ी हो जाती है तो भक्ति का सही फल प्राप्त नहीं होता।

1421. सही ज्ञान होते ही भक्त मात्र भगवान् बनने का रास्ता माँगता है।

1422. भगवान् की भक्ति में बिना कामना के भाव लगाने से शुद्ध कंचन बन जाते हैं, यही भक्ति का सार है।

1423. आप भगवान् की भक्ति से कुछ संसार की वस्तुएँ माँगना चाहते हो, पर ध्यान रखना भगवान् की भक्ति के फल का कोई अंत नहीं होता।

1424. भगवान् के दर्शन से बाहरी सब गौण हो जाना चाहिए अंतरंग में उतरना चाहिए।

1425. पूजन, भक्ति प्रशस्त मन से करो और उसके फल में हेय बुद्धि रखो।

1426. ध्यान रखना धार्मिक अनुष्ठान कभी भी हेय बुद्धि से नहीं किये जाते क्योंकि इनके माध्यम से ही मोक्षमार्ग प्रशस्त होता है।

1427. भक्ति के माध्यम से भक्त भगवान् तक पहुँच जाता है।

1428. जो व्यक्ति विषय कषायों में फँसा है, धन के कारण अंधा बना हुआ है, उसके अंदर भक्तिभाव व अध्यात्म के भाव भूलकर भी उभर नहीं सकते।

1429. आज मन लगाने का सबसे सरल तरीका है भगवान् की भक्ति करना।

1430. भगवान् की पूजा कामना पूर्ति करती है एवं वासना को नष्ट करती है।

1431. भगवान् बनने की एक युक्ति है, भगवान् के गुणों के प्रति अनुराग रखो भक्ति करो।

1432. भगवान् को देखते रहने से भी स्तुति होती है, भक्ति होती है। वह भावविभोर हो जाता है भगवान् के सामने कुछ बोल ही नहीं पाता।

1433. पूजन में भावों को गौण नहीं करना चाहिए। मन, वचन एवं काय को समर्पित करके पूजन करिये, हेय बुद्धि से नहीं। प्रसन्न बदन, प्रसन्न चित्त होकर, भावविभोर होकर भगवान् की भक्ति करना चाहिए।

1434. वैभव प्राप्त होना ही भक्ति का प्रयोजन नहीं है, बल्कि भव बंधन रूपी कर्मों का क्षय होना मुख्य प्रयोजन है।

1435. भगवान् भक्ति और भक्त का तालमेल गायन वाद्य एवं नृत्य जैसा ही है।

1436. भगवान् की भक्ति में यह क्षमता है कि वह जहर को भी अमृत बना सकती है। जीवन विषाक्त होने से पूर्व भक्ति की ओर बढ़ जाना चाहिए।

1437. जिनकी आत्मा कषायातीत हो गयी है उनकी भक्ति किया करो उन्हीं के माध्यम से ही हमें विकास करना है।

1438. भक्त बनने के बाद किसी भी बात का भय नहीं रहता देवता स्वयं आकर आपकी व्यवस्था करेंगे।

1439. भगवान् का जीवन हमें वरदान सिद्ध तब होगा जब हम उनके जीवन के अनुसार ढलने की शुरुआत कर देंगे वही तीर्थ है, मुहुर्त है।

1440. भगवान् भक्त के वश में होते हैं, ये बात ठीक है पर मुनिराज किसी के वश में नहीं होते, यह भगवान् की आज्ञा मुनिराज को है।

1441. यदि हम सच्चे देव, शास्त्र व गुरु से सम्बन्ध नहीं रखते तो हमारी पार्टी फैल हो जावेगी।

1442. प्रभु किसी से प्रभावित नहीं होते हमें भी उन जैसा बनना है तो अन्य किसी से प्रभावित नहीं होना चाहिए एवं उनके (प्रभु के) गुणों, लक्षणों की ओर दृष्टि रखना चाहिए।

1443. सांसारिक सुख की अभिलाषा के साथ यदि भगवान् की आराधना करते हो तो आराधना का फल उद्देश्य के अनुरूप ही मिलता है।

1444. रावण की आराधना मात्र स्वार्थ को लिए हुए थी, यदि कर्म क्षय के लिए करता तो उसे केवलज्ञान हो जाता।

1445. भोजन, भोग्य सामग्री तन्दुल, नैवेद्य आदि पूजन में ले जाते हैं तो वह मंगल द्रव्य बन जाती है, केवल दृष्टि का अंतर है।

1446. उपास्य के प्रति भावना जुड़ना महत्त्वपूर्ण है। जिस धन को लेकर कलह पैदा होती है, वह यदि प्रभु की उपासना में लगा दी जावे तो उसी से कर्म निर्जरा हो जाती है। विवेक जागृत होने से भव-भवान्तर के कर्म नष्ट हो जाते हैं।

1447. भाव और निर्मल बनाओ चंदन जितना घिसोगे उतनी सुगंधी आवेगी। फिर केवलज्ञान जो छिपा है वह आस्था की दृष्टि से नजर आने लगेगा।

1448. हम सच्चे देव, शास्त्र व गुरु के उपासक बने रहें, क्योंकि आगे हमें भी वही देवत्व प्राप्त करना है।

1449. हे प्रभु! हमारी आस्था महान् आत्माओं के प्रति बनी रहे और हम उनके पथ चिह्नों पर चल सकें, भक्ति का फल यही माँगता हूँ।

1450. भक्ति करने से बाह्य रूप एवं अंतर का स्वरूप सुंदर स्वच्छ प्राप्त होता है, सुन्दर शरीर तीर्थङ्कर का ही होता है वह प्राप्त हो।

1451. वासना को समाप्त करना चाहते हो तो भगवान् के चरणों में जाओ उनकी उपासना करो।

1452. आचार्य समन्तभद्र महाराज कहते हैं कि हे भगवन् ! मैं आपको इसलिए नमस्कार करता हूँ कि आपमें दोष (मोह) आवरण (ज्ञानावरण आदि) का अभाव हो गया है, समवशरण विभूति आदि को देखकर नहीं।

1453. प्रभु की भक्ति, उपासना करने वाले को सांसारिक कमियाँ, कमियाँ-सी नहीं लगती वह तो मात्र इतना ही भाव बनाये रखता है कि भगवान् से तादात्म्य बना रहे।

1454. सुख और आनंद किसी बाह्य पदार्थ में नहीं है, वह तो परमार्थ में है और परमार्थ के प्रतीक वीतरागी प्रभु हैं।

1455. भक्ति अंधी ही होती है क्योंकि, वह आँख बंद होने पर हृदय से प्रकट होती है, वह अंदर की आँख खोलकर देखती रहती है। भीतर की आँखों से भी मोक्षमार्ग में कार्य होता है।

1456. श्रद्धा के साथ भक्ति करते हैं तो चमत्कार होने लगते हैं, यह दुनिया को चमत्कार लगते हैं पर तत्त्वज्ञानी इसे वस्तु स्वरूप समझता है।

1457. प्रभु की भक्ति एक दर्पण का काम करती है, उसमें देखने से हमें अपना कर्त्तव्य ज्ञात हो जाता है।

1458. आपने भगवान् को देखा है पर भगवान् जिस ओर देखते हैं उस ओर नहीं देखा भगवान् की हमेशा नासा दृष्टि रहती है और आपकी आशा पर दृष्टि रहती है।

1459. निष्कषाय के सिंहासन पर बैठा देवता पूज्य होता है, मैं उन्हें बार-बार नमस्कार करता हूँ।

भाग्य

1460. पुरुषार्थ पर घमण्ड नहीं करना चाहिए, भाग्य को भी मानना चाहिए, क्योंकि पूर्वकृत् कर्म तीव्रता से उदय में आ जाते हैं तो किया हुआ पुरुषार्थ भी कार्यकारी नहीं होता।

1461. सम्यक्त्व और संयम के लिए जिस समय दरवाजे खुल जाते हैं, वह समय सबसे भाग्यशाली माना जाता है।

1462. प्रमादी का भाग्य कभी नहीं फलता।

1463. भाग्य भरोसे बैठने वालों को वही वस्तु मिलती है जो पुरुषार्थी लोग छोड़ जाते हैं।

1464. प्रबल भाग्य वाले को ही रत्नत्रय की उपलब्धि होती है।

1465. गुरु का समागम भाग्यशाली को ही प्राप्त होता है।

1466. भाग्यशाली उसे मत मानो जिसके पुण्य का उदय है, बल्कि उसे मानो जो पुण्य के कार्यों में लगा हुआ है और पाप से बचा हुआ है।

भेदविज्ञान

1467. इस शरीर का क्या स्वरूप है ? यह जानना ही भेद-विज्ञान है।

1468. चतुर्थ गुणस्थान वाला भेदविज्ञान श्रद्धात्मक होता है और सप्तम गुणस्थान वाला भेदविज्ञान अनुभूति परक होता है। जैसे एक स्कूल में है और एक प्रयोगशाला में है।

1469. मैं काया में अवश्य हूँ लेकिन काया के बिना भी रह सकता हूँ यह श्रद्धान ही भेदविज्ञान कहलाता है।

1470. भेदविज्ञान की शुरुआत ही सही जीवन की शुरुआत है, यह केवलज्ञान तक ले जाने वाला है, जो कभी अंत को प्राप्त नहीं होता है।

1471. अनेक बार शरीर को पाया पर यह बोध नहीं आया कि मैं कौन हूँ ? मैं एक आत्म तत्त्व हूँ और शरीर से पृथक् हूँ, इस प्रकार का ज्ञान भेदविज्ञान माना जाता है।

1472. शरीर की वेदना को पड़ोसी की वेदना समझना सम्यग्ज्ञान है, भेदविज्ञान है।

1473. भेदविज्ञानियों के पास जाकर सत्‌चित्त में आनंद की प्राप्ति का प्रयास करो, फिर स्वयं सच्चिदानंद बन जाओगे।

1474. भेदविज्ञान का परिणाम है फूल सा मुस्कराना।

1475. शरीर अलग है, आत्मा अलग है, इस प्रकार का ज्ञान होना भेदविज्ञान कहलाता है।

1476. भेदविज्ञान से ध्यान की भूमिका बन जाती है।

1477. हम रात-दिन निमित्त को दोष देते रहते हैं, यह सब भेदविज्ञान के अभाव के कारण होता है।

1478. भेद-भाव से व्यक्ति राग-द्वेष करता रहता है और भेदविज्ञान प्राप्त कर ले तो राग-द्वेष समाप्त हो जाता है।

1479. भेदविज्ञान के बल पर ही धर्म में लीन हुआ जाता है।

1480. आत्मा में रमण करने के लिए पोथी का ज्ञान आवश्यक नहीं, मात्र भेदविज्ञान की आवश्यकता है।

म

मन

1481. हमें अपने बाहरी चित्र की सुरक्षा नहीं करना बल्कि भीतरी चित्त की सुरक्षा करना है। चित्र को नहीं चित्त को मांजना है।

1482. मन के बिना पंचेन्द्रिय का निरोध नहीं होता है।

1483. मन, वचन, काय की शुद्धि होने से आत्मा की विशुद्धि और बढ़ जाती है।

1484. जो हमारे मन में संकल्प-विकल्प का कल्पतरु है, उसका कल्प कर दो।

1485. हम मन में जिस प्रकार की धारणा बना लेते हैं, वैसे चित्र दिखाई देने लगते हैं।

1486. मन को प्रशस्त रखने के लिए पर में इष्टानिष्ट कल्पना नहीं रखना चाहिए।

1487. आत्मा बिना मन के रह सकता है, पर मन बिना आत्मा के नहीं रह सकता।

1488. ज्ञान की एक विशेष परिणति का नाम मन है और आत्मा ज्ञानमय है।

1489. बड़ी-बड़ी नदियों को बाँधना सरल है किन्तु मन को बाँधना कठिन है, लेकिन मन की चाल को जानने वाले को इसे बाँधना कठिन नहीं है।

1490. अपना मन अपना होकर अपने बारे में क्यों नहीं सोचता ?

1491. मन हमेशा अतृप्त ही रहता है, जो मन के इस स्वभाव को जानते है, वे मन के

अनुसार नहीं चलते।

1492. मन को वश में करने का अच्छा तरीका है, उसे दुर्लभ चीज की ओर ले जाओ।

1493. जिसके मन में निरीहता आ जाती है वह निरक्षर होकर भी सम्यग्ज्ञानी है और वह शीघ्र ही आत्म कल्याण कर लेता है।

1494. साधना के क्षेत्र में ज्ञेय पदार्थों से नहीं बचना होता है बल्कि जो मन ज्ञेय पदार्थों की ओर जाता है, उसे रोकना पड़ता है।

1495. मन में बहुत कुछ व्यर्थ का भर लेने से ही पागलपन छा जाता है, इसलिए मन को खाली रखना चाहिए।

1496. मन की धारणा के कारण ही मोक्षमार्ग चलता है।

1497. मन को नियंत्रण में रखने से जीवन सफलीभूत हो जायेगा।

1498. कम समय में साधना ज्यादा करना चाहते हो तो मन को साधो।

1499. ख्याति, लाभ, पूजा के लिए तप, उपवास करना यानि समझना मन अभी सधा नहीं है।

1500. मन रूपी मृग यदि स्थिर है तो उसे काम रूपी भील मार नहीं सकता।

1501. मन की विकृति को आधि माना जाता है, तनाव भी एक प्रकार की आधि (मानसिक रोग) ही है, क्योंकि वह मनोगत विकार है।

1502. मन को वश में रखने वाला व्यक्ति जीवन में कभी पराजित नहीं हो सकता, कहा भी गया है कि एक गूँगा 100 को हराता है।

1503. समता के साथ कटु वचन सुनो, उन्हें अपने मन का बोझ मत बनाओ।

1504. स्वस्थ्य मन वही माना जाता है, जिसे कभी भी तनाव नहीं छूता।

1505. बार-बार विशेष तप करने से मन नियंत्रण में रहता है।

1506. गलत दिशा में जाना मन का स्वभाव बन गया है, यदि इसमें संयम रूपी लगाम नहीं लगायी तो यह अनर्थ कर जायेगा।

1507. मन रूपी बंदर को श्रुत-स्कंध पर चढ़ाये रखो वरन् वह अनर्थ कर जायेगा।

1508. मन रहित जीव श्रुतज्ञान के माध्यम से अपने हिताहित का निर्णय कर लेते हैं, लेकिन मन के बिना वे हेयोपादेय का ज्ञान नहीं कर सकते शिक्षित नहीं हो सकते, सम्बोधन को नहीं सुन सकते।

1509. तनाव के कारण निद्रा भाग जाती है, मन को टीश पहुँचने पर भी निद्रा भाग जाती है।

1510. मन से कहो ऐसा सोचो जिसके कारण बंध न हो, निर्ममत्व को अपनाओ

मात्र ज्ञाता-द्रष्टा बने रहो।

1511. मन की चाल को समझना बहुत कठिन है, लेकिन उसे जो समझ ले वह ज्ञानी है।

1512. राजा और महाराजा कभी अपने मन पर विश्वास नहीं करते, क्योंकि वे इस बात को जानते हैं कि मन धर्म से नहीं कर्म से प्रेरित होता है।

1513. नीति से काम लिया जायेगा तो मन सही काम कर सकता है, वरन् वह उछल-कूद करता ही रहेगा।

1514. मन बाह्य पदार्थों में जाता है तो अनर्थ के लिए ही जाता है।

1515. जब मन विषय कषायों से ऊपर उठ जाता है तब स्थिर हो जाता है।

1516. जिसका मन सिद्ध है उसे मंत्र सिद्ध करने की आवश्यकता ही नहीं है, और जिसका मन सिद्ध नहीं है और मंत्र सिद्ध करता है तो वह स्वयं को घातक सिद्ध होता है।

1517. मनोबल जो प्राण है, उसे भी बचाओ, ज्यादा मत सोचो, क्योंकि मन के माध्यम से ज्यादा सोचने से, तनाव रखने से मन रूपी प्राण का घात होता है।

1518. ध्यान करने वाला भी मन है और ध्यान में विघ्न डालने वाला भी मन है।

1519. मन की अव्यवस्था के कारण सभी व्यवस्थायें होने पर भी उनका फायदा नहीं उठा सकते। मन की अशुद्धि के कारण आहार अशुद्ध हो जाता है।

1520. एक साथ स्वाहा बोलते हैं तो मनुष्य के मन की शांति से देवता भी आनंद बरसाने लगते हैं। उस आनंद को आप मन की शुद्धिपूर्वक बोलते हुए लीजिए।

1521. अंदर के स्वभाव के अनुरूप बाह्य स्वरूप दिखाई देने लगता है।

1522. जब तक मन की कलुषता, कटुता, ईर्ष्या का भंजन (मंजन) नहीं करोगे तब तक कल्याण नहीं होगा।

1523. मन शुद्ध करने वालों को भजन करने की आवश्यकता नहीं है।

1524. मनकृत् प्रयोजन यदि शुद्ध नहीं होता तो सभी अशुद्ध है।

1525. शुद्धि से आहार की उदीरणा हो जाती है, यदि आहार के पूर्व आपका उपयोग शुद्ध नहीं हो तो वह आहार विष बन जावेगा।

1526. मन को नियंत्रण में रखने से सारी विराधनाएँ, आराधनाएँ बन जाती हैं।

1527. नियंत्रण दूसरे पर नहीं अपने मन पर रखो यह संयम है। यह अपने कोर्स की बात मानी जाती है। दूसरे पर नियंत्रण रखना परिग्रह है। दूसरे को नियंत्रण में रखना कमजोरी है।

1528. मन को सुला दो फिर आत्मा अपना काम कर जाती है।

1529. मन को सुलाने वाला एवन होगा। मन को विश्राम देना साधक का मुख्य कार्य है।

1530. कर्त्तृत्व, भोक्तृत्व और स्वामित्व इन तीनों से मन को खाली कर दो क्योंकि ये ही संसार में संघर्ष की जड़ है।

1531. मन की खुराक का नाम पसंदगी है। वह इसी पसंदगी पर जीना चाहता है।

1532. पाप की मजबूत गठरी मन के बिना नहीं बंधती है।

1533. मन के खेल के सामने सारी आराधनायें फैल हो जाती हैं और मन को नियंत्रित करने से सारी विराधना आराधना बन जाती है।

1534. मन को मंत्रित नहीं करना बल्कि नियंत्रित करना है।

1535. संसारी प्राणी अपने चित्र की चिन्ता तो करता है लेकिन चित्त की चिन्ता नहीं करता।

1536. प्रशस्त मन वाले को दवाई की आवश्यकता नहीं होती।

1537. मोह, क्षोभ से रहित आत्मा की शक्ति का नाम मन है।

1538. विक्षिप्त मन भ्राँति है, विक्षिप्त मन तत्त्व निर्णय नहीं कर सकता। भ्राँति ही कष्ट है।

1539. मन बहुत पुण्य के बाद प्राप्त होता है। उसे अविक्षिप्त बनाना और कठिन है।

1540. मन बूढ़ा नहीं होता जुबान बंद हो गयी पर मन जवान ही बना रहता है।

1541. जो मन से अस्वस्थ है वह तन से भी अस्वस्थ हो जाता है।

1542. जब मन रूपी सरोवर तरंग रहित होता है, तभी भगवान् आप से प्रसन्न होते हैं।

1543. माना मन है लेकिन मनमाना नहीं करना चाहिए, मन को मनाना चाहिए फिर वह महामना बन जावेगा।

1544. सम्यग्दर्शन मन वाले को ही होता है। (संज्ञी होना अनिवार्य है सम्यग्दर्शन के लिए)

1545. मनोहर मन के हरण बिना विघ्नहर (प्रभु) का दर्शन सम्भव नहीं है।

1546. मन के द्वारा माँग मत करो, मन का संघर्ष ही संसार में भटका रहा है।

1547. मनुष्य मनु की संतान है, इसलिए हे मानव ! तू मन का गुलाम नहीं बन बल्कि मन को शिष्य, गुलाम बनाओ, क्योंकि मन का दास वासना का दास होता है।

1548. प्रभु के पास हम मन के साथ न जावें मन को नियंत्रण में रखकर जावे और प्रभु के चरणों में समर्पित कर दें। मन के द्वारा हम सही मूल्यांकन नहीं कर पाते।

1549. मन की खुराक अहंकार होती है। मन उपयोग की धारा है जिसमें अभिमान

की धारा बहती रहती है।

1550. जो मन उपासना की पद्धति के अनुसार चलता है वह हल्का हो जाता है।

1551. भगवान् की पहचान आँख से नहीं मन के द्वारा होती है।

1552. मनोरम नहीं मनोहर चाहिए, राम को चाहिए रमन को नहीं।

1553. भगवान् के सामने मन गायब हो जाना चाहिए, समर्पित हो जाना चाहिए संसार का सार व बड़प्पन इसी में (समर्पण में) है।

1554. मन आपकी निधि चुराने वाला है, वह भगवान् के चरणों में समर्पित कर दो। हे प्रभु यह आपके चरणों में आज समर्पित करता हूँ इसी के कारण आज तक आपकी पहचान नहीं कर पाया हूँ। प्रभु आचरण की धरती पर खड़े हैं।

1555. तीन लोक में कहीं मत झुको पर त्रिलोकीनाथ के सामने तो झुको।

1556. मन, रूपी पदार्थों को चाहता है पर उन्हें देख नहीं सकता, आँखें देखती हैं मन तो वासा ही खाता है।

1557. मन का हरण जिस दिन हो जावेगा वह सौभाग्य का दिन माना जावेगा। उस दिन से आप भगवान् की उपासना के लायक हो जाओगे। शांति की आवश्यकता आत्मा को है, मन को नहीं।

1558. मन की रुचि की ओर जाना एकमात्र पागलपन है।

1559. न मनः इति नमनः जब मन नहीं रहता तो सिर झुक जाता है, नहीं तो मनमाना करने लगता है।

1560. धर्म को पालने में कोई शर्त नहीं बस मन वश में रहे, अपना बना रहे, दुनियाँ के सपने में न रमें।

1561. मन जवाब देने लगता है पर ध्यान रखना मन कमजोर प्राणी है, वैसे तो अपनी गली में कुत्ता भी शेर होता है।

मनुष्यभव

1562. मनुष्यभव बुखार का डाऊन (सामान्य) होना है, इसी में आत्मा का इलाज संभव है।

1563. मनुष्य जीवन का एक पल और तीन लोक की सारी सम्पदा दोनों की एक-सी कीमत है, इसलिए इसका सदुपयोग करो।

1564. मनुष्य जीवन दुर्लभता से प्राप्त होता है, प्रयोजनहीन कार्य करने से पुनः प्राप्त नहीं होता।

महाव्रत

1565. अहिंसा महाव्रत सभी व्रतों का मूल है, इसलिए अहिंसा को परम धर्म कहा है। इस भव में ही इसका पालन हो सकता है।

1566. महाव्रतियों की शोभा अपनी काय से ममत्व हटाकर छहकाय के जीवों की रक्षा करने में है।

1567. व्रत, समिति, तपादि अहिंसा महाव्रत की वृद्धि (रक्षा) के लिए ही होते हैं।

1568. जिस प्रकार गाड़ी एक बार खरीदी जाती है, लेकिन उसमें पेट्रोल बार-बार डाला जाता है, ठीक उसी प्रकार महाव्रत एक बार लिए जाते हैं पर उनकी पाँच-पाँच भावनाओं को बार-बार चिन्तन में लाना पड़ता है।

1569. संकल्पपूर्वक महाव्रत लेने वाले की उपयोग प्रणाली बहुत शुद्ध हुआ करती है।

1570. महाव्रत निवृत्ति रूप है, पाँच पाप की निवृत्ति का नाम महाव्रत है।

1571. तीन गुप्ति, पाँच समिति ये आठ मातायें महाव्रती रूप बालक का पालन करती हैं।

1572. व्रती को भावों के माध्यम से मन से भी विदेश नहीं जाना चाहिए।

1573. दिग्व्रत के माध्यम से निष्प्रयोजन पाप से बच जाते हैं।

1574. दिशाओं की सीमा बाँध लेने पर उसके बाहर के पाप से पूर्ण रूप से मुक्त हो जाता है।

1575. मोह को काटने का अमोघ शस्त्र है व्रत-संकल्प।

1576. संकल्प लेने से पूर्व में बंधे कर्म भी हिलने लगते हैं।

माया, मायाचारी

1577. मायाचारी करने वालों को दुःख ही दुःख मिलता है, ऐसा जानकर मायाचारी का पूर्णतः त्याग कर देना चाहिए।

1578. मायाचारी अनुमान के माध्यम से प्रमाणित हो जाती है, इसलिए ये मत समझो कि मेरी मायाचारी कोई नहीं जान सकता, जैसे चन्द्रमा को पूर्ण निगलते ही ज्ञात हो जाता है कि राहु आ गया है, राहु छिप नहीं सकता।

1579. मायाचारी प्रत्यक्ष देखने में नहीं आती, अन्य कषाय क्रोध, मानादि तो देखने में भी आ जाते हैं।

1580. तिर्यञ्चगति के जीव तीन लोक में सभी जगह रहते हैं, यह माया की ही महिमा है।

1581. व्रती माया, मिथ्या और निदान इन तीनों शल्यों से रहित होता है।

1582. माया की पोशाक पहनकर ही झूठ, चोरी की जाती है।

1583. मायाचारी करने से यश समाप्त हो जाता है, जैसे मारीचि मायाचारी से मृग बनकर आया तो उसका यश समाप्त हो गया।

मिथ्यात्व

1584. मिथ्यात्व मोक्षमार्ग में आतंकवादी की भाँति है, वह सभी कषायों को अपनी ओर कर लेता है, ध्यान रखना यह आतंकवादी अपने आत्म घर में घुसने न पाये।

1585. मिथ्यात्व छूटने से सम्यग्दर्शन प्राप्त होता है, अविरति छूटने से व्रत होता है, फिर दक्षता से प्रमाद छूटता है, फिर कषायों के नाश से योग निरोध होता है, आस्रव रुकता है, तभी यह जीवन बंधन मुक्त होता है।

1586. जिसमें मिथ्यात्व रूपी अंधकार विद्यमान है और क्रोधादि सर्प जिसमें निवास करते हो, ऐसे माया रूपी महान् गड्ढे से सदा बचना चाहिए।

1587. मिथ्याज्ञान, राग-द्वेष के कारण जन्म-मरण रूपी फल प्राप्त होता है और सम्यग्ज्ञान के द्वारा वैराग्य के द्वारा अजर-अमर पद प्राप्त होता है।

1588. मिथ्यात्व के उदय में ही ज्ञान मिथ्या होता है, ऐसा नहीं बल्कि अनन्तानुबन्धी की उदीरणा होने पर भी ज्ञान मिथ्या हो जाता है, इसलिए आत्म-हितैषी को जैसे मिथ्यात्व से बचना चाहिए, वैसे ही अनन्तानुबन्धी कषाय से भी बचना चाहिए।

मुनि

1589. संकल्प पूर्वक महाव्रत लेने वाले की उपयोग प्रणाली बहुत शुद्ध हुआ करती है, थोड़ा दोष लगता है तो तत्काल धुल जाता है।

1590. मुनिराजों की चर्या देखकर आलोचकों की बुद्धि ठिकाने आ जाती है, श्रद्धान जागृत हो जाता है।

1591. स्वप्न में भी इस दिगम्बर रूप का इस ''मुनि मुद्रा'' का दर्शन हो जाये तो महान् सौभाग्य समझना।

1592. मुनि के दर्शन होते ही हमें अपना स्वभाव ज्ञात हो जाता है। सभी को इसी रास्ते पर आना होगा यदि शाश्वत सुख चाहते हो तो।

1593. बहुत बड़ा पुण्य है जो इस अवसर्पिणी काल में भी धर्म करने का भाव हो रहा है और जो मुनि बने हैं, उनके पुण्य का तो वर्णन ही नहीं किया जा सकता।

1594. जिन्होंने हेयोपादेय को जान लिया, पाप क्रियाओं से रहित हो गये हैं, आत्महित में लीन हो गये हैं, इन्द्रिय व्यापार से रहित हो गये हैं, स्व-पर हित जिसमें निहित हो तभी बोलते हैं, संकल्प विकल्प से रहित है, वे ऐसे मुनि ही मुक्ति के पात्र हैं।

1595. संसार के समस्त पदार्थों से राग भाव छोड़ दो तो ज्ञानी, मुमुक्षुपना नाम सार्थक होगा, वरन् वुवुक्षुपना ही बना रहेगा।

1596. छोटी उम्र में जो दीक्षा ले लेते हैं, उन्हें भी मनोज्ञ साधु कहा जाता है।

1597. सुख-दुःख का वेदन करते हुए भी जो हर्ष-विषाद नहीं करते, वे मुनिराज अलौकिक सुख का अनुभव करते हैं, इसे अतीन्द्रिय सुख कहते हैं।

मोह

1598. मोह छोड़ने का नाम है, जोड़ने का नहीं।

1599. मोह नहीं तो बंध भी नहीं, फिर मोक्ष भी कहीं दूर नहीं।

1600. शोर-सूतक मोह का ही परिणाम है, इसलिए निर्मोही महापुरुषों को कोई शोर-सूतक का विधान नहीं है।

1601. मोह के कारण राज्य पाने की इच्छा से प्राणी कुछ भी कर सकता है, वह मरने एवं मारने से नहीं चूकता।

1602. मोह आपके घर में कब से है ? जब से आप हो तब से, मोह कहता है मुझे घर में से कैसे निकाल सकते हो, जब 40 साल तक घर में रहने वाला किरायेदार मालिक जैसा बन जाता है, इसलिए हर क्षण मोह को कम करने का प्रयास करना चाहिए।

1603. मोह रूपी अग्नि ज्ञेय रूपी अग्नि (ईंधन) के अभाव में भी जलती रहती है।

1604. यह शरीर मोह रूपी सर्प का बिल है।

1605. शरीर के प्रति जिसे मोह होता है, वही अपना संसार बसाता है।

1606. यह मनुष्य पर्याय मोह पर प्रहार करने का एक अनोखा अवसर है।

1607. नाता और रिश्ता, पुराना मोह रिसता, बिना मोह के रिसे, संसार का रिश्ता चलता ही नहीं है।

1608. दृढ़ श्रद्धान वाले को मोह हटाने में दर्द नहीं होता, इसमें पढ़-अपढ़ दोनों एक हैं।

1609. सबसे गहन मोह है, जो व्रतों को छुड़वाकर पुनः विषयों में फँसा देता है, जैसे रावण को मोह के कारण समझाने पर भी समझ में नहीं आया, यह मोह का ही परिणाम है।

1610. आश्चर्य यह नहीं है कि प्राणी विष को छोड़कर अमृतपान करता है, बल्कि आश्चर्य यह है कि अमृत को छोड़कर पुनः विषय रूपी विषयों को पीने के लिए तैयार हो जाता है, लेकिन मोही के लिए यह कोई आश्चर्य नहीं है।

1611. यह मोह की ही महिमा है कि संसारी प्राणी ज्ञान के माध्यम से बाह्य पदार्थों को ही खोजता रहता है और वस्तु स्वरूप से अनभिज्ञ बना रहता है।

1612. जब तक मोह रूपी बीज विद्यमान है, तब तक संसार वृक्ष हरा-भरा बना रहेगा।

1613. सम्यग्दर्शन और चारित्र के क्षेत्र में जो विपरीत दिखाता है, उसका नाम है मोह।

1614. राग-द्वेष से बचना चाहते हो तो किसी से भी, शरीर से भी मोहित नहीं होना चाहिए, आत्मा से बाहर देखने से मोह आकर धमक लेता है, शरीर दिखने लगता है।

1615. मोह एक प्रकार का घाव है उसे ठीक करने के लिए त्याग रूपी मलहम पट्टी करना चाहिए और परिग्रह आदि संक्रमण से बचना चाहिए, क्योंकि परिग्रह आदि मोह रूपी घाव को बढ़ाते ही जाते हैं।

1616. अनादिकाल से यह मोह का घाव आत्मा में बना हुआ है, इसे ठीक होने में बहुत समय लगेगा! त्याग, तपस्या के बिना यह ठीक नहीं हो सकता।

1617. सब कुछ लांघा जा सकता है, पर मरण को लांघा नहीं जा सकता, फिर किसी के मरण पर रोना-धोना अविवेक ही है।

1618. शरीर बार-बार नहीं चाहते हो तो शरीर से मोह छोड़ दो।

1619. उद्देश्य ठीक न होने से प्रतिस्पर्धा कषाय की ओर ले जाती है, मोह के उदय से कषाय होती है, अतः सबसे पहले मोह को जीतो।

1620. यदि मोह शरीर है तो कषाय उसकी छाया है, शरीर नष्ट होगा तो छाया अपने आप नष्ट हो जायेगी, वैसे ही मोह को जीतने पर कषाय भी चली जावेगी।

1621. मोह के आवरण में रहने वाला व्यक्ति क्रोध, मान, माया, लोभादि को भी अपनाता है और मरण कर तिर्यञ्च आदि गतियों में चला जाता है।

1622. मृग पूँछ के बालों से अधिक मोह रखता है, यदि उसकी पूँछ झाड़ी में फँस जाती है तो वह मोह के कारण बाल टूट न जाये ऐसा सोचकर खड़ा रहता है और शेर आकर उसे अपना शिकार बना लेता है।

1623. स्नेह(तेल) के निमित्त से दीपक प्रकाश देते हुए भी कज्जल पैदा करता है, वैसे ही साधु जीवन दीपक की भाँति है, थोड़ा-सा स्नेह भी बहुत बड़ा दोष माना जाता है, क्योंकि स्नेह का अतिरेक कषाय का रूप धारण कर लेता है।

1624. मोह को छोड़े बिना अध्यात्म पर चलना काकस्नान के समान है।

1625. मोह गहिल भाव का नाम है और जो वस्तु अच्छी लगे उसके प्रति आकर्षित होना राग भाव है।

1626. मोह को कम करने का उपाय करना ही मोक्षमार्ग माना जाता है।

1627. मोह से ज्यादा मत डरो बल्कि मोह के स्वभाव को समझो।

1628. असंयम की दशा में भी दर्शनमोहनीय का क्षय हो जाता है। लेकिन संयम के बिना चारित्रमोहनीय का क्षय नहीं होता।(अन्तानुबन्धी को छोड़कर)।

1629. मोहनीयकर्म का बंध अनेक कर्मों के बंध का कारण है।

1630. मोह का अर्थ विषमता में प्रवेश करना और समता से दूर हटना है।

1631. निर्दयता के साथ मोह पर प्रहार किया जाता है।

1632. किसी भी पदार्थ से गाफिल होना मोह है।

1633. मोह को नष्ट करने का चक्र जब प्राप्त होता है तब दुनियाँ का चक्र छूट जाता है।

मोक्षमार्ग

1634. मोक्षमार्ग में कोई बड़ा फावड़ा नहीं चलाना पड़ता मात्र दृष्टि को बदलना होता है।

1635. मोक्षमार्ग में अभिमान छोड़कर आत्मध्यान में लगना चाहिए, वह मैनासुंदरी थी जो कहती थी मैं ना सुंदरी हूँ।

1636. साधु सदा सुखी रहते हैं क्योंकि उन्हें यह विश्वास रहता है कि मैं जिस मार्ग पर चल रहा हूँ इसके माध्यम से धीरे-धीरे कर्म बंध से छूट रहा हूँ।

1637. दुर्बल मन वाले को मोक्षमार्ग में ही संहनन याद आता है, मोह मार्ग में नहीं और मोक्षमार्ग में अभी कम उम्र है ऐसा सोचता है, विषय कषाय में उम्र नहीं देखता।

1638. सुख चाहने वाले को विद्या प्राप्त नहीं होती और विद्या प्राप्त करने वाले को सुख प्राप्त नहीं होता, ऐसा ही मोक्षमार्ग में है।

1639. मोक्षमार्ग में विषयों से ऊपर उठना प्रथम वर्ष की परीक्षा है और कषायों से ऊपर उठना फाइनल परीक्षा है।

1640. शरीर और शरीर से सम्बन्धित लोगों से नाता तोड़ने का नाम ही मोक्षमार्ग है।

1641. मोक्षमार्ग टेड़ा नहीं है बिल्कुल सीधा है, ढाईद्वीप में कहीं से भी देखो बिल्कुल सीधा है।

1642. मोक्षमार्ग में मोह, मद व मत्सर के लिए कोई स्थान नहीं है।

1643. मोक्षमार्ग की यात्रा में ज्ञान हमारा दर्शक है, लज्जा/मर्यादा मित्र के समान है, तप-संबल (नास्ता) है, चारित्र पालकी है। 28 मूलगुण, वीतरागता रक्षक हैं, समता शीतलता से युक्त हवा है और छाया दया भावना है, स्वर्ग पड़ाव के समान है, बिना बाधा के, बिना दुर्घटना के यह मार्ग सीधा मोक्ष पहुँचता है, देवों का काम यही है कि सही मार्ग पर चलने वालों की व्यवस्था करते जाना।

1644. आज इस मार्ग में जुगनू का प्रकाश है, तूफान, हवा-पानी और चारों ओर दलदल है, फिर भी चलना तो है ही, भगवान् को याद करते चलो कि हे भगवान् ! ऐसे रास्ते को आप कैसे पार कर गये, लघुता को प्रकट करते हुए और दूसरों को भी मार्ग प्रशस्त करते हुए चले गये, ऐसी भगवान् के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए चलो।

1645. यदि आप ज्ञेय से नहीं चिपकते हो तो मोक्षमार्ग में आनंद ही आनंद है।

1646. मोक्षमार्ग में अवधिज्ञान एवं मन:पर्ययज्ञान अनिवार्य नहीं है इनके बिना भी मुक्ति मिल जाती है।

1647. यह श्रमणचर्या तब से है जब से विश्व विद्यमान है।

1648. इस मयूर पिच्छिकाधारी श्रमण जहाँ भी जाते हैं, वह भूमि पवित्र हो जाती है।

1649. साधुओं का रुकना और बिहार होना दोनों श्रावकों की वजह से ही होता है।

1650. मुनिमुद्रा के द्वारा कभी किसी को क्षति नहीं पहुँचती।

1651. रत्नकरण्डक श्रावकाचार ग्रन्थ में मोक्षमार्ग को ही धर्म कहा गया है।

1652. भटककर वापस आने की अपेक्षा चलने से पूर्व ही रास्ते की पहचान कर लो तो अच्छा होगा।

1653. मोक्षमार्ग में सम्यग्दृष्टि कभी थकता नहीं बल्कि और मजबूती लाता है।

1654. जब पाप की क्रिया से बच रहे हैं तब उस समय सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एवं सम्यक्चारित्र भी काम कर रहे हैं, ऐसा समझना चाहिए।

1655. मोक्षमार्ग में संसार (स्वर्गादि) का सुख तो नास्ता की तरह है, भोजन तो मोक्ष सुख ही है नास्ता में ही संतुष्ट नहीं होना चाहिए, क्योंकि जिस कार्य के लिए आये हो थोड़े से प्रलोभन के कारण उसे भूलना नहीं चाहिए।

1656. सम्यग्दर्शन रूपी टिकिट को अच्छे से सम्भालकर रखना चाहिए, क्योंकि मोक्ष का रास्ता लम्बा है।

1657. मोक्षमार्ग में मन के द्वारा पंचेन्द्रिय विषय न आवे यह महत्त्वपूर्ण साधना मानी जाती है। मोक्षमार्ग में पंचेन्द्रियों का व्यापार रुकना चाहिए।

1658. मोक्षमार्ग में कभी-कभी मन भी साथ नहीं देता दूसरे की तो बात ही क्या ?

1659. समयसार मोक्षमार्ग में चलने वाले व्यक्ति को पहली किताब है। पहाड़ चढ़ते समय भार कम करना पड़ता है वैसे ही मोक्षमार्ग में (परिग्रह) रूपी भार उतारकर ही चला जा सकता है।

1660. जो हमारे रास्ते में बाधक है वह परिग्रह ही है ऐसा मानकर चलो और रास्ते में हल्के/फुल्के होकर चलो तभी आनंद आवेगा।

1661. मोक्षमार्ग का प्रतिपादन शब्दों के माध्यम से नहीं हो सकता बल्कि आस्था के माध्यम से देखना चाहो तो दिख सकता है।

मोक्षमार्गी

1662. कहीं के, न होना ही मोक्षमार्गी होना है किसी से भी बंधकर न रहना, बंधकर रहना हो तो देव, शास्त्र व गुरु से यही मोक्षमार्ग है।

1663. जिसने मोह को छोड़ दिया, उसे कभी भी धोखा नहीं हो सकता।

1664. मोह पर प्रहार भेदविज्ञानी ही कर सकता है और मोह छोड़ते समय वह खुश होगा।

1665. मोक्षमार्ग में अंतर्मुहुर्त में प्रयोग में गया बस स्वयं प्रमाण बन गया। प्रमाण पत्र की आवश्यकता नहीं। शोध वही है जो किसी के प्रमाण सिद्धि की आवश्यकता नहीं रखता।

1666. स्वानुभूति में जगत् से सम्पर्क तोड़ना पड़ता है।

1667. मोक्षमार्ग में राह के अनुसार चाह चलेगी अपने मन की चाह नहीं चलेगी।

1668. संकल्प जिस ओर जाने का है उसी लक्ष्य की ओर जाना, बीच में कितने भी प्रलोभन आवे मन को वहाँ रोकना नहीं, डिगाना नहीं।

1669. जैसे रोगी को थोड़ी-सी अनुकूलता देनी पड़ती है ताकि उल्टी न हो जावे लेकिन रोगी के अनुसार नहीं चला जाता। मन ही सर्वप्रथम रोग का घर है।

1670. कभी कठोर चर्या से कभी मृदु चर्या से मन को बाँधा जाता है।

1671. मन ही ऐसा है जो आपकी सारी कमजोरियाँ जानता है और आपको (आत्मा को) दबाता जाता है। मन को दबाने वाला ही मोक्षमार्गी हो सकता है।

1672. जब तक साधना पूर्ण न हो जावे तब तक मन पर विश्वस्त मत होईये। जैसे

इमली का पेड़ भले बूढ़ा हो जावे पर इमली की खटाई कम नहीं होती, वैसे ही शरीर भले बूढ़ा हो जावे पर मन कभी बूढ़ा नहीं होता।

1673. गाल पुचक जाते हैं बुढ़ापे में पर मन और मोटा होता जाता है। मन औरों को समझाता है पर स्वयं समझने तैयार नहीं होता। तप करो पर मन के अनुरूप नहीं।

1674. आत्मा को स्वच्छ, स्वतंत्र बनाना चाहते हो तो मन पर लगाम लगाओ।

1675. मोक्षमार्ग में परीक्षाओं पर परीक्षायें हैं।

1676. जैसे मिलेट्री में कौन साथ जाता है कोई नहीं? बंदूक। नौ-नौ दिन तक पानी नहीं मिलता, नींद नहीं, खांस भी नहीं सकते। भोजन का भी ठिकाना नहीं रहता। वतन की रक्षा के लिए ऐसा ही करना होता है, तन को गौण करना होता है, ऐसा ही मोक्षमार्ग में धर्म की रक्षा के लिए करना होता है।

1677. विद्यारथ पर आरूढ़ होकर मनोवेग को रोककर जिनधर्म के मार्ग पर चलना यही निश्चय प्रभावना है। इस प्रभावना का स्रोत भीतर है। इसी स्रोत के बारे में सोचिये, इसी से कुछ मिलने वाला है।

1678. मोक्षमार्गी को ऐसे साधन सामग्री नहीं रखना चाहिए जो उपयोगी न हों।

1679. पास की वस्तु (आत्मा)के बारे में ही सोचिये पर की ओर मत जाईये।

1680. प्रशंसा, निन्दा दोनों में समता रखना मोक्षमार्ग में एक ही कोर्स है।

1681. सही-सही श्रद्धान आचरण के बाद बनता है।

1682. ऐसी साधना करो जो भविष्य को निश्चित कर दे, जो भविष्य के बारे में संदेह पैदा कर दे वैसी साधना मत करो। वर्तमान की गोद में ही भविष्य को आना है। ज्ञानी का (मोक्षमार्गी का) स्वरूप यही है कि जो विषयों के बीच में रहकर भी कीचड़पन को ग्रहण नहीं करता।

1683. तत्त्व का परायण करने के लिए स्वाध्याय का नियम लें। स्वाध्याय कहाँ से प्रारम्भ होता है ?, स्व से, मैं कौन हूँ ?

1684. मोक्षमार्ग में प्रलोभन बहुत मिलते हैं, प्रलोभन में नहीं आना चाहिए।

1685. श्रद्धान के विषयों पर चल पड़ो मंजिल पा जाओगे, बीच में सुख सुविधाओं की ओर चले जाओगे तो भटक जाओगे।

1686. बहुत दूर तक न चलो थोड़ा ही चलो, पर सीधा तो चलो युक्ति से चलो गुप्ति से चलो।

1687. मोक्षमार्ग में इतना आनंद है तो मोक्ष में कितना आनंद होगा अनुमान लगाओ।

1688. आज का सुख कम नहीं बस दुनिया से अवकाश लें।

1689. मोक्षमार्ग में सुख-सुविधा ढूँढना एक अविवेक माना जावेगा।

1690. बिना पढ़े लिखे भी मोक्षमार्ग पर आरुढ़ होते हैं, बस विनय और लगन चाहिए।

1691. संसार की लोभ-लिप्सा के लिए नहीं बल्कि आत्मोपलब्धि के लिए साधना करनी चाहिए। कौन-सी वस्तु है संसार में जो साधना से प्राप्त नहीं की जा सकती लेकिन सच्ची साधना होनी चाहिए।

1692. जब साधना करने से अनंत काल की दरिद्रता मिट जाती है तब संसार का सारा वैभव उसके सामने फीका लगने लगता है।

1693. सही रास्ता मिलने पर, सहारा मिलने पर भी यदि आप उसका दुरुपयोग करेंगे तो कल्याण नहीं होने वाला। अपना पुरुषार्थ मात्र आत्मोपलब्धि में होना चाहिए। प्रत्येक श्वांस में आत्मा की बात करते जाओ फिर अंत में मात्र आत्मा ही रह जाती है सब छूट जाता है। इन क्षणों को दुनिया के कार्यों में नहीं लगाना।

1694. दुनिया में रहकर दुनिया का नहीं बल्कि अपने उत्थान का विकल्प होना चाहिए। आत्म ध्यान के लिए दुनिया के दंद-फंद छोड़ देना चाहिए।

1695. तनाव, पर पदार्थ को पाने में होता है, आत्म तत्त्व को पाने में तनाव गायब हो जाता है। एक बार ऐसा भोजन करो कि अनादि की भूख मिट जावे।

1696. शरीर, वचन, स्पर्श के बिना अपना परिचय ज्ञात करना है, वह एकान्त में बैठकर ज्ञात होता है। वह अलग ही लोक है, जिसे हमने स्वयं बनाया है।

1697. ऐसी चीज उपलब्ध करो फिर दुबारा अन्य कोई चीज उपलब्ध न करना पड़े।

1698. जिसे अपनाया हो तो उससे सुख-दुःख होगा, अपरिचित चला जाता है तो आपमें कोई परिवर्तन नहीं आता। अनुभव स्व का ही होता है पर का अनुभव तब होता है जब हम उससे सम्बन्ध जोड़ लेते हैं।

1699. यदि भीतरी साधना जीवित है तो अभिशाप वरदान बन जाता है, कांपने लगता है।

1700. इस शरीर से भी साधना नहीं हुई तो यह वरदान अभिशाप सिद्ध हो जाता है।

1701. ज्ञान साधना में यश, ख्याति, विषयों की बात नहीं आती मात्र आत्मा की बात आती है।

1702. मैं कितना चल चुका हूँ यह महत्त्वपूर्ण नहीं है, बल्कि किस दिशा में चल रहा हूँ यह देखना महत्त्वपूर्ण है।

1703. दूसरों को मोक्षमार्ग पर चलाने के भाव रखते हो तो पहले स्वयं को निर्दोष होना/चलना चाहिए।

1704. जो मोक्षमार्ग पर आरुढ़ होता है, उसे नरक, तिर्यंच और मनुष्यायु का बंध नहीं होता।

1705. इस मार्ग में कोई शर्त नहीं अपना मन वश अपने में रहे, अपना बना रहे। दुनिया का सपना उसमें न रहे। फिर सोलह स्वप्न देखने वालों के यहाँ जन्म हो जावेगा।

1706. मोक्षमार्ग प्रत्यक्ष नहीं होता, उसे दिखाया नहीं जा सकता। आत्म-संतुष्टि तभी होगी जब हम आत्मा की बात करेंगे।

1707. मोक्षमार्ग में शारीरिक विज्ञान महत्त्वपूर्ण नहीं है बल्कि भेदविज्ञान, आत्मज्ञान महत्त्वपूर्ण है।

1708. कितने चल गये यह नहीं देखना बल्कि कितना और चलना है यह याद रखिये। इसमें दीर्घकालीन साहस की आवश्यकता है बीच में साहस नहीं खोना।

1709. स्वयं को, आत्म तत्त्व को सुरक्षित रखना है और कर्मों को जलाना है यही मोक्षमार्ग है। उद्देश्य मात्र कषायों का शमन करना है। दृष्टि लक्ष्य की ओर होना चाहिए अन्य सब गौण होना चाहिए।

1710. इस मार्ग में आरती ही नहीं आक्रोश परिषह भी सहन करना होता है उसे भी फूलमाला के समान स्वीकारना चाहिए तभी मोक्षमार्ग चलता है।

1711. साधना के मार्ग में साधन जुटाना मार्ग को कठिन बनाना है।

1712. मोक्षमार्ग में उनसे मोह रखो जो गुणों में श्रेष्ठ हैं।

1713. मोक्षमार्ग में बाहर से कुछ प्राप्त नहीं होता, भीतर से उद्घाटित करना होता है।

मौन

1714. मौन वालों को वचन शुद्धि एवं वचन सिद्धि प्राप्त होती है।

1715. वचन शुद्धि करने से वचन सिद्धि होती है।

1716. मौन पूर्वक ही भोजन करें वरन् हाजमा में गड़बड़ी होगी।

1717. नहीं बोलते हुए भी जो मन से बोलते रहते हैं, वे अज्ञानी माने जाते हैं और जो बोलते हुए भी आत्मतत्त्व में स्थिर रहते हैं, वे ज्ञानी कहलाते हैं।

य

याचना

1718. गुफायें ही साधु के घर हैं, फिर घर आदि की याचना क्या करना ?

1719. प्रभु से प्रार्थना, याचना करो बोधि, समाधि की किसी और से नहीं।

1720. जो व्यक्ति माँगता है, याचना करता है, वह परमाणु से भी छोटा होता है और जो नहीं माँगता है, वह आकाश से भी बड़ा हो जाता है, इसलिए स्वाभिमानी ही बड़ा माना जाता है।

1721. महास्कंध तीन लोक माना जाता है, लेकिन उससे बड़ा महास्कंध वह है जो कभी याचना नहीं करता।

1722. याचना करने वाले का गौरव दाता के पास चला जाता है। आहारचर्या में मान की परीक्षा अच्छी तरह से हो जाती है, आहार लेने वाले को संकोच अपने आप आ ही जाता है।

1723. तराजू के पलड़े यह संदेश देते हैं कि जो कोई लेता है वह नीचे की ओर जाता है और जो कुछ नहीं लेता वह अपने आप ऊपर की ओर जाता है।

1724. धन थोड़ा है, उससे सभी की इच्छा पूर्ति नहीं हो सकती, इसलिए उसकी आशा रखने की अपेक्षा दरिद्र रहना ही ठीक है, संतोष धारण करना ही एक मात्र उपाय है, इसी से तृप्ति मिलेगी।

1725. स्वाभिमान एक ऐसा धन है जो कभी लुट नहीं सकता, लेकिन याचना करने से स्वाभिमान भी नहीं रहता।

1726. जिस वस्तु की आशा है उस वस्तु को पहले छोड़ दो, तभी आपके पास अयाचकपना बना रह सकता है।

1727. आत्म वैभव को छोड़कर जड़ वैभव की याचना करना अज्ञान का प्रतीक है।

1728. दान देकर बदले में कोई भी कामना नहीं रखनी चाहिए।

1729. अनेशन का अर्थ है इच्छा के बिना ही आहार ग्रहण करना, यह अध्यात्म की अनोखी कला है।

1730. इस जीव को अपनी आत्मशक्ति और वैभव का गौरव नहीं है, इसलिए यह याचक वृत्ति नहीं छूटती।

1731. व्रत पालन करने वालों को कुछ याचना करने की आवश्यकता नहीं होती, उन्हें सब कुछ अपने आप उपलब्ध हो जाता है।

1732. निर्धनता ही जिनका धन है, वे साधु परमेष्ठी धन्य हैं, ऐसे धनी के चरणों में

तीनों लोकों का वैभव आने को मचलता है।

1733. हे आत्मन्! थोड़ी प्रतीक्षा कर लो, इस भव में तप कर लो, फिर स्वर्ग में तो भोग मिलना ही हैं, संसार के सुख तो पानी की भाँति हैं और मोक्ष सुख भोजन है, भोजन की प्रतीक्षा करो, पानी मत पीओ वरन् भोजन नहीं मिलेगा।

1734. दीनता और अभिमान से ऊपर उठने वाली लहर का आनंद अलग ही हुआ करता है।

1735. भारतदेश से संस्कारों का निर्यात तो करो लेकिन विदेशी संस्कारों का आयात तो मत करो, इसी से देश में संतोष और शांति आयेगी।

1736. काली मिट्टी से तो हाथ धो सकते हैं लेकिन पीली मिट्टी से (सोना) से तो मन तक मैला हो जाता है।

1737. चाहने वालों को ही धन का महत्त्व है, न चाहने वालों को तो वह मिट्टी है।

1738. तृष्णा की खाई आज तक नहीं भर सकी और न कभी भर सकती है, वह तो मात्र स्वाभिमान के द्वारा ही भरी जा सकती है क्योंकि स्वाभिमानी कभी आशा नहीं रखता है, वह तो स्वाभिमान को ही अपना धन मानता है।

1739. यहाँ आशीर्वाद से ही लोग संतुष्ट हो जाते हैं और घर में कभी भी आप लोग धन से संतुष्टि का अनुभव नहीं करते, इससे सिद्ध होता है कि संतुष्टि धन से नहीं धर्म से ही प्राप्त हो सकती है।

योग्यता

1740. योग्य बनने के लिए पुरुषार्थ, प्रबंध करना चाहिए।

1741. स्वार्थ की दुनिया में योग्य/अयोग्य का मूल्यांकन भी नहीं होता।

1742. योग्यता के अभाव में परिणाम ठीक नहीं निकलेगा।

1743. जमीन अच्छी नहीं होती तो उसमें डाला गया बीज फलता नहीं और उसका महत्त्व भी घट जाता है। मुक्ति को पाना तभी संभव है जब हम उस योग्य हो जायें।

1744. उपकार उसी पर किया जा सकता है जो उपकार का पात्र हो।

1745. उस पर उपकार करो जो कम से कम कृतज्ञता तो ज्ञापित करे।

1746. प्रत्येक पर्याय कठिनाइयों के ढेर होती है, इसका उपयोग करना बहुत कठिन होता है।

1747. इस मनुष्य पर्याय में आँखें खुल जावें तो खुल जावें वरना पता नहीं आगे क्या होगा? हमारे पास योग्यता होते हुए भी यदि हम उसका उपयोग नहीं करते तो पश्चात्ताप ही हाथ लगता है।

1748. अपनी योग्यता न समझने पर अच्छे-अच्छे अवसर भी चूक जाते हैं।

1749. स्वाभिमान की ओर देखो तो अपने आप शक्ति जागृत हो जाती है।

1750. सभी के प्रति मैत्री रखें लेकिन गुणियों के प्रति प्रमोद भाव रखें। किसी में एक छोटा-सा भी गुण दिखता है तो उसके प्रति प्रमोद भाव होना चाहिए।

1751. करने योग्य कार्य परिस्थितियों को देखकर करें।

1752. जो जैसी योग्यता रखता है उसकी योग्यतानुसार प्रबंध होने लगता है।

1753. व्यक्ति के गुणों को देखकर ही उसका गौरव, उसकी योग्यता ज्ञात होती है।

1754. जो शुद्ध होने की योग्यता रखता है उसे ही शुद्ध बनाया जा सकता है।

1755. योग्यता जब तक उद्भूत नहीं होती तब तक उस रूप मानना एक अविवेक है।

1756. प्रतिभा के साथ-साथ प्रशिक्षण की भी आवश्यकता होती है क्योंकि प्रशिक्षण व्यवहारिक ज्ञान से ओतप्रोत हुआ करता है।

1757. समय की पाबंदी सभी को अनिवार्य है, इसलिए समय की कीमत करना सीखो।

1758. समय पलटने पर हीरे भी काले कोयले बन जाते हैं।

र

रत्नत्रय

1759. रत्नत्रय पर भरोसा आत्मा का रहे, मन का नहीं मन तो तस्कर है।

1760. आज भी पंचमकाल में, भरतक्षेत्र में रत्नत्रयधारी भावलिंगी मुनि हैं। ऐसा पूर्ण श्रद्धान रखना चाहिए।

1761. रत्नत्रय तो वही है भले आज हीन संहनन हो।

1762. बाजार में सोना-चाँदी रत्न तो मिल सकते हैं, लेकिन सम्यग्दर्शन आदि रत्न नहीं मिल सकते, रत्नत्रय तो आत्मा को छोड़कर अन्यत्र कहीं नहीं मिल सकता।

1763. प्रभु कृपा, गुरु कृपा से ही यह महान् रत्नत्रय की निधि प्राप्त होती है।

1764. संसारी प्राणी रत्नत्रय की चाह न करके पाषाण खण्ड रूपी रत्नों की चाह करता है, अर्थात् चिंतामणि रत्न को छोड़कर काँच के टुकड़ों को प्राप्त करना चाहता है।

1765. रत्नत्रय को धारण किए बिना निश्चय मोक्षमार्ग प्राप्त नहीं होता।

1766. रत्नत्रय की आराधना हमेशा बनी रहे, यही सभी साधक भावना रखते हैं, लेकिन जब शरीर इसके लिए साथ नहीं देता तो वह उस रत्नत्रय धर्म के लिए शरीर का साथ छोड़ देता है।

1767. आचार्य श्री ज्ञानसागरजी की काया कृश् थी पर रत्नत्रय का मावा सफेद ही था।

रस

1768. इस जीव को जब तक पुद्‌गल में रस आ रहा है, तब तक आत्मा का रस नहीं आ सकता।

1769. संसार के विषयों में रस लेने वाले को समयसार का रस नहीं आ सकता।

रसना इन्द्रिय

1770. रसना इन्द्रिय स्वयं कहती है कि बाहर रस ना बाह्य पदार्थों में रस नहीं है और फिर भी रस माँगती है तो समझना उसके पास सिर ना (बुद्धि) नहीं है, फिर भी असर ना हो तो क्या करें ?

1771. रसना इन्द्रिय का लोलुपी सुभौम, चक्रवर्ती की सम्पदा पाकर भी नरकगामी हुआ।

1772. इन्द्रियों का विषयों की ओर न जाने देना इन्द्रिय दमन कहलाता है।

1773. रसना इन्द्रिय पर जो नियंत्रण रखता है, वह अकारण अस्वस्थ्य नहीं होता है।

1774. रसना इन्द्रिय के आते ही वचन बल आ जाता है।

1775. स्पर्शन और रसना, भोगेन्द्रियाँ मानी जाती हैं।

1776. अचित्त प्रासुक भोजन (फलादि) से रसनेन्द्रिय विजय नामक मूलगुण का पालन होता है।

राग-द्वेष

1777. राग से संसार का पदार्थ भोग्य हो जाता है और द्वेष से अभोग्य हो जाता है, इष्टानिष्ट कल्पना करने से ऐसा हो जाता है।

1778. राग-द्वेष का नाम प्रवृत्ति है और इनके अभाव का नाम निवृत्ति है।

1779. पर-पदार्थों से राग या आकर्षण पाप के लिए ही होता है।

1780. बुद्धिपूर्वक राग-द्वेष करना छोड़ दो, फिर धीरे-धीरे अबुद्धिपूर्वक राग-द्वेष होना भी छूट जायेगा।

1781. ज्ञानियों की होड़ (स्पर्धा) राग-द्वेष कम करने में लगी रहती है।

1782. राग-द्वेष कम करना ही स्वभाव की ओर जाना है।

1783. राग-द्वेष से कर्म बंध होता है, इसके फलस्वरूप शरीरादि मिलते हैं, इसी का नाम संसार है।

1784. संसार की चक्की को बंद करना चाहते हो तो राग-द्वेष का कनेक्शन हटा दो।

1785. राग-द्वेष रूपी बोझ को उतारने (हटाने) का नाम चारित्र है, धारण करने का नाम नहीं।

1786. हमारे जीवन की नाव राग-द्वेष रूपी पानी से पूर्ण खाली होनी चाहिए, तभी संसार सागर से पार हो सकते हैं।

1787. राग-द्वेष के बहाव में बहने वाला कभी भी नदी पार नहीं कर सकता।

1788. विषयों में रस तब तक आता है जब तक राग मौजूद रहता है।

1789. रुचि होने पर, राग होने पर, गंदी वस्तु में भी गुण दिखने लगते हैं।

1790. जैसे चुनाव में पर पक्ष की बात अच्छी नहीं लगती, वैसे ही साधु को राग-द्वेष व मोह की बात अच्छी नहीं लगनी चाहिए, वरन् पर-पक्ष की ओर जाने से आपकी हार निश्चित है।

1791. समता और ध्यानाग्नि के माध्यम से राग-द्वेष रूपी तुषार से बचा जा सकता है।

1792. राग वह बारुद है, जिस पर वह बरस जाये, वह जल जाता है।

1793. राग की पहचान करने के लिए रागी की दशा देख लो, राग की अपने आप पहचान हो जायेगी, क्योंकि रागी हमेशा दुःखी रहता है, रागी घर से नहीं निकल पाता, अंत में निकाल दिया जाता है।

1794. राग बिना भी जी सकते हो-जैसे निर्धूम अग्नि।

1795. राग-द्वेष से ऊपर उठने वालों को जड़-पदार्थों से भी ऊपर उठना चाहिए, ममत्व का त्याग करना चाहिए।

1796. रोग से मुक्ति चाहते हो तो कुपथ्य को दूर से ही छोड़ देना चाहिए, वैसे ही दुःख से मुक्ति चाहते हो तो दुःख के कारण राग-द्वेष को दूर से ही छोड़ देना चाहिए।

1797. राग-द्वेष की कारणभूत वस्तुओं को मत हटाओ बल्कि उनसे अपनी दृष्टि को हटाओ, कर्मबंध से बच जाओगे।

1798. राग-द्वेष का आह्वान हमारी कमजोरी को प्रदर्शित करता है, मतलब यह हुआ वस्तु आपसे मतलब नहीं रखती आप उससे मतलब रखते हैं।

1799. इस मार्ग पर राग-द्वेष को छोड़ने के उद्देश्य से चल रहे हैं तो बाह्य से सम्बन्ध पहले हटाना चाहिए।

1800. घड़ी का पैण्डूलम दायें-बायें होता रहता है, इससे सिद्ध होता है कि घड़ी चल रही है, वैसे ही राग-द्वेष चलता रहता है तो इससे सिद्ध होता है कि कर्म बंध भी होता रहता है, ऐसा श्रद्धान रखना चाहिए।

1801. राग-द्वेष के कारण संसार-भ्रान्ति चलती रहती है।

1802. काँटा खींचकर निकाल दिया, ऊपर आ गया तो कह दिया देखो ऊपर आ गया तुम ही निकाल लो, उससे द्वेष रखकर यदि नहीं निकालोगे तो वह चाँई बन जायेगी, इसलिए दोष को (द्वेष) को गौण करके राग को निकालने का प्रयास करो।

1803. अधिक प्रसन्नता दिखलाना भी राग का ही रूप है, राग की ही अभिव्यक्ति है।

1804. अज्ञानी जीव के उपयोग की धरती पर ही राग-द्वेष रूपी अंकुर उत्पन्न होते हैं।

1805. राग-द्वेष से वही बच पाता है जो गुप्ति में लीन रहता है।

1806. वस्तु स्वरूप न जानने से वस्तु अच्छी, बुरी लगती है यह सब अज्ञान की धरती पर ही घटित होता है।

1807. आप सभी इतने अधिक रागी होकर भी एक अकेले महावीर प्रभु को रागी नहीं बना पाये, न हि उनके साथ हो सके और न ही उन्हें अपना बना सके।

1808. आज सुना है ऊपर से खूब खाते पीते रहो भीतर राग-द्वेष छूट जावेगा ऐसी मशीन आने लगी है, लेकिन इनसे सावधान रहना।

1809. रागादि की उत्पत्ति में आत्म तत्त्व का हाथ है, भले वह अज्ञान मूलक है।

1810. संसार के पदार्थों की ओर आप राग के कारण ही आकर्षित होते हो।

1811. रागादि भाव चिन्तागत है, इनका विमोचन करते समय समझ में आ जाता है।

1812. रागद्वेष छोड़ने का नाम ही तप, साधना है।

1813. रागद्वेष रूपी सर्प ज्ञान व वैराग्य के मंत्र से ही रोके जा सकते हैं।

1814. रागद्वेष से रहित अवस्था का नाम ही अहिंसा है।

1815. रागद्वेष में परिणमन करने वाला बहिरात्मा है।

1816. निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध को जो नहीं जानता वह रागद्वेष को कभी छोड़ ही नहीं सकता।

1817. रागद्वेष हटाने का लक्ष्य नहीं है तो उसके बिना साधना शून्य मानी जाती है। बड़ी सुकुमारता से रागद्वेष छोड़ा जाता है ताकि आत्मा को धक्का न लगे। जैसे चावल के ऊपर की ललाई बड़ी सुकुमारता से हटाते हैं, ताकि चावल को क्षति न पहुँचे।

1818. बाल मात्र भी राग विद्यमान है तो सभी आगम को जानने वाला भी आत्मा को नहीं जान सकता, आत्मा का अनुभव नहीं कर सकता।

1819. राग-द्वेष और हठाग्रह के द्वारा जो दोष होते हैं उनसे बचते रहना चाहिए।

1820. रागद्वेष को छोड़ने की प्रणाली आंतरिक साधना मानी जाती है।

1821. रागद्वेष रूपी कड़वाहट के दूर होने पर ही आत्मा का स्वाद आता है।

1822. पंचेन्द्रिय विषयों से मात्र राग-द्वेष का ही लाभ होता है।

1823. यह संसारी प्राणी रागद्वेष को जहर समझकर भी उन्हें करता ही रहता है, क्योंकि अनादिकाल से गहरे संस्कार पड़े हुए हैं और वह कर्मों की थपेड़ों से पीड़ित है।

1824. जिसे भूख लगी रहती है वह अच्छा/बुरा नहीं देखता, बिना रागद्वेष किये पेट भर लेता है।

1825. रागद्वेष करना एक अविवेकपूर्ण कार्य है, यह विवेक से जान लेना चाहिए।

1826. इष्टानिष्ट पदार्थों में मोह मत करो, रागद्वेष मत करो, चित्त को स्थिर करने का यही उपाय है।

1827. जानने के लिए तीन लोक है और छोड़ने के लिए रागद्वेष व मोह।

1828. संसार में कहीं भी चले जाओ इष्टानिष्ट पदार्थ हमेशा उपस्थित रहेंगे, कर्म बंध से बचने का उपाय है, इनमें रागद्वेष नहीं करना।

रास्ता

1829. जैसे विद्यार्थी स्वयं अपना विषय चुनता है, वैसे ही हमें संसार एवं मोक्ष का रास्ता स्वयं ही चुनना चाहिए।

1830. जो रास्ते पर हमेशा-हमेशा चलते रहते हैं, उन्हीं से रास्ता पूछना चाहिए।

1831. इस संसार में सही रास्ता मिलना बहुत दुर्लभ है, जिनके प्रसाद से यह रास्ता मिला है तो उनके गुणों की स्तुति करना नहीं चूकना चाहिए।

1832. वे मीलों चलकर मंजिल पर पहुँच गये बिना कुछ कहे और तुम हो कि एक कदम भी नहीं चले और रफ्तार की बात करते हो।

1833. सही रास्ते पर भटकना अलग है और गलत रास्ता चलना अलग है, गलत रास्ते पर भटकन के अलावा कुछ हाथ नहीं लगेगा।

रोग

1834. रोगादि के होने पर साधक को कभी दुःख का अनुभव नहीं करना चाहिए, बाह्य दुःख के प्रति अचेतन हो जाना चाहिए।

1835. रोग हो गया तो निरामय प्रभु का ध्यान करो तभी निरोगी बन सकते हो।

1836. रोग है तो उसे समाप्त करने के लिए औषधि से मत डरो, क्योंकि रोग औषधि लेने से ही दूर होगा, भले ही औषधि कड़वी ही क्यों न हो ?

1837. औषधि रोग के लिए होती है, स्वभाव के लिए कोई औषधि नहीं होती है।

ब

बंध

1838. स्निग्ध और रुक्षत्व के माध्यम से ही बंध होता है।

1839. राग-द्वेष से रहित होने पर ही आत्मा कर्म बंध से बच सकता है।

1840. आत्मा के पास राग रूपी चिकनाहट एवं द्वेष रूपी रूखापन है जिसके माध्यम से कर्मों का बंध हो रहा है।

1841. आत्मा अपने परिणामों से, पर पदार्थों के निमित्त से कर्मों का बंध भी कर सकता है, उन्हीं पदार्थों से कर्म की निर्जरा भी कर सकता है।

1842. आत्मा के पास ऐसी क्षमता विद्यमान है कि अंतर्मुहुर्त में कर्मों को नष्ट कर सकती हैं और अनंतकाल तक उन्हें मौजूद भी रख सकती है।

1843. कर्मों से डरने की आवश्यकता नहीं है, उन्हें समझकर निर्जरित करने की आवश्यकता है, आगे कर्म न बाँधो जो कर्म बाँधा है उसे साफ करो।

1844. केवली भगवान् के पास अनंत शक्ति है लेकिन आयु कर्म अपनी स्थिति तक उन्हें संसार में बाँधे/रोके रहता है।

1845. दो में आपस में बंध होता है, दोनों का भान उसमें नहीं होता बंध के बाद तीसरा ही होता है इसी का नाम बंध है, जैसे हल्दी चूना का मिश्रण न हल्दी का रंग न चूने का रंग बल्कि तीसरा ही रंग पैदा हो जाता है।

1846. राग-द्वेष रूप परिणाम ही भाव बंध है।

1847. कर्मबंध से छूटना चाहते हो तो रागद्वेष को कम करते जाना चाहिए।

1848. अंधकार, दृष्टि को प्रतिबंधित कर देता है।

1849. दूसरे का आधार लेना बंध का कारण है।

1850. अशुभोपयोग में न आ जावे इसलिए शुभोपयोग का आधार लिया जाता है, शुभोपयोग में भी कर्म निर्जरा के साथ-साथ पुण्य कर्म का बंध भी होता है।

1851. जो चेतन भाव है वही कर्माश्रव को रोकने में कारण है, उसी को निश्चय नय से भाव संवर कहा है और जो द्रव्यास्रव को रोकने में कारण है, वह द्रव्य संवर कहलाता है।

1852. भाव संवर व द्रव्य संवर निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध को लिए हुए है।

1853. जिस चेतन भाव से कर्म बंधता है वह तो भाव बंध है और कर्म व आत्मा के प्रदेशों का एकाकार होने रूप द्रव्यबंध है।

1854. आत्मा मोह से प्रभावित उपयोग के द्वारा कर्मबंध को प्राप्त होती है।

1855. कर्मों का बंध एवं निर्जरा अपने भावों पर आधारित है।

बुद्धिमान

1856. बुद्धिमान वही है, जिसकी बुद्धि समय पर काम कर जाती है।

1857. सम्यग्दृष्टि होकर भी बुद्धि सही काम तब नहीं करती जब उसका विनाश होना होता है।

1858. जो बुद्धिपूर्वक पाप क्रियाएँ नहीं करते, वे बुद्धिमान कहलाते हैं।

1859. यदि ज्ञान होने पर भी संसारभूत पाप क्रियाएँ जिसकी रुकती नहीं हैं, वह ज्ञानी नहीं माना जाता।

1860. गुरु की कृपा से तो बुद्धु भी बुद्धिमान बन जाते हैं।

1861. क्रोध के उदय में भी जो क्रोध नहीं करता, वही बुद्धिमान माना जाता है।

1862. बुद्धि के माध्यम से दुनिया को उठाना कठिन है, लेकिन उससे भी ज्यादा कठिनतम् कार्य है, अपने भावों को उठाना/सम्हालना।

व

वंदना

1863. द्रव्य वंदना के साथ मन, वचन एवं काय की प्रवृत्ति जुड़ी रहती है, भाव वंदना में कोई क्रिया नहीं होती, भाव वंदना शुद्धभाव के साथ शांत बैठकर की जाती है, सामायिक के समय शुद्ध स्तवन, वंदना का अवसर मिलता है।

व्रत

1864. पाँच पापों का त्याग किए बिना व्रती नहीं बन सकते।

1865. विरति दो प्रकार की होती है, सकल विरति और देशव्रती। देशव्रती श्रावक का धर्म है और सकलव्रती होना मुनि धर्म है।

1866. एक व्यक्ति व्रती बन जाता है तो सारा परिवार प्रासुक/सात्त्विक हो जाता है इससे जीवन में, परिवार में व्रत पलने लगता है, फिर आत्मा की बात रुचने लगती है।

1867. जिनके यहाँ सात्त्विक जीवन बना रहता है, उनके परिवार में व्रती आते रहते हैं।

1868. व्रत पालना विश्वास के साथ होता है, उसी विश्वास का नाम सम्यग्दर्शन है।

1869. विश्वास की कमी होने से व्रतों में कमी आ जाती है।

1870. हमारा जीवन संयत और संतुलित रहे तभी लक्ष्य प्राप्त होगा।

1871. व्रत ऐसा पक्का होना चाहिए जैसे कपड़े पर लगा पक्का रंग,जो कपड़ा फटने के बाद भी रहता है, उड़ता नहीं।

1872. व्रतियों को हमेशा अशुचि भावना का चिंतन करना चाहिए।

1873. व्रत पालन करने के लिए दृढ़ श्रद्धान की आवश्यकता होती है।

1874. सम्यग्ज्ञान और सम्यग्दर्शन सुरक्षित हो तभी विरति सार्थक है।

1875. व्रती हमेशा माया, मिथ्या और निदान रूप तीनों शल्यों से रहित होता है।

1876. सम्यग्दर्शन के अभाव में पाँच पापों का त्याग सम्यक्चारित्र नहीं कहलाता।

1877. श्रावक के 12 व्रत होते हैं, जब उन्हें अंगीकार करता है, तभी वह व्रती माना जाता है, एक पाप के त्याग करने से व्रती संज्ञा को प्राप्त नहीं हो सकता।

1878. व्रत के बिना समितियों का कोई महत्त्व नहीं होता, क्योंकि व्रत की रक्षा के लिए समिति होती है।

1879. व्रत होने के बाद भी मैं व्रती हूँ, इस प्रकार का विकल्प नहीं रहता, इसका नाम निश्चय व्रत है, जो कि शुभाशुभ रागादि विकल्प से रहित होता है।

1880. व्रतों में दृढ़ रहना, सदाचार का पालन करना और तत्त्वों का चिन्तन करना धर्म-ध्यान का लक्षण है।

1881. प्रायश्चित्त के बिना व्रतों का कोई महत्त्व नहीं होता।

विवाह

1882. विवाह संसार की वृद्धि में मूल कारण है।

1883. विवाह संतान की उत्पत्ति के लिए, कुल परम्परा चलाने के उद्देश्य के लिए होना चाहिए, वासना की पूर्ति के लिए नहीं, वरन् संसार की परम्परा कभी समाप्त नहीं होगी।

1884. एक बच्चे (चारुदत्त) को विवाहित करने के चक्क र में शौच कूप तक भेज दिया, यह है, मोही बंधुओं की दशा।

विनय/विवेक

1885. बाल्यावस्था एक ऐसी अवस्था है, जिसमें हिताहित का विवेक नहीं रहता, युवावस्था उस वन के समान है, जिसमें यदि भटक गये तो रास्ता ही नहीं मिल पाता।

1886. श्रावक को भी हंस जैसा श्रोता होना चाहिए, क्षीर, नीर विवेक वाला।

1887. त्याग करते समय जल्दबाजी नहीं करो। बल्कि विवेक के साथ ही किसी वस्तु का त्याग करे।

1888. भले ही थोड़ा-सा त्याग करो लेकिन विवेक, आस्था दृढ़ता के साथ करिये उसका अच्छा प्रभाव पड़ता है एवं फल भी अच्छा मिलता है।

1889. ड्रायवर गाड़ी अच्छी चलाता हो, लेकिन शराब पीता हो तो उससे खतरा ही समझो, वैसे ही तपस्या बहुत अच्छी हो लेकिन विवेकपूर्वक नहीं हो तो उससे खतरा ही समझो।

1890. विवेकशील को थोड़ा-सा भी अभिमान नहीं करना चाहिए, अतिविश्वास कभी भी लाभप्रद नहीं होता।

1891. राग कभी भी धर्म नहीं हो सकता, दया भी विवेक के साथ होती है।

1892. विनय, विवेक के साथ होती है, इसलिए विनय में भय नहीं होता।

1893. विनय में हाथ जुड़े होते हैं और भय में हाथ कांपते हैं।

1894. विनय सम्यग्दर्शन के साथ रहती है और भय कषाय के साथ रहता है।

1895. नय नय है, विनय पुरौधा है मोक्षमार्ग में।

1896. विवेक वही है, जिससे दोषों का निराकरण हो।

1897. विनय से पाप का घात होता है और सभी प्रकार की कलाएँ प्राप्त हो जाती हैं।

1898. प्रायश्चित्त लेने वाले के पास विनय गुण आ जाता है।

1899. सम्यग्दर्शन का निर्दोष पालन करना ही सम्यग्दर्शन की विनय है।

1900. विनय के माध्यम से श्रुतसागर बन जाते हैं और संसार सागर को पार कर जाते हैं।

1901. छः आवश्यकों का पालन करना भी तप की विनय है।

1902. गुणाधिक के प्रति यथायोग्य विनय करना हमारी प्रसन्नता को व्यक्त करना है।

1903. विनय से शत्रु भी मित्र बन जाते हैं।

1904. विवेक के द्वारा दूर और पास के पदार्थों को हम निकट से जान सकते हैं।

1905. जीवन में आनंद चाहते हो तो ज्ञान के साथ विवेक का उपयोग कीजिए।

1906. इतना ही जानना विवेक है कि दूध में पानी है या पानी में दूध।

1907. लोभ से विवेक कुण्ठित हो जाता है।

1908. हम जड़ की रक्षा कर रहे हैं या जड़ से हमारी रक्षा हो रही है, इसका निर्णय करना ही विवेक माना जाता है।

1909. कौवे (शरीर, जड़) की चाकरी के लिए हंस (आत्मा) को रखा यह

अविवेक नहीं तो क्या है?

1910. जो अपने आपको नहीं जान सकता वह सबसे बड़ा जड़ (मूर्ख) माना जाता है।

1911. किसी को अपनाने की आवश्यकता नहीं बल्कि जो अपनाया है उसको छोड़ने की आवश्यकता है, बस यही आत्म-पुरुषार्थ कहलाता है।

1912. पानी कहीं गया नहीं, उसे खोजने की आवश्यकता नहीं बल्कि खोदने की आवश्यकता है।

1913. जो आत्मा पर मोह, कषाय की पर्तें पड़ी हैं, उसे अलग करके चेतन को पाना ही सबसे बड़ा विवेक है।

1914. शरीर यदि आज तक शरारत करता रहा तो अपने विवेक की कमी मानी जाती है।

1915. हमारे सुख का स्रोत मात्र विवेक है आप जब चाहो तब इस स्रोत को खोल सकते हो।

1916. प्रत्येक मानव का लक्ष्य धन कमाना नहीं, बल्कि आत्म धर्म पाना होना चाहिए।

1917. विवेक एक ऐसी सम्पदा या प्रकाश है, जिससे हम हमेशा के लिए प्रकाशित हो सकते हैं, मालामाल हो सकते हैं।

1918. संसार में संतुष्टि यदि मिल सकती है तो विवेक से ही मिल सकती है।

1919. विवेक की उपासना ही, मैं जीवन की साधना समझता हूँ।

1920. विवेक ही जीवन का सार है।

1921. आज विज्ञान की आवश्यकता नहीं किन्तु विवेक की आवश्यकता है।

1922. विवेक का अर्थ होता है कौन-सा कार्य अहितकारी है, कौन-सा हितकारी है, पूर्वापर विचार करने का नाम विवेक है।

1923. विवेकवान् व्यक्ति बाधक को छोड़कर साधक को अपनाने की बात सोचता है।

1924. यदि विकास चाहते हो तो सही दिशा में विकास करो, जिस दिशा में विकास की आवश्यकता है, इसी का नाम विवेक है।

1925. कार्य निष्पन्न करने के लिए उद्यम के साथ-साथ विवेक की भी आवश्यकता होती है।

1926. विवेक का अर्थ ज्ञान नहीं, बल्कि विवेक का अर्थ विशेष सावधानी है।

1927. दाता के पास विवेक गुण आ जाता है तो सातों गुण आ जाते हैं।

1928. विवेक के अभाव में खेत की सुरक्षा में लगायी गयी बाड़ी ही खेत को खा जाती है।

1929. हमारा विवेक समाप्त होने पर ऐसा अनर्थ घट जाता है कि जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती।

1930. विवेक का अर्थ विभाजन है, कौन ? कब ? कहाँ ? कैसे ? सावधानी रखना, बोलने में, चलने में, व्यवहार में आदि आदि।

1931. जो हमारा नहीं है, उसे हम अपने काबू में रखना चाहते हैं, यह हमारा अपना अविवेक ही है। प्रत्येक कार्य में विवेक दृष्टि रखते हैं तो उसमें संतुष्टि अवश्य मिलती है और उससे अपना हित अवश्य होता है।

विभाव

1932. विभाव को हटाना ही स्वभाव को पाना है, विभाव को हटाये बिना स्वभाव का परिचय नहीं हो सकता।

1933. विज्ञान स्वभाव को कभी भी प्राप्त नहीं कर सकता, क्योंकि वह विभाव को छोड़ना नहीं चाहता।

1934. विकार निकल जाने से सही वस्तु का सही-सही स्वाद आने लगता है।

1935. आत्मा के भावों को बाहर लाते समय जीव विभाव रूप परिणमन कर जाता है, इसलिए प्रायश्चित्त का भागीदार होता है।

1936. विभाव भाव ही मद पैदा करते हैं।

1937. विभाव ज्ञान हमेशा खतरा पैदा करता है।

1938. स्वभाव का श्रद्धान न होने पर विभाव को छोड़ने की बात ही नहीं होती, राग को छोड़ने से पहले राग मेरे अंदर विद्यमान है, ऐसा श्रद्धान करना अनिवार्य है।

1939. हमारा स्वभाव वर्तमान में शक्ति के रूप में विद्यमान है, अभिव्यक्ति के रूप में नहीं।

विश्वास

1940. जो विश्वास समय पर सक्रिय हो वही सही विश्वास है।

1941. जिसे नरकों के दु:खों पर विश्वास नहीं होता वही व्यसन और पाप करता है।

1942. मोक्षमार्ग में सबसे पहले विश्वास रखने की बात हुआ करती है।

1943. विश्वास की नींव पर ही उन्नति का विशाल महल खड़ा होता है।

1944. निराकुल सुख में जिसकी आस्था नहीं है, उसे कभी भी मुक्ति नहीं मिल सकती।

विषय

1945. यह संसारी प्राणी जितने अच्छे भाव से, प्रमुदित भाव से, विषयों को देखता है, वैसे ही प्रभु को क्यों नहीं देखता इसका कारण अनन्तकाल का आकर्षण है, स्वप्न में विषयों को तो देखता है लेकिन प्रभु को नहीं देखता, यह सब रुचि पर आधारित है।

1946. विषयों के विष से घुला हुआ भोजन क्यों कर रहे हो ? यह प्राणलेवा कलेवा (नास्ता) है।

1947. जीना चाहते हो लेकिन विषय रूपी विष पीकर, यह तो पागलपन है, ऐसा तो पागल भी नहीं करता, लेकिन सभी यह कर रहे हैं, इसलिए भव-भव में मृत्यु हो रही है।

1948. मनुष्य जीवन के गौरव को, स्वाभिमान को इस प्राणी ने विषयों के कारण मिट्टी में मिला दिया।

1949. इस संसार में जो राग का विषय है, वही कुछ समय बाद द्वेष का विषय बन जाता है, जैसे शाम को हवा अच्छी लगती है लेकिन अर्धरात्रि में वही कँपकँपी पैदा कर देती है।

1950. एक बात ध्यान रखो विषयों की पूर्ति से कभी भी शांति नहीं मिल सकती।

1951. विषयों की ओर जाने वाले व्यक्ति का भविष्य अंधकारमय ही होता है।

1952. विषय कषाय में आपादकण्ठ डूबे गृहस्थ को निश्चय धर्म हो ही नहीं सकता।

1953. यह संसार पंचेन्द्रिय विषयों से भरा-पूरा जंगल है, इसमें चार हाथ देखकर चलो, इधर-उधर प्रलोभनों की ओर देखा तो भटक जाओगे।

1954. यह संसारी प्राणी विष से तो डरता है, लेकिन विष से भी विषैले विषयों से नहीं डरता, वह बाह्य रूप पर मुग्ध हो जाता है, उसे नरक का कूप नहीं दिखता।

1955. बिल्ली की भाँति विषय भोग रूपी नवनीत की आस में यह दुनिया अटकी रहती है।

1956. दूसरों को देखकर तुम विषयों की ओर क्यों जाते हो ? जरा सोचो थोड़े से समय व सुख के लिए विषयों की इच्छा करना बड़ी अनर्थकारी है।

1957. बुखार से पीड़ित व्यक्ति को जैसे घी, तेल, मिर्च, खटाई आदि निषेध है, नुकसानदायक है, वैसे ही व्रती के लिए विषयाभिलाषा अनर्थकारी है, विषय-कषाय मोक्षमार्ग में कुपथ्य है।

1958. मोक्षमार्ग में दूसरे के लिए कुछ किया जा सकता, यह एक महान् भूल है, हाँ ! भाव अच्छे रख सकते हो दूसरे के प्रति भी ताकि हमारा मन विषयों कषायों की ओर न जा सके।

वैयावृत्ति

1959. दीक्षाभिमुख को दीक्षा के लिए प्रेरित करना भी वैयावृत्ति मानी जाती है।

1960. वैयावृत्ति अंतरंग तप में आती है, इसलिए वैयावृत्ति करने वाला तपस्या में लगा हुआ है, ऐसा समझना चाहिए।

1961. अलग-अलग भावों के माध्यम से दिये गये दान और की गई वैयावृत्ति का फल तारतम्य को लेकर हुआ करता है।

1962. शरीर में कौन रहना चाहता है, लेकिन इससे उपकार होता है, इसके माध्यम से संवर, निर्जरा चलती रहती है, इसलिए वैरागी इसमें रहता है।

1963. संसार, शरीर और भोगों का आकर्षण कम हो जाना, इनसे वैराग्य आ जाना एक बड़ी अद्‌भुत घटना है।

1964. वैराग्य आते ही संसार असार लगने लगता है, राग में, असार में (छिलका में) भी सार (तेल) निकाल लेता है।

1965. धर्म में, धर्म के फल में और दर्शन (मोक्षमार्ग) में जो हर्ष होता है और पापों से भय होता है, उसे संवेग कहते हैं और संसार, देह तथा भोगों में विरक्तभाव रूप वैराग्य है।

1966. बारह भावनाओं का चिन्तन करने से वैराग्य की उत्पत्ति होती है।

1967. सम्यग्दर्शन जितना प्रौढ़ होगा उतना ही अधिक वैराग्य बढ़ेगा।

1968. वैराग्य रूपी अंकुश से इन्द्रिय रूपी हाथियों को वश में कर लेना चाहिए।

1969. संसार, शरीर और भोग के त्याग रूप वैराग्य तीन प्रकार का होता है।

1970. वैराग्य में भय नहीं, अभय होता है।

1971. जिन्हें गुणों के प्रति आदर होता है, वही वैयावृत्ति कर सकता है।

1972. जिस समय जो आवश्यक हो, संयमी के लिए उसकी पूर्ति करना वैयावृत्ति है।

1973. वैयावृत्ति में प्रदर्शन नहीं होता बल्कि समर्पण होता है।

1974. वात्सल्य अंग को सुरक्षित रखना चाहते हो तो वैयावृत्ति को कभी भूलना नहीं चाहिए।

1975. जो वैयावृत्ति नहीं करता उसके व्रत ठूंठ वृक्ष से पक्षियों की भाँति उड़ जाते हैं।

1976. आवश्यक और सीमा के अनुरूप ही वैयावृत्ति होनी चाहिए।

1977. जो वैयावृत्ति नहीं करता तो समझना वह संघ को तोड़ने का काम कर रहा है।

1978. लोक संग्रह वैयावृत्ति के माध्यम से ही होता है।

1979. दान और वैयावृत्ति को आचार्यों ने अतिथि-संविभागव्रत के रूप में स्वीकारा है।

1980. मानसिक वैयावृत्ति करना बहुत कठिन है।

1981. जो गुणों के प्रति अनुराग नहीं रख सकता वह कभी भी वैयावृत्ति नहीं कर सकता।

1982. गुरुओं के गुणों के प्रति आदर भाव रखते हुये जो वैयावृत्ति करता है वह आगे चलकर उन्हीं गुणों को प्राप्त करता है।

1983. वैयावृत्ति करने वाला नियम से विनयशील होता है, इसलिए वैयावृत्ति करने वाले के दो तप सहज ही हो जाते हैं।

1984. अपनी शक्ति के अनुसार तपस्वियों की वैयावृत्ति करने से तीर्थङ्कर प्रकृति का बंध होता है।

1985. कुछ न करने का नाम ही निश्चय है, इसलिए निश्चय सरल है, व्यवहार में कुछ करना होता है, इसलिए व्यवहार धर्म कठिन है।

1986. जहाँ सत्य होता है वहाँ विसंवाद होता है और विसंवाद से राग-द्वेष होता है, जिससे संसार बढ़ता है।

1987. कर्म बंधन शुभाशुभ क्रियाओं के आस्रव से होता है और आस्रव क्रोधादि कषायों से होता है, क्रोधादि प्रमादों से उत्पन्न होते हैं और प्रमाद मिथ्यात्व से पुष्ट होता है।

1988. अपने आप में स्वाश्रित होना एक बड़ी तपस्या है।

1989. यदि कार्यक्रम में प्रत्येक व्यक्ति व्यवस्थित हो जावे तो व्यवस्थापकों की जरूरत ही नहीं पड़ेगी, कभी-कभी व्यवस्थापकों से ज्यादा अव्यवस्था हो जाती है।

1990. जो संसार से डरता नहीं, जो पापों से भयभीत नहीं है, वह वीर नहीं कहला सकता।

1991. जो विकसित हो रहे हैं, उन्हें सहयोग देने वाला बंधु माना जाता है, इसलिए कमल को विकसित करने में सहयोग करने वाले सूर्य को कमल बंधु कहा जाता है।

1992. घर के बंधुजन ही चारुदत्त जैसों को दारुदत्त बनाते हैं (शराब पीने में प्रवृत्त करते हैं) मोह जाल में फँसाते हैं।

1993. जिनसे हमारे दोष फलें-फूलें, वे बंधु कैसे ?

1994. बाह्य वस्तु का विकल्प छूटे बिना अध्यात्म का रस नहीं आ सकता, इसलिए कहा है-शम ही जिनका धन है, वे साधु हैं।

1995. सत्य वही है जो बोलता नहीं, अपनी बात सिद्ध करने छटपटाता नहीं है।

वैराग्य-वीतरागता

1996. सभी से मैत्रीभाव रखो और वैराग्य को अलंकार बनाओ।

1997. धन, दौलत, पद, सत्ता आदि की भूख समाप्त होने पर ही वैराग्य आता है।

1998. वैरागी अपने नाम से धन कभी रखता ही नहीं।

1999. लक्ष्मी, धन व वैभव पाप रूप हैं एवं तृष्णा को बढ़ाने वाले हैं, इसलिए त्यागी इसे छूता ही नहीं।

2000. वैराग्य होने के बाद सम्पदा का त्याग कर दिया, इसमें क्या आश्चर्य! जहर का ज्ञान होते हुये ही वह उल्टी कर देता है, जिसको घृणा आ जाती है, वह उसे दुबारा ग्रहण नहीं कर सकता।

2001. व्यक्ति के जीवन में वैराग्य आते ही संसार का कोई भी पदार्थ उसे अपनी ओर आकृष्ट नहीं करा सकता।

2002. समता माँ, वैरागी बेटे के पास ही रहती है रागी के पास नहीं।

2003. वैरागी लोग शरीर को ऐसा संभालते हैं, जैसे ड्रायवर गाड़ी को, तभी मोक्षमार्ग की यात्रा समीचीन होती है।

2004. जीवन में वीतरागता जितनी रखोगे उतना पाओगे यह महावीर का मार्ग है।

2005. पारे के भस्म के रूप में आत्मा की दशा है, ''वीतरागता'' का पुट मिलते ही वह स्वरूप में आ जायेगा।

2006. रागी को आकृष्ट करने का एक मात्र उपाय है वीतराग होना।

2007. हमारी प्रत्येक चेष्टाओं में राग का पुट रहता है, इसलिए वीतरागी का दर्शन करते रहना चाहिए।

2008. तपस्या में मुख्य तो वीतरागता है, निष्कषाय भाव है, अतः उसी की ओर बढ़ना चाहिए।

2009. वीतरागता के लिए परिग्रह अभिशाप है, साधक को हमेशा विवेक की आँख खोले रखना चाहिए, क्योंकि ''आगम चक्खु साहू'' कहा है, इसलिए साधक को अपवादों से हमेशा बचना चाहिए।

2010. वैराग्य के लिए किसी मुहूर्त की आवश्यकता नहीं होती।

2011. जिस प्रकार अग्नि की छोटी-सी कणिका अटवी को भस्म करने में सक्षम होती है, उसी प्रकार एक क्षण का वैराग्य भी सारे कर्मों को नष्ट कर देता है।

2012. वैराग्य कक्ष में किसी से सम्बन्ध नहीं होता वह प्रकृतिस्थ हो जाता है, यह संसार में मेरा तेरा मात्र दिमाग की उपज थी, जिससे ये तरंगे उठ रहीं थीं। ऐसा विचार आने लगता है।

2013. स्वस्थ आत्मा में ये कोई तरंगें नहीं हुआ करती, भीतर से कोई उपाधि भी नहीं होती।

2014. करंट से आप लकड़ी के द्वारा छूट सकते हो और यदि लोहा जोड़ दोगे तो आप भी उससे चिपक जाओगे। इसी प्रकार हजार व्यक्ति रागी हैं और एक वीतरागी है तो सभी को संसार से छुड़ा सकता है। यदि वही रागी हो गया तो वह भी चिपक सकता है।

2015. वीतरागता की रक्षा पैसे से नहीं बल्कि पैसे के त्याग से की जा सकती है।

2016. वीतरागता की रक्षा राग के माध्यम से करना एक बहुत बड़ी भूल मानी जाती है।

2017. जब वीतराग धर्म का विलय हो जावेगा तब कृषि, असि, मसि आदि षट्कर्म का भी विलय हो जावेगा।

2018. वीतरागता की रक्षा यदि हम राग की वस्तुओं से करते हैं तो वह रक्षा सम्भव नहीं क्योंकि राग की वस्तुओं से तो राग का ही वर्द्धन होगा।

2019. संसार की वस्तुओं में यदि सुख होता तो तीर्थङ्करों ने इस संसार का त्याग क्यों किया होता।

2020. वीतराग मार्ग की पहचान परिग्रह से नहीं बल्कि वीतरागता या अपरिग्रह से होती है।

2021. संसारी प्राणी की दशा चक्की में पड़े दाने की भाँति है, जो रागद्वेष रूपी चक्की में पड़ेगा वह पिसेगा ही।

2022. मोक्षमार्ग में कोई शर्त नहीं होती बड़ा सीधा मार्ग है बस एक ही शर्त है और वह यह है कि पीछे मुड़कर नहीं देख सकते।

2023. एक बार वैराग्य हो गया तो बंधन छूट जावेगा और बंधन नहीं रहा तो फिर मुक्ति हो जावेगी।

2024. मृत्यु के बारे में सोचते हैं तो जल्दी वैराग्य हो जाता है।

2025. जंगल में मंगल इसलिए हो जाता है क्योंकि वहाँ राग से ऊपर उठे साधु वीतराग प्रभु रहते हैं। मोह का पवन नहीं होने से भगवान् के मान सरोवर में

तरंगें नहीं उठतीं।

2026. वीतरागता के दर्शन में जो अनुभूति होती है एवं जो आनंद आता है, वह अन्य किसी वस्तु में नहीं आता।

2027. वैरागियों के सान्निध्य से ही यह दिव्य नेत्र खुल जाता है।

2028. वैराग्य की मूर्ति को देखकर चोर भी वैरागी बन गया, उपदेश से नहीं।

2029. राग से वीतरागता की ओर जाने का जो उपक्रम है, वह अद्‌भुत है, यह चमत्कार नहीं बल्कि चित्‌चमत्कार है यह मन, वचन एवं काय की नहीं, चेतन की बात है।

2030. वीतरागता के दृश्य को देखकर माया बाजार समाप्त हो जाता है, चेतना का बाजार खुल जाता है। यह शक्ति का उद्‌घाटक वैराग्य होने पर हो जाता है।

2031. जो हमारी अनादिकाल से चली आ रही भूख है, वह वीतरागता से ही शांत होगी।

2032. रागद्वेष, विषय कषाय आदि अंदर की गंदगी को बाहर निकाल दो फिर अंदर से वीतरागता की सुगंधी फूटने लगेगी।

2033. वैराग्य मात्र आत्मतत्त्व की पहचान हो जाने पर अकेला ही चलता है।

2034. वैराग्य के सामने यह संसार एक मायाजाल-सा प्रतीत होने लगता है।

2035. वैराग्य ऐसा घर है जिसमें किसी भी व्यवस्था की आवश्यकता नहीं पड़ती।

2036. वीतरागी सामने रहेंगे तो जागृति बनी रहेगी।

2037. मुझे आश्चर्य है रोज दर्पण देखने के बाद भी आपको संसार क्षणभंगुर नहीं लगता। यह शरीर गलन पूरन की क्रिया सहित है। इस रहस्य को संसारी प्राणी समझता नहीं। इसलिये वैराग्य की ओर नहीं बढ़ पाता।

व्यसन

2038. अपना हित किसमें निहित है यह ज्ञान व्यसनी को नहीं होता।

2039. किसी पदार्थ का अतिरेक से सेवन करना व्यसन में आता है।

2040. जिसके बिना रहा न जावे, उसे व्यसन कहते हैं।

2041. किसी-किसी को सद्व्यसन भी होते हैं। जैसे-विद्या का, कविता पाठ करने का आदि।

2042. बुरी आदतें ही व्यसन का रूप ले लेती हैं।

2043. बुरी लत व्यसनी को लात मारकर नरक (पतन) के गड्ढे में गिरा देती है।

2044. धन कमाने का व्यसन हमें धर्म से दूर कर देता है।

2045. कोई भी दुर्व्यसन हो वह दु:खदायी ही सिद्ध होता है।

2046. व्यसनी के पास कभी विद्या टिक नहीं सकती, व्यसनी पर कोई विश्वास नहीं करता।

श

शरण

2047. चार शरण दर्पण के समान है, वे सभी आत्माभिमुख हैं, उन्हें याद कर हम भी अपनी आत्मा की शरण ले लेते हैं, दर्पण को देखने का अर्थ स्वयं को देखना है, इसलिए आत्मस्थ को देखने से आत्मा की याद आ जाती है।

2048. जो आत्मा की गहराई में उतर जाते हैं, वे आत्मज्ञ हो जाते हैं और वही हमारे लिए शरणभूत हो जाते हैं।

2049. संसार में अंतिम शरण आत्मा ही है।

शरीर

2050. शरीरमय आत्मा नहीं है, बल्कि शरीर में आत्मा है जैसे पाषाणमय सोना नहीं है, बल्कि पाषाण में सोना है।

2051. यह शरीर काम रूपी सर्प का घर है और यह शरीर संयम का साधन भी है।

2052. शरीर सुख की आकांक्षा रखोगे तो काम का प्रकोप बढ़ेगा।

2053. शरीर के सुख को विष मिश्रित अन्न समझकर छोड़ देना चाहिए।

2054. शरीर सुख एवं शरीर का संस्कार मोक्षमार्ग में बाधक है।

2055. यह प्राणी शरीर को पुष्ट बनाना चाहता है पर ज्ञान को पुष्ट बनाना नहीं चाहता।

2056. मैं शरीर वाला हूँ ही नहीं ऐसा श्रद्धान बना लो ऐसा श्रद्धावान जीव आत्मस्थ हो जाता है, वह चलते हुये भी नहीं चलता, देखते हुये भी नहीं देखता, कर्म बंध से मुक्त रहता है।

2057. शरीर से हमेशा विकल्प ही होते हैं, पित्त की अधिकता से स्वप्न में अग्नि दिखती है, वात की अधिकता से हवा में उड़ना दिखता है और कफ की अधिकता से पानी दिखता है।

2058. अनर्थ का मूल कारण यह शरीर ही है, जो इस शरीर को नियंत्रण में रखकर इससे धर्म साधन करता है, वह अशरीरी बन सकता है।

2059. कुछ भी पदार्थ डालो, इस शरीर में फिर भी नाली की भाँति गंदा हो जाता है, यह शरीर धन आदि आपत्तियों का घर है साढ़े साती का गिरहा उसी को लग सकता है जिसके पास परिग्रह हो।

2060. शरीर को आचार्यों ने हीनस्थान कहा है, क्योंकि इससे हीन कार्य किए हैं, इसलिए यह अब छूटता नहीं है, उसमें रहने वाले सब पिंजरे के पंछी के समान हैं।

2061. हमने इस शरीर को अपना हेतु समझा है, तभी तो उससे बड़ा अनुबंध है, सल्लेखना के बाद भी वह प्राप्त हो जाता है।

2062. बच्चे की भाँति शरीर को सुला दो, फिर भीतर आत्मा से काम लो, शरीर पर ज्यादा दया करना अविवेक है।

2063. शरीर से व्यवस्थित काम लेते रहना एक महान् कला है।

शास्त्र

2064. शास्त्र विषयक राग साधु को सुबह की लालिमा के समान है।

2065. शास्त्र-स्वाध्याय से कषायों का उपशम होना चाहिए, कषाय संक्लेश नहीं होना चाहिए।

2066. बाजार के भाव के बारे में अखबार पढ़ते हो तो आत्मा के भाव के बारे में जानने के लिए शास्त्र स्वाध्याय करना चाहिए।

2067. वीतराग सर्वज्ञ के वचन प्रमाण हैं, ऐसा मन में निश्चय करके उनके कथन में विवाद नहीं करना चाहिए, क्योंकि विवाद में रागद्वेष उत्पन्न होते हैं और रागद्वेष से संसार की वृद्धि होती है।

2068. जैसे सूर्य के प्रकाश व प्रताप में कभी कमी नहीं आती, चाहे जब उसको ग्रहण कर सकते हो, वैसे ही जिन शास्त्रों को कभी भी पढ़ो, इनसे हमेशा ज्ञान व वैराग्य ही प्राप्त होता है।

2069. जिनके वैराग्य की ओर कदम बढ़े हैं और जो बढ़ाना चाहते हैं, उन्हें जिन शास्त्र मील के पत्थर सिद्ध होते हैं।

2070. अध्यात्म ग्रन्थ में पहले शुद्ध को ही नमस्कार किया जाता है, लेकिन जिनके प्रसाद से, कृपा दृष्टि से यह मोक्षमार्ग मिला है, उनको भी नमस्कार किया गया है।

2071. जिनेन्द्र भगवान् के वचनों को औषधि कहा है, जो इसका सेवन करता है उसके भय, रोग नष्ट हो जाते हैं।

2072. जो कर्ममल मिथ्यात्व, रागादि आत्मा में आ गये हैं, संचित हो गये हैं, उन्हें निष्कासित करने के लिए जिनेन्द्र भगवान् की वाणी 'त्रिफला रूप' औषधि है।

2073. जिससे मन में एकाग्रता आती हो ऐसा साहित्य पढ़ना चाहिए, लेकिन यह भी

ध्यान रहे कि वह एकाग्रता कर्म निर्जरा में साधक बननी चाहिए।

2074. शास्त्र स्वाध्याय करते समय कुतर्क नहीं करना चाहिए, कुतर्क करना शास्त्र का अनादर है।

2075. सूत्र और व्याख्या में जितना अंतर है उतना ही मंत्र और ग्रन्थ में अंतर है।

2076. जहाँ मंत्र का आलम्बन लेना अनिवार्य है, वहाँ लेना ही चाहिए।

2077. आगम का आश्रय लेने वाले के राग-द्वेष, मोह कम होते चले जाते हैं, और आत्मा का आश्रय लेने वाले को राग-द्वेष मोह होते ही नहीं हैं।

2078. अर्थ-शास्त्र के साथ-साथ थोड़ा त्याग-शास्त्र पढ़ना भी आवश्यक है वरन् अर्थ (धन) अनर्थ का कारण बन जावेगा।

श्र

श्रावक

2079. डॉ. जे. को.वी. जर्मनी ने कहा है कि भारत से ही जैनधर्म और बौद्धधर्म चल रहे हैं पर जैनधर्म की परम्परा अभी भी चल रही है जबकि बौद्धों के अनुयायी इतने नहीं हैं। क्योंकि बौद्धधर्म में मात्र साधु धर्म है श्रावक धर्म नहीं। जबकि जैनियों में साधु धर्म भी है और श्रावक धर्म भी और साधु से श्रावक धर्म वाले ज्यादा हैं। इसलिए दो पहियों (श्रावक, साधु) से जिनशासन रूपी रथ आगे बढ़ता जा रहा है।

2080. दोनों पहियों को साथ-साथ चलना होता है यदि एक भी रुक गया तो दोनों को रुकना होगा।

2081. श्रावक धर्म में कमी आने से श्रमण, साधु धर्म में भी कमी आ जावेगी। श्रावक आज अपना कर्त्तव्य भूलता जा रहा है।

2082. श्रावक और साधु के तालमेल बिना धर्म नहीं चल सकता।

2083. श्रावक को कमजोर नहीं समझना चाहिए, वह एक का नहीं बहुतों का निर्वाह करता है।

2084. समाज के साथ भी चलता है धर्म संस्कार भी पालता है एवं हमेशा-हमेशा मुनि बनने के भाव बनाये रखता है।

2085. श्रावक को यदि जीवन में सात्त्विकता रखनी है दया का पालन करना है तो उसे पशुपालन करना चाहिए।

2086. जीवित धन नहीं रखोगे तो महान् हानि होगी।

2087. श्रावक का जीवन रागमय होता है लेकिन वह वीतराग का अनुरागी भी

अवश्य होता है। वीतरागता की ओर बढ़ने का भाव हमेशा बनाये रखता है।

2088. श्रावक को भी दया का पालन करना चाहिए। जब तक दया धर्म है तभी तक सब कुछ है।

2089. त्रैकालिक सावधानी रखने की वृत्ति श्रावक में होना चाहिए।

2090. श्रावकों को पानी विधिवत् छानना, जिवाणी डालना जिनवाणी का सार है।

2091. श्रावकों में से ही ये अकलंक, जिनसेन जैसे रत्न आये थे घुंटी में ही ये संस्कार पिलाये जाते हैं प्राण जावे पर प्रण न जावे ऐसे संस्कार डाले जाते हैं।

2092. गृहस्थ/श्रावक को हर क्षण कर्म बंध इसलिए होता रहता है क्योंकि उसका इन्द्रिय और मन का संयम नहीं रहता। संकल्प के अभाव में तत्सम्बन्धी बंध होता ही रहता है।

स

समता/समाधि

2093. समाधि का अर्थ मन, वचन एवं काय से ऊपर उठना होता है। समाधि का अर्थ है समतामय जीवन।

2094. मान को छोड़ना अनिवार्य होता है तभी समाधि प्राप्त होती है।

2095. जानते हुए भी प्रतिकार का भाव न आना ही समता है, कायरता का नाम समता नहीं है।

2096. मोक्षमार्ग में सबसे अच्छी औषधि समता ही है।

2097. जीवन के सुरक्षा कवच का नाम समता है।

2098. समता के अभाव में जीवन भारमय/दुःखमय प्रतीत होता है।

2099. सुहावने, असुहावने दोनों प्रकार के शब्दों को सुनकर समता रखना नाम सामायिक कहलाती है और हमेशा समता रखना काल सामायिक है।

2100. साधक निर्विकल्प समाधि के द्वारा अंतर्मुहुर्त में काय, विषयों एवं कर्म इन तीनों को घातता है।

2101. षट्रसों से परहेज रखना लेकिन आत्मा का रस, समता रस खूब लो रात दिन इसमें कोई परहेज नहीं।

2102. कम परिश्रम में ज्यादा लाभ समता से ही होता है।

2103. समता जहाँ पर आ गयी वहीं धर्म-ध्यान है।

2104. सल्लेखना में कर्म की उदीरणा नहीं हो सकती क्योंकि यह बुद्धिपूर्वक होती है।

2105. समता के साथ मरण करने पर मनुष्यायु का भी बंध हो सकता है, लेकिन

अभी इस पंचमकाल में मनुष्य से मनुष्य होगा तो मिथ्यात्व के साथ होगा।

2106. जन्म-मरण, सुख-दुःख, निंदा-प्रशंसा, योग-वियोग एवं वन-भवन में समता रखने वाला ही सच्चा साधु माना जाता है।

2107. समता साधु की सबसे बड़ी पूँजी है।

2108. समता स्वभाव है, मूलगुण है, इसलिए साधुओं को हमेशा समतामय बने रहना चाहिए। समता भाव रखो! यह एक ऐसी औषधि है जो स्वयं एवं दूसरों को भी प्रभावित करती है, किसी चीज का प्रतिकार मत करो, इसे ही उपेक्षा संयम कहते हैं।

2109. यह सब अच्छा-बुरा मेरे कर्मों के उदय से हो रहा है। ऐसा सोचता हुआ जो समता रखता है वह वीर कहलाता है, इसमें बहुत आमदनी होती है, कर्मोदय को हटाया नहीं जा सकता, उसको समता से सहन करके निर्जरित किया जा सकता है।

सम्यग्दर्शन

2110. पार्श्वनाथ भगवान् को केवलज्ञान की उत्पत्ति होना उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है, जितना कि कमठ के जीव को सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होना महत्त्वपूर्ण है। हमेशा अनुभव तर्क से पृथक् रहता है, अनुभव होते ही तर्क समाप्त हो जाता है।

2111. गृहस्थों का सम्यग्दर्शन उस गन्ने की तरह है, जिससे चारित्र रूपी गुड़ नहीं बनता।

2112. केवली का सम्यग्दर्शन प्रत्यक्ष पदार्थ को जानकर परमावगाढ़ सम्यग्दर्शन होता है, यह मन के द्वारा नहीं होता है, इसे केवलसम्यक्त्व भी कहते हैं, यहाँ पर सम्यग्दर्शन को अनुभूति प्राप्त हो जाती है।

2113. सम्यग्दर्शन के बिना ज्ञान, तपादि गधे पर चंदन के भार के समान है।

2114. सम्यग्दर्शन अनिवार्य प्रश्न है, इसे हल किए बिना व्रत, तप आदि प्रश्न हल कर भी दो तो मोक्षमार्ग में फेल ही माने जाओगे।

2115. आज ऐसे नशीले पदार्थों का सेवन किया जा रहा है, जिनके सेवन से सम्यग्दर्शन रूपी सम्पदा लुट जाती है, वात्सल्य, दया जैसे सद्गुण नष्ट हो जाते हैं, इन कुसंस्कारों से समाज को बचाना होगा।

2116. सम्यग्दृष्टि दूसरे के दुःख का वैरी रहता है, वह दूसरे के दुःख को दूर करने का भरसक प्रयास करता है।

2117. सम्यग्दर्शन के बिना मोक्षमार्ग में किया गया कार्य कुछ भी सुख नहीं दे सकता।

2118. अविरत सम्यग्दृष्टि जीव स्वयं के प्राणों की रक्षा तो कर लेता है, लेकिन दूसरे प्राणियों की रक्षा का संकल्प नहीं ले पाता, उसके प्राणी संयम नहीं पलता।

2119. हमारा जितना श्रद्धान आत्म स्वरूप की ओर दृढ़ होता है उतनी ही अधिक कर्म की निर्जरा होती है।

2120. ज्ञान का मद हो सकता है, पर सम्यग्दर्शन मद रहित ही होता है।

2121. सम्यग्दर्शन रूपी बीज का उपयोग करो यही स्वदेशी है, बाकी सब विदेशी बीज हैं।

2122. पुण्यवान् व्यक्ति ही सम्यग्दर्शन की सेवा करता है।

2123. जो संसार विच्छेद का प्रथम कारण है, ऐसे सम्यग्दर्शन का हमेशा गुणगान करना चाहिए।

2124. विश्वास को जब तक अनुभूति प्राप्त नहीं होती तो नीरस जैसा लगता है।

2125. ये अभिषेक पूजनादि क्रियायें सम्यग्दर्शन के कारण हैं ये पूजनादि सम्यक्त्ववर्धिनी क्रियाएँ हैं। सम्यग्दर्शन में प्रथम हैं।

2126. निष्क्रिय सम्यग्दर्शन नहीं, सक्रिय सम्यग्दर्शन बने जो दूसरों के प्रति अनुकम्पा रखे। करुणा, दया, वात्सल्य के साथ ही सक्रिय सम्यग्दर्शन होता है।

2127. जीवित जीवन वही है, जिसमें अनुकम्पा सहित सम्यग्दर्शन होता है।

2128. अपने ऊपर दया करते हुए संसार के ऊपर भी दया करनी चाहिए।

2129. सम्यग्दर्शन की मणिका को शुद्ध करना चाहते हो तो अजीव तत्त्व को (नोट को) खर्च करके, दान करके जीवतत्त्व की रक्षा करो, पशुओं का संरक्षण करो।

2130. गाढ़ श्रद्धान होने पर दया का स्रोत खुल जाता है।

2131. सम्यग्दर्शन जीवन का एक सहारा बन जाता है। सम्यग्दर्शन जीव को स्वस्थ्य बना देता है।

2132. दूसरे को सम्यग्दृष्टि बनाने का भाव तो रखो पर ऐनकेनप्रकारेण सम्यग्दृष्टि बनाने का भाव छोड़ दो क्योंकि चिकित्सा समझदारी से की जाती है।

2133. सम्यग्दर्शन एक ऐसी औषधि है, इसे प्राप्त करने के उपरान्त लड़ाई-झगड़े समाप्त हो जाते हैं।

2134. ज्ञान, वैराग्य रूप शक्ति सम्यग्दृष्टि के पास रहती है, इन शक्तियों से ही वह बंधे हुए कर्मों की निर्जरा करता है।

2135. एक व्यक्ति अपने आप को एक अकेला समझ लेगा तो एकत्व की भावना

अपने आप आ जावेगी। फिर अज्ञान का टकराव समाप्त हो जावेगा। सम्यग्दृष्टि इसी को बोलते हैं। दुनियाँ को भूल जाओ कोई बात नहीं पर अपने स्वरूप को मत भूलना।

2136. सम्यग्दर्शन के गुणों में एक आस्तिक गुण है ''मैं भी हूँ'' ऐसा स्वीकारना।

2137. विवेक के साथ करुणा होती है, सही चिकित्सा करने वाले ही करुणावान् हैं, यही सही सम्यग्दर्शन है।

2138. क्षायिक सम्यग्दर्शन देवों को नहीं होगा भले ही वे केवली के पादमूल में चले जावें गुरु(केवली) के सान्निध्य में ही होता है, क्षायिक सम्यग्दर्शन।

2139. जीव सम्यग्दर्शन के साथ कहीं भी चला जावे हमेशा सुखी रहता है।

2140. जब ऐसा स्वरूप है भगवान् का तो हम भक्त को भी श्रद्धान कर लेना चाहिए कि हमारा स्वरूप भी यही है। फिर भविष्य के बारे में सीमा रेखा खिंच जाती है।

2141. सम्यग्दर्शन की काया तब टिकती है जब संवेग, अनुकम्पा, आस्तिक एवं प्रशम भाव रूप गुण रहते हैं। इन गुणों को साकार रूप देने से अमूर्त सम्यग्दर्शन भी मूर्तत्व धारण कर लेता है। दृष्टि को मजबूत (पूज्य) बनाने वाले पैर (आचरण) होते हैं।

2142. सम्यग्दृष्टि स्वार्थी नहीं परमार्थी होते हैं, वे परमार्थ की उपासना करने वाले होते हैं। मूर्त सम्यग्दर्शन आँखों से देखना चाहें तो उसे प्रयोग का रूप देना चाहिए, उपकार के भाव आना चाहिए। सम्यग्दृष्टि किसी की प्रतीक्षा नहीं करता वह स्वयं प्रयोग करने लगता है। अपना भी कर्त्तव्य कुछ वस्तु है, अविरत सम्यग्दृष्टि का भी कुछ कर्त्तव्य होता है।

2143. सम्यग्दृष्टि संयम की ओर दृष्टि रखता है। वह संसार में नहीं बल्कि संसार के किनारे पर रहता है।

2144. संसार से विरक्ति सम्यग्दृष्टि को ही आती है, सम्यग्दृष्टि मोह को जहर की भाँति समझता है।

2145. दृष्टि के सम्यक् होने पर मोहमार्गी मोक्षमार्गी बन जाता है।

2146. सम्यग्दर्शन अनगढ़ पत्थर है अविरत के साथ यदि उसे चारित्र रूपी शान पर चढ़ाते हैं तो गले का हार बन जाता है, वह केवलसम्यक्त्व में बदल जाता है।

2147. सम्यग्दर्शन इतना सरल नहीं है, उसके लिए लोभ का त्याग करना अनिवार्य है।

2148. आप सम्यग्दर्शन के साथ पैदा होते तो विदेह में जन्म होता। यदि वहाँ सम्यग्दर्शन के साथ जन्म होता है तो वह संयमासंयम व संयम लेगा ही यह

नियम है।

2149. आत्मतत्त्व पर श्रद्धान होते ही आत्म संतुष्टि प्राप्त हो जाती है।

2150. जिसका श्रद्धान मजबूत होता है वही दया को मजबूत रखता है और सिद्धान्त को भी मजबूत रखता है वरन् यह समयसार को पढ़कर कह देगा यह तो परघात नाम कर्म के उदय से दूसरे का घात हो रहा है, मैं क्या कर सकता हूँ ?

2151. सम्यग्दृष्टि विषयों से राग नहीं रखता क्योंकि विषयों में आत्मा के कोई गुण नहीं होते और उनसे आत्मा के गुणों की पुष्टि भी नहीं होती।

2152. जो पदार्थ जिस रूप में है, उसे उसी रूप में स्वीकारना सम्यग्दर्शन है।

2153. सम्यग्दृष्टि अपने भावों के माध्यम से ही श्रद्धान करता है, सात तत्त्व और देव, शास्त्र एवं गुरु(परद्रव्य) निमित्त मात्र हैं।

2154. सम्यग्दर्शन तभी जीवित रह सकता है, जब अनुकंपा जीवन में उतर गयी हो। सम्यग्दृष्टि को दूसरों के कष्ट को देखकर कष्ट दूर करने के भाव उमड़ आते हैं।

2155. पेड़ में ऊपरी अस्थिरता भले हो लेकिन जड़ में कोई अस्थिरता नहीं होती तभी वह अडिग खड़ा रहता है।

2156. जब गुणीजनों को देख कर प्रमोद भाव हो जावे, दुखियों को देखकर करुणा भाव आ जावे और सभी के अस्तित्त्व पर विश्वास हो जावे तो समझना हमें सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हो गयी है।

संसार

2157. संसारी प्राणी संयोग के कारण दुःख उठाते हैं, संसार में सभी संयोग दुःख के ही कारण हैं।

2158. गरीब-अमीर सभी को वही कफन, वही अर्थी, वही श्मशान घाट मिलेगा, यह सृष्टि का अटल नियम है।

2159. संसार के सुख नमक युक्त खारे जल के समान हैं, जिससे कभी प्यास शांत नहीं होती, बल्कि गला और सूखता है, संसार में मीठा पानी है ही नहीं, इसलिए तृप्ति संभव ही नहीं है।

2160. संसार स्वभाव से परिचित होकर उससे दूर रहने वाले मनुष्य दुर्लभ हैं।

2161. संसार-सागर में जन्म, जरा व मृत्यु रूपी लहरें उठती रहती हैं, इसमें मोह का मगरमच्छ मुख फाड़े खड़ा रहता है, इसलिए साधुजन सागर में न रहकर सागर के तट पर रहते हैं।

2162. यह संसारी प्राणी वास (दुर्गंध) आने वाले शरीर में बसा है।

2163. यह संसारी जीव इस शरीर के कारण दुःख उठाता है, वेदना का रस पीता है, फिर भी इसी को पुनः चाहता है।

2164. संसारी प्राणियों को सुख मिलना अंधे के हाथ बटेर के समान है, अर्थात् कठिन है, असंभव है।

संयोग

2165. संयोग एक बड़ी बीमारी है, इससे बचो वरन् निरोगी नहीं हो सकते।

2166. संयोग दुःख का कारण है।

संगति

2167. जिनके साथ रहने से पाप कम हो उनकी संगति करो।

2168. जीवन के रहस्यों को खोलने के लिए संत समागम अनिवार्य है।

2169. संतों का समागम बूँद का सीप से संयोग है, वह बूँद समागम से मोती बन जाती है।

2170. तीन लोक के आभूषण संत समागम की देन है।

2171. पंचमकाल में तीर्थक्षेत्रों और संतों के चरणों में जाकर धर्मध्यान कर लेना चाहिए वरन् पंचेन्द्रियों के विषय छूट ही नहीं सकते।

2172. साधु संगति करने से साधु बनने के भाव जागृत होते हैं।

2173. हम वीतरागी के पास जाकर यह सीख सकते हैं कि राग कैसे छोड़ा जाता है ?

सदुपयोग

2174. साधन सामग्री मिलने पर भी उसका सदुपयोग करना बहुत कठिन है।

2175. धार्मिक क्षेत्र में इस शरीर का जितना चाहो उतना उपयोग करो यही इसका सदुपयोग है।

संकल्प-विकल्प

2176. आप अपने आप को संकल्प-विकल्पों से जितना बचाये रखोगे उतनी ही शांति मिलेगी।

2177. विकल्प रूपी पेट्रोल समाप्त हो जाता है तो रागद्वेष की गाड़ी चलना बंद हो जाती है।

2178. जो निश्चित है उस पर विश्वास न होने से संकल्प-विकल्प रूप मानसिक दुःख होता है।

2179. निश्चित को मानने से जीवन में संतोष आ जाता है, जैसे मृत्यु निश्चित है तो

सोचता है ज्यादा क्या करना इतने में ही जीवन चल जाएगा, संतोष प्राप्त कर लेता है।

2180. संकल्प-विकल्प पर द्रव्य को लेकर ही हुआ करते हैं।

2181. संकल्प-विकल्प संसार के ही कारण हैं, इनसे कर्म बंध होता है और कर्म बंध से संसार बढ़ता है।

2182. सभी विकल्पों का कारण शरीर ही है।

2183. संकल्प-विकल्प रूपी जाल संसारी प्राणी बुनता रहता है, परिणाम स्वरूप कभी खट्टा और कभी मीठा फल भोगते हुये संसार में भटकता रहता है।

2184. निज शुद्धात्मा ही मुक्ति का कारण है, इसके लिए संसार के सारे संकल्प-विकल्प छोड़नें पड़ते हैं, आज छोड़ो या कल या कभी भी सारे विकल्पों को छोड़े बिना मुक्ति संभव नहीं है।

संस्कार

2185. विषय मात्र तात्कालिक ही होते हैं, लेकिन धार्मिक संस्कार तात्कालिक और त्रैकालिक सुख देने वाले होते हैं।

2186. आज के युग में अण्डे को शाकाहार और दूध को माँसाहार घोषित किया जा रहा है, इसलिए कहना पड़ रहा है कि देश में धार्मिक संस्कारों की अत्यन्त आवश्यकता है।

2187. संस्कार बचाये रखना चाहते हो तो बच्चों का निर्यात बंद कर दो उन्हें विदेश भेजना बंद कर दो, अंतर्राष्ट्रीय की जगह आत्मजगत् की ओर बढ़ो।

2188. नगर के पास एक धार्मिक स्थल अवश्य होना चाहिए, नसिया आदि, ताकि वहाँ जाकर ध्यान, चितंन किया जा सके, आज ऐसा स्थान न होने से युवा वर्ग कश्मीर आदि जाने लगे हैं, इसलिए धार्मिक संस्कार समाप्त होते जा रहे हैं।

2189. जीवन में ऐसे संस्कार डालो ताकि रत्नत्रय मावा के रूप में रहा आवे और शरीर व कषाय रूपी पानी समाधि की अग्नि में आहूत हो जावे।

2190. जीवन के वर्गीकरण के अभाव में आज संस्कार एवं संस्कृति का अभाव होता चला जा रहा है।

2191. बच्चों को दान धर्म की बातें सिखाओ। करुणा, दया, परोपकार के संस्कार डालो, तभी संस्कृति सुरक्षित रह सकेगी।

2192. इस बुन्देलखण्ड में अद्वितीय सम्पदा देखने को मिली है वह यह है कि यहाँ की जनता में देव-शास्त्र व गुरु के प्रति अटूट श्रद्धा है।

2193. जीवन का मूल्यांकन धन, वैभव से न करके वस्तुतः उच्च विचारों, संस्कारों

के माध्यम से किया जाता है।

2194. यह सब संस्कार का ही प्रभाव है कि विषयों के बीच में रहकर भी उन्हें बिना ग्रहण किए संतुष्ट है।

2195. पहले के लोगों के भाव/संस्कार उज्वल थे, उन्हीं से आज धर्म टिका हुआ है।

2196. वही व्यक्ति धर्म की बात कर सकता है, जिसके जीवन में सात्त्विकता आ जाती है।

2197. आज के संस्कार उच्छृंखल बनाने वाले हैं, आध्यात्मिक विकास को रोकने वाले हैं।

2198. आज साहित्य का सृजन अच्छा इसलिए नहीं हो रहा है क्योंकि आज विषयों की चिन्ता में लगे मानव को चिन्तन के लिए समय ही नहीं है।

2199. आज जीवन का स्तर जमीन में घुस गया है, अब उसे और नीचे मत ले जाओ।

2200. आगे के गुण तभी रह सकते हैं जबकि पीछे के गुण पहले से ही विद्यमान हों।

2201. पेड़ की जड़ें कभी अंकुर की तरह ऊपर नहीं आती, जैसे ही अंकुर होता है वैसे ही जड़ें पाताल की ओर चली जाती हैं इसी प्रकार आदर्श के अंकुर के साथ जड़ें भी पाताल (इतिहास) से संबंधित होना चाहिए।

2202. पूर्व संस्कार के साथ चलोगे तो उपदेश का कोई प्रभाव पड़ेगा नहीं।

2203. संसारी प्राणी के ऊपर मोह के अलावा कोई संस्कार नहीं पड़े।

2204. संस्कार के अभाव में करोड़पतिपना निरर्थक है।

2205. विदेश की अच्छाई को अपनाइये विदेश नीति को मत अपनाइये।

2206. देश विषयों का गुलाम होता जा रहा है, स्वाभिमान गायब होता चला जा रहा है। अर्थनीति फेल हो जाती है लेकिन परमार्थ नीति फेल नहीं होती इसका ध्यान रखें।

2207. सात्त्विक जीवन रखने से सात्विकता आती है एवं प्रतिभा का विकास होता है।

2208. प्रतिभा तो अंदर रहती है संस्कारों के माध्यम से बाहर आती है।

2209. व्यसनों से शारीरिक स्वास्थ्य की हानि, धर्म की हानि, अर्थ की हानि होती है, इसलिए व्यसनों से बचना चाहिए।

2210. जीवन में उन्नति चाहते हो तो अपने खान-पान को, वाणी को व अपने व्यवहार को पवित्र बनाइये।

2211. इस बहुमूल्य समय का उपयोग सदाचरण के पालन करने में कीजिए।

2212. जब हम संस्कार पवित्र रखेंगे तभी महावीर जैसी आत्मायें हमारे घर में जन्म

लेंगी।

2213. गर्भवती होने पर सीता तीर्थयात्रा पर जाती थी तभी उनके बच्चे संस्कारवान बने अपने पिता को भी हरा दिया। आप विदेशी संस्कार डालकर बच्चे का उद्धार करना चाहते हैं, यह सम्भव नहीं है।

2214. आप अपने बच्चों की केवल अर्थव्यवस्था को लेकर पढ़ाई कराते हैं परमार्थ के बारे में नहीं सोचते।

2215. आत्मा की बात सुनने के लिए पूर्व में कुछ संस्कार डालना भी अनिवार्य होते हैं।

2216. इंजेक्शन लगाते समय उस स्थान को स्प्रिट से साफ करना पड़ता है, ये पूर्व संस्कार अनिवार्य हैं; विज्ञान भी इसे स्वीकारता है।

2217. देशना लब्धि (जिनवाणी सुनने) की पात्रता उसी में है, जो भक्ष्याभक्ष्य का विवेक रखता है। सम्यग्दर्शन की भूमिका उसी में आती है, योग्यता आती है, जो व्यसन मुक्त हो। तीर्थङ्करों के जीवन के संस्कारों को जब तक हम अपने जीवन में नहीं उतारेंगे तब तक हमारा उनसे सम्बन्ध नहीं जुड़ सकता।

2218. शिक्षण और संस्कार में बहुत अंतर होता है, संस्कारवान् ही जानता है कौन-सा पौधा अनाज का है कौन-सा घास का ?

2219. अपनी संतान धर्म में समर्पित होकर जीवनयापन करें, ऐसे संस्कार डालते जाओ।

2220. संस्कार इत्र के समान होने चाहिए, उन्हें बताना न पड़े अपने आप लोगों को उसकी महक आ जावे। यदि संतान लोक-कल्याण का मार्ग अपनाती हैं तो उनके माता-पिता को भी बहुत कुछ प्राप्त हो जाता है। जो संस्कार हमें पूर्वजों से मिले हैं, वे आगे की पीढ़ी को सिखाते जाओ वरन् पीढ़ी भटक जावेगी।

2221. आज की समस्याओं का समाधान संस्कार से ही सम्भव है।

2222. संस्कार के अभाव में जीवन की कीमत कोड़ी की ही रहेगी।

2223. बचपन के संस्कार वृक्ष की जड़ के समान हैं, यदि जड़ में कीड़ा लगा हो तो पौधे की वृद्धि नहीं हो सकती उसी प्रकार कुसंस्कार के कारण बालक के जीवन का विकास नहीं हो सकता।

साधना

2224. आज तक हमने साधना, शरीर-सुख के लिए की है इसलिए सही सुख नहीं मिल पाया। यदि आत्म सुख के लिए साधना की होती, तो अभी तक शाश्वत् सुख की प्राप्ति हो गई होती।

2225. चारित्र का पक्ष मजबूत रहेगा तो धर्म का झंडा लहराता रहेगा। चारित्र का पक्ष उठ गया तो झंडा उड़ जावेगा मात्र डंडा हाथ में रह जावेगा।

2226. चारित्रमय जीवन है तो हमारा जीवन है नहीं तो नहीं।

2227. साधु चारित्र की ध्वजा हैं, उनको हम नमस्कार करते हैं, वे हमारी रक्षा करें।

2228. साधु की चर्या पालना बहुत बड़ी साधना मानी जाती है इसी के बल पर सिद्ध बनते हैं।

2229. साधु वही है जो मात्र अपनी आत्मा की साधना से मतलब रखता है।

2230. साधना प्रखर होने से विश्वास कम होते हुए भी बड़े-बड़े कार्य हो जाते हैं।

2231. विश्वास के साथ-साथ साधना भी आवश्यक होती है तभी लक्ष्य तक पहुँचते हैं। निरालम्ब रहने का आनंद अलग ही होता है।

2232. यदि हमारी कषाय में परिणति जाती है तो हमारी साधना शुरु ही नहीं हुई क्योंकि कषाय के अभाव के माध्यम से ही ज्ञात होता है हमारा समर्पण कितना है ?

2233. आचरण से चरण तो क्या चरण धूल भी पूज्य बन जाती है और मरण भी पूज्य हो जाता है।

2234. साधना को आदर्श बनाया जाता है, व्यक्ति को नहीं।

2235. सही दिशा में की गयी तप साधना से मोक्ष प्राप्त होता है और जब तक मुक्ति नहीं मिलती तब तक अच्छे-अच्छे पद प्राप्त होते रहते हैं।

2236. मन को साध लेना ही साधना है।

2237. नाम साधना का अर्थ होता है एक पद को लेकर ध्यान करना, यह पदस्थ ध्यान है।

2238. आत्मा की बात करने का अर्थ आत्मा के ऊपर लगी हुई कालिमा को साधना के माध्यम से अलग करना है।

2239. अभी साधना करने से आगे और स्वस्थ शरीर एवं दीर्घ संहनन प्राप्त होते हैं, जिससे अच्छी साधना एवं प्रभावना की जा सकती है।

2240. मोक्षमार्ग की साधना चार प्रत्ययों में पूर्ण होती है, अज्ञान निवृत्ति, पाप, विषय-त्याग, आदान (व्रत ग्रहण) एवं उपेक्षा (विकल्पों की शून्यता)।

2241. आज यदि बड़ी साधना नहीं कर सकते तो कोई बात नहीं, पर कषायों को तो कम किया जा सकता है। इसमें काया की शक्ति नहीं बल्कि आत्मा की रुचि काम करती है।

2242. शत्रु-मित्र से रहित भाव प्रणाली बनाये रखना बहुत बड़ी साधना है।

2243. समता की आरती उतारो, एक क्षण में असंख्यात गुणी कर्म की निर्जरा होती है।

2244. ज्ञेय से उपयोग प्रभावित न हो यह मूल साधना मानी जाती है।

2245. ज्ञेय से जब हम भिन्न है तो हर्ष-विषाद क्यों करना ? ज्ञेय से प्रभावित न होना प्रौढ़ साधना मानी जाती है।

2246. समीचीन दृष्टि में जीना सबसे बड़ी साधना है क्योंकि दृष्टि को संतुलित रखने पर जीवन संयत बन जाता है।

2247. जो मन, वचन एवं काय तीनों योगों को साधता है उसके उपयोग में स्थिरता आ जाती है, उपयोग शुद्ध हो जाता है।

2248. हमें इस काया के अधीन नहीं होना चाहिए बाहुबली भगवान् की साधना की ओर दृष्टि रखो आत्मा के स्वरूप का अवलोकन करने से ही साधना सार्थक होगी।

2249. मोक्षमार्ग में परीषह औषधि है कर्म रूपी रोग को निकालने के लिए।

2250. अपने परिणाम को मजबूत, संयत बनाने से ही हम मोक्षमार्ग पर अडिग रह सकते हैं।

2251. अब मोह की कथा समाप्त करो, मोक्ष की कथा प्रारम्भ हो रही है, इसी का नाम साधना है।

2252. तैरना तो सभी को आता है पर डूबों तो जाने, डुबकी लगाओ रत्न पाओ तो जाने कुछ साधना हुई।

2253. ज्ञान की अपेक्षा आत्मसाधना को प्रौढ़ता देनी चाहिए।

2254. तन, मन एवं धन का सदुपयोग करना ही पंचमकाल की मनुष्य पर्याय में बड़ी साधना है।

2255. जो दृष्टि पदार्थ को गौण करके (उससे टकराये बिना) पार कर जाती है, वही दृष्टि सही दृष्टि मानी जाती है।

2256. यदि कर्म के उदय, उदीरणा में अपने उपयोग को उसी रंग में रंगा दिया तो आपकी साधना कमजोर मानी जाती है।

2257. तात्विक दृष्टि गुप्ति की ओर ले जाती है।

2258. सूक्ष्म साधना से यह ज्ञात हो जाता है कि हमें दूसरों की कमजोरी न देखकर स्वयं की कमजोरी देखना चाहिए। क्योंकि छद्मस्थावस्था में उपयोग की कमजोरी बनी ही रहती है।

2259. आलम्बन से ही आज तक जीवन चलता आया है, अब निरालम्ब होकर जीना सीखो। तुम्बी की सहायता से तैराक हमेशा नहीं तैरता, तैरना सीख

जाता है तो फिर तुम्बी का सहारा लिए बिना ही तैर जाता है।

2260. पहले किये गये स्वाध्याय का प्रयोग करना चाहिए फिर पुनः स्वाध्याय करना चाहिए। लेकिन जब प्रयोग होने लगेगा तो स्वाध्याय की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। अभ्यास की दशा में स्वयं प्रमाण हो जाता है फिर प्रमाण ढूंढने की आवश्यकता नहीं पड़ती शास्त्र खोलने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

2261. जैसे सज्जन दुर्जनों से दूर रहते हैं, वैसे ही साधु को शरीर से ज्यादा लगाव नहीं रखना चाहिए, इससे धर्म साधना करना ही सही मोह करना है।

2262. यह शरीर जब तक धर्म साधन में उपकार करता है, तब तक उपकरण है, जब उपकार करना बंद कर दे तब इसे वेतन (भोजन) देना बंद कर देना चाहिए, वरन् वह परिग्रह हो जायेगा।

2263. साधना के अलावा यदि साधक शरीर का उपयोग अन्य कार्यों में लेते हैं तो वह शरीर परिग्रह में आवेगा।

2264. पर का आलम्बन लेने से आत्म साधना कमजोर मानी जाती है।

2265. यदि भीतरी साधना जीवित है तो अभिशाप भी वरदान बन जाता है।

2266. मनुष्य पर्याय एक वरदान है, यदि इस शरीर से साधना नहीं की तो यह वरदान भी अभिशाप सिद्ध होगा।

2267. शरीर के प्रति निरीहता साधु की बहुत बड़ी साधना मानी जाती है।

2268. जिसका बाहरी वस्तुओं एवं शरीर के प्रति ममत्व नहीं है, वही कायोत्सर्ग कर सकता है।

सामायिक

2269. सामायिक में शरीर का चिंतन करें कि यह अशरण है, अशुचि है, अनित्य है, दुःखमय है, संसार रूप है और आत्मा इससे विपरीत है।

2270. सामायिक में मन, वचन व काय से किसी भी प्रकार से प्रतिकार नहीं किया जाता।

2271. रागद्वेष से रहित होना सामायिक चारित्र है।

2272. आर्त्त-रौद्रध्यान काई के समान है, उसे हटाओ और धर्मध्यान रूप स्वच्छ जल का पान करो, इसी का नाम सामायिक चारित्र है।

2273. अशुभ विकल्पों के त्याग रूप जो समाधि (ध्यान) है, ऐसा है लक्षण जिसका वह सामायिक है।

2274. सुख-दुःख रूप कर्मों का उदय अपने पूर्वकृत् इतिहास के आधार पर आते हैं, उन्हें समता से सहन करना उनसे माध्यस्थ्य होना ही सामायिक चारित्र है।

सिद्धान्त

2275. सिद्धान्त अपना नहीं होता अपने लिए होता है या यूँ कहो सिद्धान्त अपना नहीं होता अपने द्वारा अपनाया जाता है।

2276. सिद्धान्त का हनन नहीं होना चाहिए भले ही उसके तौर-तरीके बदल जावें।

2277. राग-द्वेष, प्रतिकूलता/अनुकूलता को एक समझे बिना कर्म सिद्धान्त समझ में नहीं आ सकता।

2278. स्वभाव के लिए तर्क नहीं होता, यह सिद्धान्त अटल है।

2279. सिद्धान्त के साथ समझौता नहीं होता।

2280. सिद्धान्त को कभी भूलना नहीं चाहिए यदि प्रयोग में गड़बड़ी आ जावे तो सुधार लेना चाहिए।

2281. ईश्वर और ईश्वर के बारे में उनके सिद्धान्तों के बारे में जानना ही आस्तिकता है।

सुख

2282. जब तपस्वी स्वाधीन हो जाते हैं, तब वे सुखी हो जाते हैं।

2283. सुख-दुःख दोनों अनुकूल नहीं हैं, जैसे शोर-सूतक दोनों धर्म में बाधक हैं, अनुकूल नहीं हैं।

2284. जो सुख चाहता है वह धर्म का आचरण करता है।

2285. डॉक्टर घृणास्पद शरीर में बैठा है, पूरा ऑपरेशन करके देख लेता है, फिर भी उसे वैराग्य नहीं होता, क्योंकि उन्हें पैसा ही दिखता है।

2286. आर्त्तरौद्रध्यान का कारणभूत जो शरीर है, उससे ममत्व हटाने से कष्ट, कष्ट-सा नहीं लगता।

2287. सभी पदार्थ सत् होते हैं, जीव सत् के साथ चित् रूप होता है, लेकिन सभी जीव आनंद रूप नहीं होते हैं, सिद्ध भगवान् ही सत्चिदानंद रूप होते हैं, अभी हम मात्र सत्चित् रूप है।

2288. स्वभाव वाले सभी जीव हैं पर आनंद स्वरूप मात्र सिद्ध जीव हैं।

2289. सत्चित् वैभाविक है और सत्चिदानंद स्वाभाविक है।

सेवा

2290. सेवा के माध्यम से हम आपस के सुख-दुःख समझ सकते हैं।

2291. अचेतन द्रव्य (धन) को जनसेवा में लगाना चाहिए।

2292. सेवा के समय यदि ख्याति, लाभ नाम बड़ाई की बात आ जाती है तो सब

किरकिरा हो जाता है। कषाय अभिमान के साथ नहीं बल्कि निष्ठा के साथ दान दें।

2293. दूसरे के दुःख को दूर करने के भाव करते हैं तो यह अपायविचय धर्म ध्यान है।

2294. परमार्थ के अभाव में अर्थ का कोई मूल्य नहीं।

2295. पार्थिव जीवन के साथ-साथ पारमार्थिक जीवन भी जीना चाहिए।

सल्लेखना

2296. सल्लेखना दो प्रकार ही होती है-काय और कषाय सल्लेखना। सर्प की काँचली छोड़ना काय सल्लेखना व अंदर का जहर छोड़ना कषाय सल्लेखना है, अर्थात् शरीर काँचली की भाँति और कषाय जहर की भाँति है।

2297. अविनश्वर जीवन की प्राप्ति मृत्यु महोत्सव मनाने से होती है। तीर्थङ्कर, चक्रवर्ती, बलभद्र आदि इस दिगम्बर मुद्रा को स्वीकारते हैं।

2298. इस शरीर को जेल ही मानो यह बंधन और दुःख का ही कारण है, जैसे बच्चे पुराने कपड़े को छोड़ने के लिए तैयार रहते है, वैसे ही साधक को शरीर का त्याग करने के लिए सल्लेखना के लिए तैयार रहना चाहिए वह क्षण तो एक न एक दिन जीवन में आयेगा ही।

2299. यदि घर में आग लग गई हो तो, आग बुझाने का प्रयास करो, यदि बुझाने में सफल न हो तो स्वयं को बचा लेना चाहिए, ठीक वैसे ही शरीर में रोग हो गया हो तो उपचार करो और यदि रोग का प्रतिकार न हो सके तो धर्म को बचा लो, सल्लेखना के माध्यम से शरीर का त्याग कर दो।

2300. मृत शरीर में हर क्षण असंख्यात-असंख्यात जीवों की उत्पत्ति बढ़ती जाती है, इसलिए उसे ज्यादा देर तक रखना ठीक नहीं है।

2301. इस मनुष्य गति में मिला शरीर और आयु का उपयोग कीजिये ताकि वह अंत में समाधि के साथ समाप्त हो।

2302. प्रशमभाव, वैराग्य भाव के साथ क्षण निकालो, तभी समाधि के समय समता आ सकती है।

2303. सल्लेखना के समय तक क्षपक (जो सल्लेखना ले रहे हैं) को मृदु शब्दों से संभाला जाता है।

2304. एक बार भी यदि इस जीव ने विधिपूर्वक समाधिमरण कर लिया तो उत्कृष्ट से दो-तीन भव में और जघन्य से सात-आठ भव में मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

2305. सल्लेखना से डरने वालों को याद रखना चाहिए कि यह शरीर एक न एक

दिन अवश्य छूटेगा।

2306. धर्मनिष्ठ गृहस्थ श्रावक भी अंत समय में कह देते हैं अपने घर के सदस्यों से कि यदि मुझे होश न रहे तो मुख में कुछ भी मत डालना, अस्पताल भी मत ले जाना, उसकी सही सल्लेखना हो जाती है।

2307. जैसे विद्यार्थी परीक्षा की प्रतीक्षा व तैयारी करता है, वैसे ही साधक को पहले से ही सल्लेखना की तैयारी करना चाहिए, जैसे ही असंतुलित गाड़ी हो, वैसे ही ब्रेक लगाना प्रारम्भ कर देना चाहिए।

2308. साता की उदीरणा में भी निर्विकल्प समाधि में नहीं जाया जा सकता।

2309. जीवन के अंतिम समय में सभी को क्षमा करके, सभी से क्षमा माँगकर परिग्रह आदि त्याग कर कषाय को मंद करते हुए शरीर का त्याग करना चाहिए, यही श्रावक की सल्लेखना है।

2310. जब तन में हो व्याधि (रोग), मन में हो आधि और दिमाग में हो उपाधि तो कैसे हो सकती है समाधि ? क्योंकि आधि, व्याधि और उपाधि से रहित होती है समाधि।

2311. अंत समय मानसिक संतुलन ही सब कुछ है, समाधि में सफलता इसी से प्राप्त होती है।

2312. समाधि के समय क्रमबद्ध पर्याय नहीं चलती उस समय णमोकार मंत्र ही काम आता है।

2313. काय सल्लेखना कारण है और कषाय सल्लेखना कार्य है, उसका फल है।

ह

हृदय

2314. आँखें कान दो, दो हैं, हाथ पैर भी दो, दो हैं क्योंकि सम्बन्ध के लिए दो आवश्यक हैं। धर्म (राष्ट्र समाज) के लिए देखने सुनने से कुछ नहीं होता।

2315. हे प्रभु ! मैं प्रार्थना करता हूँ इन दो-दो अक्षर वाले अंग वालों को तीन अक्षर वाला अंग हृदय दे दो। किसी भी चीज में आनंद मात्र सुनने देखने से नहीं आता। हृदयंगम होने पर आता है। धर्म भी जब हृदयंगम होता है तभी उन्नति का कारण बनता है। हमने आज तक हृदय से कार्य नहीं किया, यदि हृदय से कार्य किया होता तो दर-दर नहीं भटकना पड़ता।

2316. जिसका हृदय टूट जाता है वही मनमाना कार्य करने लगता है।

2317. हृदय के अभाव में शरीर के सभी अंग कोई महत्त्व नहीं रखते। शव की भाँति इस भारत का हृदय नहीं है बाकी सब ठीक है। स्मृति मनोयोग के माध्यम से बनी रहती है।

2318. धर्म का हृदय अच्छाईयाँ हैं, हृदय के साथ श्वांस लीजिए।

2319. आज देश में स्वतंत्रता का हृदय से कोई उपयोग नहीं हो रहा है, इसलिए शांति नहीं मिल रही है।

2320. आचरण, नकल से नहीं हृदय के साथ विश्वास के साथ किया जाता है।

2321. हृदय शून्य क्या नहीं कर सकता ? हृदय शून्य वही है, जिसको अहिंसा पर आस्था नहीं है। हृदय में सत्य, अहिंसा के प्रति आस्था है तो राम, महावीर भगवान् से हमारा सम्बन्ध आज भी निश्चित रूप से है, इसमें संदेह नहीं करना चाहिए।

2322. हम भगवान् के सामने हाथ जोड़ते हैं अब हृदय जोड़ना चाहिए। हृदय कैसे जुड़ा है वह दिखाने से नहीं देखने से ज्ञात होता है।

2323. हृदय को मध्य कहा है वह दोनों छोर तक अपना सम्बन्ध रखता है।

2324. हृदय से सम्बन्ध होता है तो आँखों से आँसू आने लगते हैं।

2325. सौन्दर्य आँखों से दिखता है, पवित्रता मन से दिखती है।

2326. श्रुतकेवली के चरणों से साक्षात् सम्बन्ध हो जाता है तो दर्शनमोहनीय का दूरीकरण, क्षय हो जाता है। क्षायिक सम्यग्दर्शन प्राप्त हो जाता है।

2327. आँखों में पानी तभी आता है जब हृदय में कुछ पिंच (चुभे) हो। दूसरे का पत्थर-सा हृदय पिघला देते हो और खुद का मोम का है तो भी नहीं पिघलता।

2328. वस्तुतत्त्व को हम दिमाग से सोचते तो हैं पर दिल से, हृदय से उसे स्वीकार नहीं कर पाते।

ज्ञ

ज्ञान

2329. वह सबसे कमजोर ज्ञान माना जाता है जो प्रत्येक ज्ञेय से चिपक जाता है।

2330. ज्ञानी ज्ञेय को जानते हुए भी ज्ञेयरूप नहीं होता और ज्ञेय को अपनाता भी नहीं है।

2331. सीमा रेखा का उल्लंघन ज्ञेय नहीं ज्ञान करता है और सीमा रेखा का उल्लंघन करने वाला ज्ञान, ज्ञान नहीं अज्ञान माना जाता है।

2332. ज्ञेय हमेशा-हमेशा ज्ञेय बना रहता है और ज्ञायक, ज्ञायक बना रहता है,

वस्तु वही रहती है, बस हमारा उपयोग बदलता रहता है। दर्शक, दर्शक ही रहता है दृश्यमय नहीं होता।

2333. ज्ञेय तो ज्ञेय है, न हेय है, न उपादेय है बल्कि हमारा ज्ञान ही है जो ज्ञेय को हेय/उपादेय रूप स्वीकारता रहता है।

2334. ज्ञानी का स्वरूप यही है कि वह संसार कीचड़ में रहकर भी कीचड़पने को आत्मसात् नहीं करता।

2335. ज्ञान के माध्यम से तीन लोक की यात्रा एक क्षण में की जा सकती है लेकिन वर्तमान में ज्ञान पर मोह की छाया पड़ी हुई है उसे हटाते ही तीन लोक दर्पण की भाँति झलकने लगता है।

2336. ज्ञेय में ज्ञान अटकने से भटकने लगता है। अटका सो भटका।

2337. उस दृष्टि का बड़ा महत्त्व होता है जो ज्ञेय में नहीं अटकती-जैसे गेंद दीवार पर जाकर वापस लौट आती है बाण उसी में भिंदकर रह जाता है।

2338. जिस समय समझना चाहिए तभी समझ में आवे तो समझदार माना जाता है। सही ज्ञान का उपयोग यही है।

2339. ज्ञान का फल साक्षात् उपेक्षा है। उपेक्षा का अर्थ दूसरे का अनादर नहीं है बल्कि। उप निकट रूपेण ईक्षणम् उपेक्षा अर्थात् जिसके माध्यम से निकट से देखने की क्षमता आ जाती है, वह उपेक्षा है। दूसरे की उपेक्षा करने से दूसरे को कष्ट भी पहुँच सकता है।

2340. ये आठ कर्मों की शक्ति भी हमारी ज्ञान शक्ति को समाप्त नहीं कर सकती है यह स्वतंत्र सत्ता है।

2341. केवलज्ञान के सामने हमारा ज्ञान बच्चे के समान है।

2342. ज्ञान भी दान के रूप में प्रयुक्त होता है।

2343. ज्ञान को आत्मसात् करते जाओ, आचरण में ढालते जाओ तो प्रचार-प्रसार अपने आप होता चला जावेगा। ज्ञान को बढ़ाना नहीं है बल्कि मांजना है।

2344. ज्ञान जितना स्वाश्रित होगा उतना ही आकुलता का अभाव होता जावेगा। जितना योगों का स्पन्दन कम होगा, उतना ही हमारा ज्ञान स्वाश्रित होगा।

2345. अच्छे कार्य के लिए ज्ञान और क्रिया दोनों की मैत्री स्वीकारी है।

2346. ज्ञान प्रयोग करना नहीं सिखाता अंदर प्रयोग करने के भाव हों, तभी ज्ञान कार्यकारी होता है, वरन् ज्ञान खतरा पैदा करता है। ज्ञान शक्ति काम नहीं करती बल्कि काम में आती है।

2347. ज्ञान के माध्यम से यदि मात्र दूसरे को जानने का प्रयास करते हो तो वह ज्ञान

कुछ कार्यकारी नहीं है।

2348. कुछ लोग जम्प कम करते हैं जल्प (बातें) ज्यादा करते हैं।

2349. ज्यादा जानने की, ज्ञान करने की आवश्यकता नहीं है मात्र एकत्व को जानता है।

2350. ज्ञान, शिक्षण या पुरुषार्थ से प्राप्त नहीं होता बल्कि श्रद्धा और समर्पण से प्राप्त होता है।

2351. पहले दीक्षा काल कहा है फिर शिक्षा काल लेकिन आज पहले ही ज्ञान, प्रवचन से जीवन प्रारम्भ करते हैं जिसके परिणाम ठीक नहीं निकलते।

2352. इन्द्रभूति का ज्ञान बहुत लम्बा चौड़ा था लेकिन संयम के अभाव में सम्यक्त्वपना प्राप्त नहीं था।

2353. दीक्षा होते ही मनःपर्ययज्ञान हो गया यह ज्ञान कहाँ से उत्पन्न हो गया, संयम की कृपा से।

2354. ज्ञान को सम्यक्त्वपना शिक्षण से प्राप्त नहीं होता बल्कि आस्था एवं समर्पण से प्राप्त होता है।

2355. ज्ञान के माध्यम से मोह को हटाने का प्रयास नहीं करते तो विकल्प छूट नहीं सकते।

2356. जो प्राप्त ज्ञान से मोह का हनन करता है, वही मुमुक्षु माना जाता है।

2357. मोह जैसे ही पूर्ण समाप्त होता है, वैसे ही पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो जाता है। अंधकार हटते ही, बादल हटते ही पूर्ण प्रकाश प्राप्त हो जाता है।

2358. मात्र ज्ञान को नमोऽस्तु नहीं किया जाता, बल्कि रत्नत्रय से युक्त ज्ञान को नमोऽस्तु किया जाता है।

2359. आत्मा के स्वरूप का ज्ञान जिसे हो जाता है, वह आत्मा के स्वरूप को पाने में लग जाता है, आत्मोन्नति की ओर बढ़ जाता है।

2360. ज्ञान सविकल्प होता है, मोह सहित होता है तो संसार का ही कारण होता है।

2361. मोह के अंधेरे में न धर्म दिखता है और न ही मुनि दिखते हैं, मात्र स्वार्थ दिखता है। जैसे सिंहनी ने पूर्व के अपने ही पुत्र मुनि सुकौशल का भक्षण किया था।

2362. सम्यग्ज्ञान रूपी नेत्र के द्वारा ही हम अपने दोषों को दूर कर सकते हैं।

2363. मार्ग का ध्यान सम्यग्ज्ञान के द्वारा रखा जाता है। स्वर्ग जाने के बाद भी यह सम्यग्ज्ञान रखना विषयों में ज्यादा मत फंसाना।

2364. ज्ञान का क्षयोपशम नहीं है तो दीन-हीन मत होना और ज्ञान का क्षयोपशम है तो अभिमान भी मत करना।

2365. ज्ञानी जीव इन आरोहण, अवरोहण की दशाओं में अपने परिणामों को संतुलित बनाये रखते हैं।

2366. ज्ञानी जीव अपने आपको छोड़कर दूसरे की नुक्ताचीनी/आलोचना करने जाता ही नहीं, क्योंकि दूसरे की बुराई का उत्तर देने के लिए उसके पास समय ही नहीं रहता।

2367. ज्ञानी का स्वभाव जानने का होना चाहिए, स्व को, पर को, क्रोध को, व बंध को भी लेकिन इन सबका वेदन नहीं करना चाहिए, क्योंकि ज्ञानी कर्म के उदय को मात्र जानता है, उसका वेदन नहीं करता। क्योंकि ऐसा किए बिना नूतन कर्म बंध होना रुक नहीं सकता।

2368. ज्ञानी को वस्तु ज्ञेय मात्र रह जाती है वह उसे हेय, उपादेय मानकर ग्रहण नहीं करता।

2369. अतीत के साथ वर्तमान की तुलना करने से कहाँ-कहाँ गलती हुई है, यह ज्ञात हो जाता है।

2370. मुनियों का ज्ञान कर्म को जलाता रहता है और स्वयं ज्यों का त्यों बना रहता है।

2371. आज तक जो कुछ मेरे द्वारा आचरण किया गया है, वह ज्ञान आते ही अज्ञानतापूर्ण आचरण किया ऐसा प्रतीत होता है, जैसे बचपन की कृति बालबोध जैसी लगती है, परिपक्वता एकदम नहीं आती, जैसे गेंहू में शुरुआत में पानी निकलता है, फिर दूध आता है, परिपक्व होने पर आटा निकलता है, चने का होरा है तो उसमें आटा नहीं है, उसमें आटा हो रहा है इसलिए वह होरा है, (हो रहा) है।

2372. ज्ञान रूपी तलवार से कर्म शत्रु पर प्रहार करो और वैराग्य की ढाल से उसका बचाव करते रहो।

2373. ज्ञान और तप साधना में प्रौढ़ता है, लेकिन जब तक साधना पूर्ण नहीं हो जाती तब तक भरोसा नहीं करना चाहिए कभी-कभी किनारे पर जाकर किस्ती डूब जाती है।

2374. अधूरा जानना, देखना ही संसार परिभ्रमण का कारण बन रहा है।

2375. संसार में ज्ञान सबसे बड़ा है, क्योंकि पृथ्वी पर अनेक पदार्थ हैं और धरती वलयों पर आश्रित है। वलय आकाश में हैं और आकाश ज्ञान के एक कोने में है।

2376. जो विश्व के जानने की क्षमता रखते हैं, उन्हें विश्वविद्यालय में जाने की क्या आवश्यकता है क्योंकि ज्ञान का क्षयोपशम विद्यालय में जाने से नहीं होता किन्तु जीवन को संयमित बनाने से होता है।

2377. मुझे कुछ नहीं आता, ज्ञान नहीं है, ऐसा कैसे बोला, ऐसा बोलना ही ज्ञान है, इस सामान्यज्ञान की धारा को निरंतर देखने से पर्याय गौण हो जाती है।

2378. हे आत्मन्! यदि तुम बुद्धिमान हो तो इस बात पर ध्यान दो कि आज तक जिसमें हित था उसे गौण किया और अहित को ही हित समझा, यदि इसमें सुख होता तो तीर्थङ्कर क्यों त्याग करते ?

2379. ज्ञान की प्रौढ़ता के अभाव में यह मन विषयों की ओर जाने को मचलता है।

2380. यदि सही-सही ज्ञान हो जाने पर भी आप विषय-भोग नहीं छोड़ते हो तो आपकी श्रद्धा पर प्रश्नचिह्न लग जाता है।

2381. जिसका मन विषयों में नहीं उलझता, कषाय नहीं करता उसका तप और ज्ञान पहुँचा हुआ माना जाता है।

2382. एक कुर्सी पर बैठा-बैठा कागज पर मात्र हस्ताक्षर कर देता है तो इतनी कमाई कर लेता है कि दिनभर मेहनत करने वाला भी नहीं कर पाता यह युक्ति की बात है, सम्यग्ज्ञानी की बात है।

2383. लोकेषणा के बिना श्रुत का अध्ययन करो, श्रुत का अध्ययन मन को वश में करने के लिए तथा कर्मनिर्जरा के लिए किया जाता है, ख्याति, लाभ, पूजा के उद्देश्य से नहीं।

2384. श्रुतज्ञान का व्यवसाय करोगे तो वह सही फल नहीं देगा और भवान्तर में साथ नहीं जावेगा।

2385. भ्रांति के कारण हम एक पदार्थ को ग्रहण करते हैं, एक को छोड़ देते हैं, यह एक के प्रति राग हुआ और दूसरे के प्रति द्वेष, भ्रांति मिटते ही जीवन में ज्ञान का प्रकाश होते ही कुछ छोड़ने और ग्रहण करने का विकल्प रह ही नहीं जाता।

2386. तत्त्वज्ञान के माध्यम से जो प्रवृत्ति होती है, वह मोक्ष का कारण होती है।

2387. पदार्थ को पदार्थ के रूप में जानना ही सही ज्ञान माना जाता है, किसी से घृणा और किसी के प्रति आकर्षण नहीं होना चाहिए।

2388. भोगों का निमित्त लेकर स्वाध्याय करने का ज्ञान प्राप्त करने का फल मलिनता ही है।

2389. ज्ञान रूपी अग्नि में भव्य रूपी मणि विशुद्ध होकर निकलती है, किन्तु अभव्य उस अग्नि में मलिन होकर या भस्म होकर ही निकलता है।

2390. ज्ञान के माध्यम से रिद्धि, ख्याति, लाभ व पूजा की कामना नहीं करनी चाहिए।

2391. शोध छात्र अपने विषय को कभी भी प्रतिकूल अथवा नीरस नहीं समझता, वह उसी की वृद्धि में लगा रहता है, ज्ञान की आराधना थीसिस का काम करती है, अर्थ यह हुआ कि दर्पण नहीं देखना है बल्कि दर्पण में खुद को देखना है।

2392. प्रयोजन के अभाव में ज्ञान की क्या सार्थकता, ज्ञान की आराधना का अर्थ है कि कर्म बंध से छूटने का उपाय करना, समीचीन देखना/जानना ही ज्ञान की आराधना है।

2393. ज्ञान दशा में अंतर्मुहुर्त में ही सब कुछ छोड़ दिया जाता है और उस ज्ञानी को अंतर्मुहुर्त में ही केवलज्ञान हो जाता है।

2394. अज्ञान दशा में कभी भी वस्तु का स्वरूप समझ में नहीं आ सकता।

2395. ज्ञेय चिपके, ज्ञान चिपकाता है, सो स्मृति हो आती।

2396. जिन पदार्थों से स्वामित्व है, उन्हें छोड़कर फिर सभी पदार्थों से ज्ञेय-ज्ञायक सम्बन्ध रखना ही मुमुक्षुपना है।

2397. वयोवृद्ध होने से पहले आत्महितैषी को ज्ञानवृद्ध एवं तपोवृद्ध हो जाना चाहिए।

2398. ज्ञान प्राप्त होने पर भी यदि यह जीव प्रमाद करता है तो संसार में ही भटकता रहता है।

2399. ज्ञान का सदुपयोग करो, दीपक लेकर कुएँ में मत गिरो।

2400. आज अध्यात्म पढ़कर व्यवसायीकरण हो रहा है यह विद्या अध्यन का आदर्श नहीं है।

2401. सम्यग्ज्ञान ऐसा टिकिट है, आप जिस स्टेशन (गति) पर उतरोगे वहाँ सम्मान होगा।

2402. सम्यग्ज्ञान प्राप्त करने का उद्देश्य यही है कि राग-द्वेष, मोह को कम करते चले जाना।

2403. यदि सम्यग्ज्ञान के द्वारा दोषों का उन्मूलन नहीं होता तो ऐसे ज्ञान पर प्रश्नचिह्न लग जाता है।

2404. ज्ञान का फल, अज्ञान का नाश, पाप की हानि और व्रतों का ग्रहण फिर निर्विकल्प समाधि में लीन होना ही समीचीन माना गया है।

2405. अनुभव वृद्ध, ज्ञानवृद्ध आत्मा को किसी के सहारे की जरुरत नहीं होती, क्योंकि जीवन में प्रयोग करने के बाद ही अनुभव आते हैं।

2406. जो यह सोचते हैं कि पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के बाद संयम लूँगा, ऐसा सोचने वाले को ज्ञात कर लेना चाहिए कि पूर्ण ज्ञान तो केवलज्ञान है जो कि संयम के बिना प्राप्त नहीं हो सकता।

2407. संयम धारण करने के लिए पूर्ण ज्ञान की आवश्यकता नहीं है, बल्कि जितना संयम के लिए ज्ञान पर्याप्त है, उतना कर लो फिर संयम ग्रहण कर लो, पूर्ण ज्ञान केवलज्ञान प्राप्त हो जायेगा।

2408. मति, श्रुतज्ञान ही मोक्षमार्ग में कार्यकारी है, वैसे तो मतिज्ञान ही पर्याप्त है, क्योंकि श्रुतज्ञान तो उसके पीछे-पीछे चलता है, जैसे गाय जहाँ जाती है, बछड़ा भी उसके पीछे-पीछे चला ही जाता है।

2409. जिसका जितना गहरा (प्रौढ़) तत्त्व ज्ञान होगा उसकी उतनी ही अधिक मन की स्थिरता होगी।

2410. ज्ञान परीषह के द्वारा जितनी निर्जरा होती है, उतनी ही निर्जरा अज्ञान परीषह सहन करने से होती है।

2411. ज्ञान की धारा कभी भी टूटती नहीं है, उसका परिणमन त्रैकालिक चलता ही रहता है।

2412. ज्ञान की सार्थकता तभी है, जब वह देखने/जानने के अलावा और कुछ राग-द्वेष रूप परिणमन न करे।

2413. जिस वस्तु के प्रति कोई भी रुचि नहीं रहती उसी से ज्ञेय-ज्ञायक सम्बन्ध बनता है।

2414. ज्ञानाभ्यास के दिन काल की एक कणिका भी व्यर्थ मत गँवाओ।

2415. जिस ज्ञान के द्वारा हाथ की रेखाओं की भाँति विश्व देखने में आ जाता है, उस ज्ञान को ही केवलज्ञान कहते हैं।

2416. ज्ञानाचार की आराधना से तीनों लोकों में कीर्ति फैल जाती है।

ज्ञानी

2417. संसार में सुख जब चाहें जैसा चाहे, जितना चाहे नहीं मिल सकता, इस सत्य को जानकर ज्ञानी पुरुष इसकी ओर पीठ दिखाकर चले गये।

2418. ज्ञानी के लिए मृत्यु को आँखों से देखने का सौभाग्य सल्लेखना के समय प्राप्त होता है।

2419. जिससे हमारे दोष धुलें, कटें वे शत्रु कैसे ? ऐसा ज्ञानी सोचता है, वह कहता है तुमसे मेरे कर्म कटे तुमको मुझसे क्या मिला ?

2420. ज्ञानी जीव इस शरीर से आकर्षित नहीं होता वह इस बात को जानता है कि शरीर हमारे सारे सत्कर्म (पुण्य) को जला देता है।

2421. वस्तु स्वरूप ज्ञात होते ही ज्ञानी जीव प्रत्येक क्षण का उपयोग आत्महित में ही करता है।

2422. ज्ञानी की दृष्टि में संसार की धन सम्पदा का कोई मूल्य नहीं रह जाता, क्योंकि उसे आत्म वैभव का परिचय हो जाता है।

2423. यौवन अवस्था में संयम को धारण करने वाले प्रशंसनीय हैं और वही इसलोक में ज्ञानी है।

2424. बैंक का मैनेजर अरबों की सम्पत्ति के बीच में रहता है, लेकिन उसे अपनी सम्पत्ति नहीं मानता, ठीक वैसे ही संसार विषयों के बीच में रहकर भी ज्ञानी उनसे प्रभावित नहीं होता, पर पदार्थ को अपना नहीं मानता।

2425. ज्ञानी लोग मोह रूपी मगरमच्छ के जबाड़ (मुख) में जाना नहीं चाहते, यह उनकी प्रौढ़ साधना मानी जाती है।

2426. ज्ञानी व्यक्ति तत्त्वचिंतन के माध्यम से संसार के दुःख को दुःख न समझकर सुख से जीवनयापन करता है।

2427. जब ज्ञानी कर्मों के उदय में तत्त्वचिंतन करने लगता है, उस समय कर्मोदय गौण हो जाता है, उसके संवेदन से बचा रहता है और नूतन कर्म बंध भी नहीं होता।

2428. ज्ञानी सोचता है एक न एक दिन वृद्धावस्था तो आनी ही है इसलिए ज्ञान और तत्त्व के साथ वृद्ध होना अच्छा है।

2429. ज्ञानी हंस के समान है, जो विषय रूपी कमल पत्र पर आसक्त नहीं होते, जबकि अज्ञानी भौंरे के समान उसमें आसक्त होकर जीवन खो देते हैं।

2430. चार संज्ञाओं के वशीभूत नहीं होना, तीन अशुभ लेश्याओं में नहीं जाना, इन्द्रियों के विषयों से एवं आर्त्त, रौद्र ध्यान से बचना तथा ज्ञान का दुरुपयोग नहीं करना सम्यग्ज्ञानी का लक्षण है।

2431. गाड़ी चलाते समय ड्रायवर किसी से बात नहीं करता क्योंकि उसे दुर्घटना से बचना होता है, इसी प्रकार ज्ञानी जीव हमेशा सावधान रहता है, आस्रव रूपी दुर्घटना (द्वार) से बचता है।

2432. आग के सम्पर्क में आते हुये भी हम आग को नहीं खाते, वैसे ही ज्ञानी जीव मोही के सम्पर्क में रहकर भी उनसे प्रभावित नहीं होते।

2433. कर्मों के अनुरूप ही नौ कर्मों का समागम होता है, इसलिए ज्ञानी धैर्यशाली कर्म की ओर दृष्टि रखता है, अच्छे-अच्छे कर्मों में मन लगाता है, फिर उसे उसके अनुरूप अच्छी-अच्छी वस्तुएँ प्राप्त होती जाती हैं।

2434. जो पराई वस्तु को अपनी नहीं मानता वह ज्ञानी माना जाता है।

2435. ज्ञानी वही है, जो मोह के क्षय का प्रयास करता है।

2436. मजबूत श्रद्धान वाला मोह की पर्त को जल्दी हटा देता है, जो हमेशा दोषों के उन्मूलन में लगा हो, वही सच्चा ज्ञानी है।

2437. बुद्धिमान वही है, जो सद्‌गति के कारणों में लगा रहता है, वे विरले ही होते हैं, जो अपने जन्म को सफल बना लेते हैं।

2438. संसार का मार्ग चौरासी लाख स्टेशनों वाला है, इसमें जीव आते जाते रहते हैं, इसमें ज्ञानी विस्मय नहीं करता, वह तो आत्महित की ओर बढ़ता चला जाता है, ये सब पूर्व कर्मों का फल है, ऐसा श्रद्धान बनाते हुए इस चक्क र से छूटने का प्रयास करता रहता है।

2439. तत्त्व ज्ञानी का मन समस्त परिस्थितियों में स्थिर ही बना रहता है।

2440. वस्तु का परिणमन उसके स्वरूप के अनुसार होता है, अपने मन के अनुरूप नहीं, ऐसा विचार कर ज्ञानी जीव कर्ता बुद्धि को छोड़कर ज्ञाता-द्रष्टा स्वभाव की ओर चला जाता है।

2441. ज्ञानी सोचता है वस्तु के परिणमन के बारे में, यह चर्म चक्षुएँ काम नहीं कर सकती यह मात्र श्रद्धान का विषय है, क्योंकि वस्तु के सूक्ष्म परिणमन को केवलज्ञानी ही देख एवं जान सकते हैं।

2442. ज्ञानी की दृष्टि में जीवन-मरण, आकांक्षा-भय ये सब समाप्त हो जाते हैं, उनकी दृष्टि तो ध्रुव की ओर ही होती है।

2443. जैसे पुराने वस्त्र छोड़ते समय दुःख नहीं होता, वैसे ही ज्ञानी को सल्लेखना के समय शरीर छूटने का दुःख नहीं होता, इसलिए सल्लेखना के बाद मृत्यु महोत्सव मनाया जाता है।

2444. ज्ञानी हमेशा जन्म-मरण में, सुख-दुःख में साम्यभाव रखते हैं।

2445. औदारिक शरीर से ज्ञानी, आत्मा की साधना करता रहता है, जीने मरने की इच्छा नहीं रखता।

2446. जिसने कषायों का शमन और इन्द्रियों का दमन कर दिया, वह सबसे बड़ा ज्ञाता है, ज्ञानी है।

2447. जिसने पाप को शत्रु समझकर छोड़ दिया और कषायों के शमन में लग गया, वही ज्ञानी माना जाता है।

2448. पर के मंथन से श्रुत नहीं मिलता जैसे नीर के मंथन से नवनीत नहीं मिलता ज्ञानी ऐसा श्रद्धान रखता है।

2449. ज्ञानी के कर्म के संवर को कोई नहीं रोक सकता और अज्ञानी के कर्म आस्रव को भी कोई नहीं रोक सकता क्योंकि ये सब अपने-अपने भावों पर आधारित है।

2450. मेरा मुझसे मेरे द्वारा ही होता रहता है, ज्ञानी ऐसा श्रद्धान रखता है।

2451. ज्ञानी विवेकी वही है, जो कषाय का हमेशा शमन करता रहता है।

2452. श्वान पत्थर पर टूटता है, मारने वाले पर नहीं। यह अज्ञानी की वृत्ति है। जबकि सिंह पत्थर पर नहीं, पत्थर मारने वाले पर टूटता है यह ज्ञानी की वृत्ति है, यह कार्य-कारण का सही ज्ञान है।

2453. जब तक सल्लेखना न हो जाये तब तक अतिविश्वास में नहीं आना चाहिए, हमेशा सावधानी रखना चाहिए, भले ही कोई ज्ञानी क्यों न हो, लेकिन वह आशा रूपी देवी को अपने पास रखता है तो उसे जीवन में कभी भी शांति का अनुभव नहीं हो सकता।

परिशिष्ट-1

दशलक्षण

2454. दशलक्षण धर्म उस मानसरोवर में रहते हैं, जहाँ कषाय रूपी मगरमच्छ नहीं रहते, इसलिए अपने मन रूपी सरोवर को कषाय रूपी मगरमच्छ से रहित निःशंक बनाओ तभी धर्म को प्राप्त कर पाओगे।

2455. दशलक्षण धर्म को अपने जीवन में धारण करने के बाद पूरा जीवन पर्वमय हो जाता है।

क्षमा

2456. क्रोध ही शत्रु है, उसे दांत किटकिटाते हुए बाहर कर दो।

2457. गुस्सा के ऊपर गुस्सा करने वाला कुछ कर सकता है पर गुस्सा करने वाले पर गुस्सा करने वाला कुछ नहीं कर पाता।

2458. क्रोधाग्नि स्व एवं पर दोनों को जला देती है।

2459. क्रोध के कारण से हम स्व को भूल जाते हैं।

2460. क्रोध एक बहुत बड़ा नशा है। जो व्यक्ति की बुद्धि को गाफिल कर देता है।

2461. राख के द्वारा अग्नि बुझती तो नहीं पर ढक अवश्य जाती है, उसी प्रकार क्रोध में उपयोग समाप्त तो नहीं होता किन्तु ढक अवश्य जाता है।

2462. आत्मानुभूति करने के लिए क्रोध को निकालना आवश्यक होता है।

2463. उत्तम क्षमा रखना ही पर्व मनाना है। मन का विजेता बनना ही पर्व का सार है।

2464. आज आपस में आप क्षमा को स्वीकार रहे हैं, इससे बड़ा और कोई धर्म नहीं होगा।

2465. क्षमा ऐसी वस्तु है, जिससे सारी ज्वलनशीलता समाप्त हो जाती है और चारों ओर हरियाली ही हरियाली दिखने लगती है।

2466. भगवान् पार्श्वनाथ के जीव ने क्षमा रूपी महा शीतल धर्म के द्वारा ही सारी कठिनाईयों को सहा, क्योंकि वे इस बात को जानते थे कि अपने अपने कर्म का फल सभी भोगते हैं।

2467. अपने-अपने कर्म का फल भोगे संसार।
एक खस टट्टी सींचता एक लेता बहार॥

2468. अगरबत्ती जलकर ही सुगंधी फैलाती है, हमको भी समता धारण करके

आगे बढ़ना चाहिए महाभारत पढ़ने के बाद नवभारत के बारे में सोचें ? मैं कौन हूँ ?

2469. सम्बन्ध क्या है वात्सल्य के साथ निभाना बाद में तो टूटना ही है। यह सम्बन्ध नहीं, संयोग है उस दूध और पानी की भांति आप लोगों को रहना चाहिए।

2470. भगवान् को छोड़कर सभी से गलती होती है।

2471. संसारी प्राणी बाहर से सब ठंडे हैं पर भीतर से सभी गरम हैं (क्रोध सत्व में है इस अपेक्षा से)।

2472. इस जीवन में तापमान (क्रोध)पूर्णतः समाप्त नहीं हो सकता लेकिन भीतर रहते हुए भी बाहर तापमान (क्रोध) नहीं आने देना, यह एक महान् पुरुषार्थ है।

2473. क्रोध ऐसी वस्तु नहीं है, जिसे हाथ में लेकर फेंक दो, बल्कि चाहो तो उसका उपयोग करने से रोका जा सकता है।

2474. वृद्धावस्था में भी क्रोध जीर्ण नहीं होता। चाहे वह आठ वर्ष का हो या अस्सी वर्ष का सभी में क्रोध भरा हुआ है, क्योंकि क्रोध कभी बूढ़ा नहीं होता।

2475. क्रोध अपने आप कुछ नहीं करता हम उस रूप परिणमन कर हो जाते हैं इसलिए वह अपना प्रभाव दिखा देता है।

2476. क्रोध के सत्त्व में बहुत ही शक्तिशाली बारूद भरी रहती है जिसका कभी भी विस्फोट हो सकता है।

2477. मान्यता मन में बनाये बिना क्रोध की प्रक्रिया प्रारम्भ नहीं हो सकती।

2478. विषैले शस्त्र कभी अपने आप नहीं चलते, चलाने वाले पर आधारित होते हैं। प्रत्येक व्यक्ति के पास फटाके (क्रोध) की दुकान है और वह स्वयं उसमें बैठकर चला रहा है। यदि विस्फोट हो गया तो पहले स्वयं जलेगा बाद में कोई जले भी या नहीं भी।

2479. कषाय को जीतना है तो क्षमा को धारण करो।

2480. साधुओं ने सबसे पहले संकल्प लिया है कि हम क्रोध रूपी बम का प्रयोग नहीं करेंगे। भीतर क्रोध होते हुए भी उसका प्रयोग नहीं करेंगे तो शांति का वातावरण बना रहेगा।

2481. जिस प्रकार माचिस बाक्स में रखी हुई तिल्लियाँ बरसात में काम नहीं करतीं हैं बल्कि सभी घिसकर समाप्त हो जातीं हैं, इसका कारण नमी, आर्द्रता है। ठीक उसी प्रकार हमारे भीतर कषायों की तिल्लियाँ भरी पड़ी हैं, हम बाहर

का वातावरण क्षमा का बना लें तो कषायों की तिल्लियाँ उदय में आकर चली जावेगी, कोई हानि नहीं होगी।

2482. क्रोध रहित वीतराग मुद्रा के सामने सिंह भी अपना हिंसत्व छोड़कर उनके चरणों में बैठ जाता है क्योंकि मान्यता के ऊपर ही क्रोध की उत्पत्ति होती है, क्रोध का विस्फोट मान्यता पर आधारित है।

2483. यदि कोई अपने ऊपर बरस (गरज) रहा है तो यह मेरे ऊपर नहीं गरज रहा है, यह तो अज्ञानी है ऐसी मान्यता बना लो, क्रोध बाहर नहीं आवेगा और आपने इसके विपरीत मान्यता बना ली तो आप अज्ञानी हो गये।

2484. क्रोध छोड़ने की भूमिका यही है कि अपनी विपरीत मान्यता को बदलिए।

2485. अज्ञान दशा में किए गए कार्य ज्ञान दशा में क्षमा करने योग्य होते हैं।

2486. स्वभाव को भूलने वाला ही क्रोध कर सकता है। क्रोध हमारा स्वभाव नहीं हैं, इस विश्वास को मूर्तरूप देते जाओ, धीरे-धीरे क्रोध पर विजय प्राप्त होती जावेगी।

2487. ज्ञानी के पास सदा स्वाभिमान रहता है वह क्रोध में, उतावली में कभी अनुचित कार्य नहीं कर सकता।

2488. संघर्ष से जल में भी अग्नि उत्पन्न हो जाती है।

2489. जब बादल जल से नहीं जलन से भरे होते हैं, तब आपस में संघर्ष कर लेते हैं तो वज्रपात हो जाता है।

2490. क्रोध का तूफान स्वयं एवं पर दोनों को उड़ा ले जाता है।

2491. हमारे परिणामों में यह क्षमता है कि हम सभी को जीत सकते हैं और चाहें तो सभी हमारे विरोधी हो सकते हैं।

2492. जिन वस्तुओं से क्रोध (कषायादि) उत्पन्न होते हैं, उन्हें पहले ही त्याग कर देना चाहिए।

2493. मान लो क्रोध रूपी अग्नि लग गयी है तो पानी डालो, पानी नहीं है तो धूल डालो, धूल नहीं डाल सकते तो अग्नि से ईंधन का सम्पर्क तो हटा सकते हो। फिर अग्नि धीरे-धीरे स्वतः शांत हो जावेगी।

2494. क्रोध करना अज्ञान का ही प्रतीक है, उस समय अपने को अज्ञानी समझना चाहिए।

2495. क्रोध रूपी अज्ञान को नष्ट करने के लिए क्षमा रूपी शस्त्र ही उपयोगी है।

मार्दव

2496. मान के खण्डन के बिना प्रदर्शन तो चलता रहेगा, किन्तु यह जीव अंदर के

दर्शन से वंचित रह जावेगा।

2497. अभिमान नहीं बहुमान होना चाहिए।

2498. आत्म स्वरूप का ज्ञान होते ही बाहरी रूप का अभिमान टूट जाता है।

2499. क्रोध को पहचानने के लिए विशेष मेहनत नहीं लगती मान को पहचानने में देर लगती है। मान से बचने के लिए विवेक आवश्यक है।

2500. ज्वर अंदर खून को जलाता है, वैसे ही यह मान है। हड्डी का ज्वर बहुत दिनों में निकलता है। मान भी मोतीझिरा जैसा अंदर प्रवेश कर गया है।

2501. देव, शास्त्र व गुरुओं के समागम से, उनके दर्शन से अनन्तानुबन्धी कषाय नष्ट हो जाती है। जैसे इन्द्रभूति समवशरण में गया और उसका मान खंडित हो गया।

2502. मानी व्यक्ति अच्छी-अच्छी हस्ती को डुबो देता है।

2503. मान के पीछे लग जाना बहुत बड़ा पागलपन है।

2504. जो मान रूपी हाथी पर आर्जव का अंकुश लगाकर उस पर बैठ जाते हैं, उनको नमस्कार है वे तीन कम नौ करोड़ मुनिराज उसी में लगे हुए हैं। महान् व्यक्ति ही ऐसा कार्य कर सकते हैं, वे उम्र में छोटे होते हुए भी महान् हैं।

2505. मान को खारेपन से ही तृप्ति मिलती है।

2506. आत्म तत्त्व, कषायों के कारण भव-भव तक विषाक्त होता चला जाता है।

2507. ज्ञान का प्रदर्शन करना बौनापन है। गहराई में जाने पर बताने की बात ही नहीं होती।

2508. ज्ञान, मान प्रतिष्ठा का विषय नहीं बनना चाहिए।

2509. संसार में, मैं और मेरेपन को लेकर संघर्ष चल रहा है यह विश्व के संघर्ष का स्रोत है।

2510. मान को जिसने मार दव (मार दिया) उसके मार्दव धर्म उत्पन्न होता है।

2511. चेतन स्वभाव को छोड़कर घनत्व (मान) को स्वीकार कर लेता है क्योंकि वह अपने अस्तित्त्व को संसार में अलग से कायम रखना चाहता है, जैसे बर्फ जल से पृथक् अस्तित्त्व बनाये रखना चाहता है।

2512. बर्फ जब अपने घनत्व को (मान को) मार देता है, छोड़ देता है तब वह पानी-पानी हो जाता है।

2513. मान बहुत बड़ा योद्धा है, वह अपने आपको सब कुछ मानता है सामने वाले की कीमत नहीं समझता। अभिमान यहाँ पर चूर-चूर हो जाता है कि पुद्गल (कर्म) के पास ऐसी शक्ति है कि जिसने केवलज्ञान के स्वभाव को नष्ट

कर दिया है। वह कहता है मेरे राज्य में केवलज्ञान रूपी सूर्य की एक किरण भी नहीं फूट सकती, बारहवें गुणस्थान के अंत तक वह अपना अधिपत्य जमाये रहता है। यह देखकर मानी प्राणी का मान पानी पानी हो जाता है।

2514. अनंत शक्ति वाला चैतन्य तत्त्व इन मानादि कषायों के कारण कहाँ छिपा है पता नहीं।

2515. मान इंद्रियों की नहीं बल्कि मन की खुराक है।

2516. मन को मान से बचाना ही साधना की एक चरम सीमा है।

2517. तीर्थंकर चक्रवर्ती होते हुए भी नव निधि, चौदह रत्नादि के स्वामी मुनि बनने के बाद जब नवधाभक्ति के माध्यम से (तप में वृद्धि के लिए एक गरीब की कुटिया में आहार लेने जाते हैं)। चक्रवर्ती तीर्थंकर का इससे बड़ा और मान का हनन क्या होगा ? साधना वही है जो अपने मान को समाप्त कर दे।

2518. जब आत्मतत्त्व के प्रति बहुमान प्राप्त हो जाता है तब मान के लिए कोई स्थान नहीं रह जाता।

2519. मान को जीतने की आंतरिक साधना महत्त्वपूर्ण है।

2520. ख्याति, लाभ, पूजा एवं यशकीर्ति को छोड़ना बहुत कठिन है, ये संसारी प्राणी क्या कीर्ति-कीर्तन कर पावेंगे, इन्हें हमारा वास्तविक स्वभाव ज्ञात ही नहीं है।

2521. मान के लिए, तुलना के लिए दूसरा पदार्थ आपेक्षित होता है लेकिन आत्मा के लिए, स्वभाव में आने के लिए पर पदार्थ की आवश्यकता नहीं होती। मान द्वंद पैदा करता है।

2522. आठ चीजों (ज्ञान, पूजा, कुल, जाति, बल, तप, रूप और ऐश्वर्य) को लेकर मान हो सकता है यह, विस्मय की नहीं अस्मय की बात है।

2523. वह अपना ही अस्तित्त्व समाप्त करना चाह रहा है, जो मान के कारण धर्मात्मा को नीचे दिखाना चाह रहा है। सम्यग्दृष्टि ही स्व-पर के अस्तित्त्व को समझ सकता है, जिसे आत्मा के अस्तित्त्व के बारे में पहचान हो जाती है वह मान के पीछे क्यों भागेगा ?

2524. मानी मानव दूसरे पर डिपेन्ड रहना चाहता है, दूसरे पर डिपेन्ड जो आनंद है, उसे पाने वाला भिखारी है। मान से सुख नहीं मिलता, वह सुखा देता है, मैं बड़ा हूँ, यह भी एक चिंता है।

2525. ऐसा स्वाध्याय, तप-साधना आदि करें ताकि मान प्रमाण के रूप में परिवर्तित

हो जावे।

2526. अभिमान करने का उद्धेश्य अपने को बड़ा मानना है और दूसरे को छोटा मानना यह एक खतरनाक उद्धेश्य है और यही हमारा अज्ञान है।

2527. अध्यात्म के क्षेत्र में दूसरे को छोटा मानने वाले का स्वागत नहीं है।

2528. यदि मान की एक भी तरंग है, लकीर है तो लकीर के फकीर माने जाते हैं।

2529. मान का मर्दन करने वाला वीर माना जाता है, वही बाद में हमारे सामने महावीर बनकर आता है।

2530. बालक अच्छे कपड़े पहन ले तो उसकी चाल ही बदल जाती है, यह मान का प्रतीक है।

2531. हे प्रभु ! आपने ऐसे कौन से शस्त्र का प्रयोग किया कि आपका मान प्रमाण बन गया ? अधूरापन समाप्त हो गया।

2532. छोटे, बड़े की मान्यता हमारे ही दिमाग की उपज है, प्रत्येक जीव का अस्तित्त्व अनादि अनिधन है।

2533. अधूरे व्यक्तियों के पास जाओगे तो मान खड़ा होगा ही इसलिए मान से बचना हो तो भगवान् के पास बैठ जाओ।

2534. हम कभी भी दूसरे को छोटा नहीं मानेंगे यह छोटा-सा व्रत ले लो। फिर मान अपने आप समाप्त हो जावेगा।

2535. दूसरे को छोटा मानना अस्तित्त्व गुण में दोष है।

2536. कष्टों को सहते हुए साधना करें, बहुत कुछ प्राप्त हो जावेगा, मान के साथ नहीं।

2537. अभिमान के अड़ जाने पर संघर्ष छिड़ जाता है।

2538. अभिमानी धर्म नहीं कर सकता, क्योंकि पाप का मूल अभिमान है।

2539. यदि आप अहंकार को छोड़ना चाहते हो तो, हमेशा-हमेशा रामायण का वाचन करते रहना चाहिए।

2540. लघु बने बिना दूसरे से प्रेरणा नहीं ली जा सकती और लघु बने बिना राघव नहीं बन सकते।

2541. नाम की तृष्णा, भूख एक प्रकार से हमें कर्त्तव्य से विमुख कर देती है।

2542. हे प्रभु! मुझे ऐसा पुण्य बंध न हो, जिससे में अभिमानी बन जाऊँ, मोक्षमार्ग ही छिन जाये।

2543. जिस साबुन से (दानादि से) कपड़ा साफ होता है, उससे कपड़ा (आत्मा)

गंदा भी हो सकता है, अभिमान करने से। मान की तरंग उठने से अंतरंग बदल जाता है, मटमैला हो जाता है।

2544. लघुपना स्वीकारने से कषायों का शमन होता है। जिसके माध्यम से जीवन में विकास होता चला जाता है।

2545. पर्वत पर (बड़प्पन के पर्वत पर) चढ़ने से अहंकार की लू लग जाती है, नीचे रहने पर लू नहीं लगती।

2546. मानी की प्रेरणा संसार में भटकाने के लिये होती है और मानातीत दृष्टि वालों की प्रेरणा संसार से पार लगा देती है।

2547. मोहमार्ग वालों को मान अच्छा लगता है, श्रुत नहीं।

2548. मान की सामग्री मनुष्य ही सूंघता है, जंगली प्राणी नहीं।

2549. आत्मा के स्वरूप के बारे में सोचोगे तो रूप का मद नहीं होगा।

आर्जव

2550. हमारी दृष्टि में सरलता नहीं है, दृष्टि में सीधापन होना बहुत महत्त्वपूर्ण है।

2551. सूक्ष्म की बात करते हैं, लेकिन सूक्ष्म-दृष्टि भी रखना चाहिए। आत्मा को देखने के लिए सूक्ष्म-दृष्टि की आवश्यकता है। भीतर से दृष्टि में एकाग्रता आनी चाहिए।

2552. संतुलन में ऋजुता रहती है आज संतुलन के अभाव में बातों में भी सीधापन नहीं आ रहा है।

2553. दृष्टि में ध्रुव, लक्ष्य दिखना चाहिए, अर्जुन की भाँति।

2554. दृष्टि एक पर लगी रहती है तो बाह्य पदार्थ बाधक नहीं हो सकता।

2555. बहुत दूर तक न चलो, थोड़ा चलो पर सीधा तो चलो। युक्ति से, भक्ति से चलो। जैसे टेड़ी नली में धागा डालना है धागा के कार्नर में गुड़ लगा दिया चींटी उसे पकड़कर उस पार ले गयी।

2556. आर्जवधर्म सीधे होने की बात सिखाता है। हमारे, मन, वचन, काय में सीधापन होना चाहिए।

2557. जो सीधा होता है, वह सादा भी होता है, लेकिन आज हाईलिविंग विदाऊट थिंकिंग हो गया है। हाईलेविल पर आज कोई नहीं जी सकता मात्र भगवान् जीते हैं क्योंकि उनका अकालमरण नहीं होता।

2558. अतीत, अनागत वक्र है, वर्तमान सीधा है वर्तमान में जीना ही सीधा सरल माना जाता है।

2559. अतीत की स्मृति के कारण वर्तमान से वंचित होना पड़ता है। वर्तमान की मृति (मरण) और अतीत की स्मृति एकार्थवाची है। स्व की अनुभूति के लिए वर्तमान चाहिए। मन, वचन व काय की समष्टि में आनंद आता है।

2560. उस समय एक का ही अनुभव होता है, भविष्य जब भी आवेगा तो वर्तमान में ही आवेगा, इसलिए था, थे, थी, गा, गे, गी छोड़ दो रहा, रही, हैं (वर्तमान) में आ जाओ यही सरल मार्ग है।

2561. मन जिनवाणी की गोद से उछलना चाहता है लेकिन जिनवाणी की गोद में ही हमेशा आर्जव धर्म बना रह सकता है।

2562. आप जिनवाणी को बच्चे की तरह सुनोगे तो ज्यादा सुनने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी, किसी एक का भी केवलज्ञानी पूर्ण अतीत नहीं कह पावेगे तो फिर उसे जानने की आप इच्छा क्यों रखते हो ?

2563. सीधा सादा जीवन जीने के लिए सीधा सादा रास्ता है।

2564. सीधा बोलना, सीधा चलना, सीधा सोचना सीखो, यदि ऐसा नहीं कर सकते तो शांति से बैठ जाओ, फिर सीधापन अपने आप आ जावेगा।

2565. हर बात में टेड़ापन, हमारा जीवन कुत्ते की पूँछ की तरह है।

2566. हम दुनियाँ को तो सीधा करने में लगे रहते हैं पर अपने को सीधा करना नहीं सीख पाये। यही तो सबसे बड़ी विडम्बना है।

2567. साधु अपना टेड़ापन निकालता है, भगवान् के सामने रोते हुए कहता है कि हे भगवान्! मुझे कुछ हठात् करना पड़ता है न चाहते हुए भी।

2568. अपने को ही कर्म, कर्त्ता व साधन बनाओ मात्र एकत्व की भावना भाओ यही एक श्रेय मार्ग है, आर्जवधर्म है।

2569. वर्तमान है तो संवेदन है, अतीत का संवेदन करने का अधिकार किसी को नहीं है, अनागत का तो सवाल ही नहीं उठता।

2570. सरल कोण बन जाता है तो रेखा में एक भी अंश की कमी नहीं आती। आपका जीवन ट्रिंगल है सीधा सरल बनाने का प्रयास करें।

2571. अपना ही उपयोग आनंद का धाम है और आक्रंदन का भी।

2572. उन प्रभु को बार-बार नमस्कार करते हैं, जिनका शांति का रूप हमें शांति का उपदेश देता रहता है।

2573. दृष्टि की वक्रता धर्म में बाधक है क्योंकि थोड़ी-सी भी वक्रता मोक्ष मार्ग में सहनीय नहीं है।

2574. वर्धमान कहते हैं कि वर्धमान मिलेंगे तो वर्तमान में मिलेंगे।

2575. हमें अपनी दृष्टि सब ओर से हटाकर वर्तमान में ही केन्द्रित करना चाहिए। जब हम वर्तमान को पकड़ लेंगे तो वर्धमान बनने में देर नहीं लगेगी।

2576. कल को पाने वाली दृष्टि टेड़ी मानी जाती है दृष्टि को चलाने की नहीं बल्कि स्थिर करने की आवश्यकता है।

2577. अपने उपयोग का टेड़ापन हमें अपने लक्ष्य तक नहीं पहुँचा सकता।

2578. हम अपनी दृष्टि को वर्तमान से हटाकर भविष्य के मूल्यांकन में लगा देते हैं, यही तो हमारी दृष्टि का टेड़ापन है।

शौच

2579. संतोष अमृत है, तृष्णा विष है।

2580. आवश्यक है अमृत और विष की पहचान करके विष के त्याग करने की।

2581. दूसरे को कितना मिल रहा है, यह मत देखो तुम्हें कितना मिल रहा है उसे लेकर संतोष धारण करो।

2582. लोभी व्यक्ति धर्म को भी खा जाता है, धर्म के साथ खाओ पर धर्म का मत खाओ। निर्माल्य द्रव्य का भक्षण मत करो, इस महान् पाप से बचो।

2583. मन, वचन व काय की शुचिता के लिए खानपान की शुचिता अनिवार्य है।

2584. पवित्र भाव के द्वारा ही अशुद्ध द्रव्य पूर्णतः शुद्ध हो सकता है।

2585. शुद्ध हुए बिना अनगढ़ पत्थर की कोई कीमत नहीं। चारित्र रूपी शान के ऊपर चढ़ता है तो ज्ञान रूपी अनगढ़ पत्थर गले का हार बन जाता है।

2586. धर्म का लोभ जिसे होगा वही निर्लोभी होगा।

2587. शौचधर्म वह धर्म है, जिसमें शरीर को गौण किया जाता है।

2588. लोभ से चिपकने वाले के मन में अशुद्धि रहती है। लोभ हमेशा असंतुलन की ओर ले जाता है।

2589. लोभ को जिसने सुधारा नहीं छोड़ा नहीं समझो उसने धर्म करना शुरू ही नहीं किया।

2590. शौच धर्म का अर्थ ही है अपरिग्रह के साथ मन को प्रसन्न बनाना।

2591. जो दीवाल मिट्टी की हो वह साफ नहीं हो सकती, उसी प्रकार यह शरीर है।

2592. मेरे अंदर अशुचिता है, ऐसा जो स्वीकारता है, वही शौच धर्म अंगीकार करता है, जो पहले से अपने आप को शुद्ध मानता है, वह कैसे स्वीकारेगा?

2593. सही सोला तो आप्रेशन थियेटर में रहता है।

2594. बहुमूल्य शक्ति अनगढ़ पत्थर में रहती है अनगढ़ को शुद्ध कहोगे तो खदान में और जौहरी बाजार में कोई अंतर नहीं?

2595. जीना है तो चढ़ो संयम के जीना पर बिना स्नान के चढ़ना है, यहाँ शारीरिक शुचिता गौण हो जाती है आत्मिक शुचिता मुख्य हो जाती है। (जीना=सीढ़ी)

2596. तप, संयम की शुद्धि के बाद बाह्य शुद्धि की आवश्यकता नहीं पड़ती।

2597. लोभ का त्याग करने पर ही शौच धर्म आ सकता है।

2598. लोभ पाप का बाप बखाना न जाने क्या-क्या खाना। लोभी, गेहूँ के साथ-साथ भूसा भी खा लेता है।

2599. श्मशान में भी मुनि शुचि धर्म की आराधना करते हैं।

2600. मन से शुद्ध, लोभ रहित को नमोऽस्तु-निर्लोभी को कोई शोर/सूतक नहीं लगते।

2601. जिनका मन पवित्र होता है उनके सामने हमारे लोभ भी भय खाते हैं।

2602. संसार में परिग्रह का जाल हमेशा-हमेशा भटकाता रहता है।

2603. हम अनादिकाल से बाह्य की सफाई करते रहें लेकिन अंदर कभी दृष्टि ही नहीं डाली।

2604. दीवाल बाहर से पोत दी भीतर तो धूल ही धूल है।

2605. सम्यग्दर्शन और परिग्रह दोनों का सर्प-नेवला जैसा बैर है। सम्यग्दर्शन प्राप्त करना सरल नहीं है, उसके लिए अनंतानुबंधी लोभ का त्याग करना अनिवार्य है सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के बाद दूरी भले हो पर मुख मंजिल की ओर होता है।

2606. तिर्यंच अपने पास लाकर कुछ नहीं रखते, संग्रह वृत्ति मनुष्य के पास ही जबरदस्त होती है।

2607. दूसरे को कुछ नहीं देना अपने सम्बन्धी को ही देना यह भी लोभवृत्ति है।

2608. जो अपना नहीं है, उसे दिन डूबने से पहले छोड़ दो, वरना खुद डूब जाओगे संसार समुद्र में।

2609. पक्षपात की जड़ लोभ है।

2610. बाह्य अशुचिता सागर के जल से भी धोओ तो कोई महत्त्व नहीं भीतरी शुचिता के अभाव में। भीतरी शुचिता के लिए एक भी बार प्रयास नहीं किया भीतर क्या हो रहा है जरा सोचो?

2611. अपने घर की सफाई की जाती है बाहर सड़क की नहीं।

2612. आत्मा को मांजने का विकल्प आज तक नहीं किया, सोचो कैसा विकृत हो रहा होगा।

2613. आप बिना स्नान भोजन नहीं करते और मुनिराज लोग इतने व्यस्त हो जाते हैं भीतरी सफाई करने में कि बाहरी सफाई के लिए विकल्प ही नहीं उठता।

2614. यदि हमारा अंदर की सफाई के लिए एक बार भी हाथ नहीं उठता, उस ओर कदम नहीं बढ़ता तो मानना होगा कि हम अंतर्जगत से अपरिचित हैं।

2615. चश्मे के काँच पर धूल जमी हो तो वस्तु स्पष्ट दिखाई नहीं देती, इसी प्रकार आत्मा के ऊपर पड़ी कर्म रूपी धूल को नहीं हटाओगे तो आत्म तत्त्व के दर्शन नहीं हो सकते।

2616. यदि जल से शुचिता प्राप्त होती तो मछली और मेंढ़क तो उसी पानी में ही रहते हैं अभी तक तो वे शौच धर्म को प्राप्त कर चुके होते।

2617. अभ्यंतर तप प्रायश्चित्त से प्रारम्भ होता है, जिससे उपयोग की मन की शुद्धि प्राप्त होती है।

2618. बर्तन को तपाकर उसके भीतरी स्थान को साफ-सुथरा करते हैं, वैसे ही भीतरी शुचिता के लिए आचार्यों ने बारहतप रखे हैं, जिसके माध्यम से जो भीतर लोभ बैठा है, वह बाहर निकल जाता है।

2619. कदाचित् लोभ ठीक है, कथंचित् नहीं, साधु संगति का लोभ, रत्नत्रय का लोभ, भगवान् के भजन का लोभ अच्छा है। धन का, पद का लोभ अच्छा नहीं है।

2620. लोभ छोड़ो नहीं उसका परिवर्तन कर दो। (पाप की जगह पुण्य में)।

2621. कुछ लोगों को भोजन करने का लोभ होता है तो कुछ लोगों को भोजन कराने का लोभ रहता है।

2622. आहार देने का लोभ यह बहुत बड़ा लोभ है वह आगे का प्रबंध कर रहा है।

2623. धार्मिक कार्यों में, अनुष्ठान में लोभ हो जावे तो इससे बढ़कर कोई दूसरी प्रभावना नहीं है।

2624. पवित्र भावना के माध्यम से धर्म की सुगंधी दूर-दूर तक फैल जाती है।

2625. आत्मा के ऊपर ऐसे संस्कार डालते जाओ जिससे लोभ अच्छे क्षेत्र में वृद्धिगत होता जावे। डॉ. को, वैद्य को पैसे का नहीं सेवा का लोभ होना चाहिए।

2626. यदि पर की सेवा नहीं कर सकते तो अपनी सेवा तो करो।

2627. यदि आपको अपने स्वयं के बारे में जानकारी हो गयी है तो क्या छोड़ना है? क्या मांजना है? उसे प्रारम्भ करिये।

2628. दुनिया अनावश्यकता के कारण दुःखी है और इसका कहीं स्टॉप (अन्त) ही नहीं।

2629. पेट अंदर साफ नहीं है और भोजन डाल लिया तो डकार में खट्टापन आवेगा ही।

2630. लोभ ही लोभ करते-करते जब कभी आत्मा की बात करते हैं, तब ऊँवासी (नींद) आने लगती है।

2631. हमें दुनियाँ का लोभ एवं धर्म में लोभ कितना है, विचार करो।

2632. हमारा धर्म के प्रति लोभ बढ़ जाये यही सबसे बड़ा शौचधर्म होगा। ये लोभ सही दिशा में होना चाहिए सेवा का लोभ, वैयावृत्ति का लोभादि।

2633. क्षयोपशम पढ़ने-पढ़ाने से नहीं बढ़ता बल्कि जितना मोह का अभाव होता जाता है उतना ही क्षयोपशम बढ़ता जाता है।

2634. हमें खोजना नहीं, खोदना है संसार में धर्म खोजने से भागने से नहीं मिलेगा बल्कि रुकने से अपने अंदर खोदने से मिलेगा। पानी खोदने से मिलेगा भटकने से नहीं।

2635. आत्मा के लोभी को, आत्म-संतोषी को संसार के बाहरी प्रलोभन कभी लुभा नहीं सकते।

2636. दूसरे की वस्तु की माँग करना ही अपने धर्म को, स्वाभिमान को खोना है।

2637. अपनी आत्मा में ही सब कुछ है, यह श्रद्धान होने पर फिर आत्मा में ही खोदने का लोभ आ जावेगा और आत्म धन जो अंदर खदान है उससे प्राप्त कर लेगा।

2638. आत्म भान, वस्तु स्वरूप का ज्ञान होने पर शुचिता क्या वस्तु है, यह ज्ञात हो जाता है। जैसे आप बिना कहे स्नान कर लेते हो वैसे ही बिना कहे कषायों को धोने का कार्य भी करना चाहिए। भीतरी स्नान का हमेशा ध्यान रखना चाहिए।

2639. आप लोगों का लोभ ऐसा है कि एक हाथ से दान देते हो और दूसरे हाथ को आगे फैला देते हो कि इसका फल मिलेगा या नहीं। जो देता है, वह देखता नहीं जो देखता है वह देता नहीं। लोभ मंद हुआ है कि नहीं यह देखो, लोभ नहीं हो रहा है तो समझना मंथन अच्छा चल रहा है।

2640. लोभ के अत्यन्त अभाव में ही शौच धर्म प्राप्त हो जाता है।

2641. आप लोगों ने मन में ऐसे संस्कार डाल रक्खे हैं कि अनावश्यक का भी लोभ कर जाते हो।

2642. अनावश्यक के प्रति झुकाव होना ही तो लोभ है।

2643. संसारी प्राणी लोभ के कारण पर के (बच्चों आदि) के बारे में सोच रहा है

अपने बारे में नहीं।

2644. लोभी प्राणी को अंत समय पश्चात्ताप ही हाथ लगता है।

2645. पुरुषार्थ स्वयं अपने क्षेत्र में कर सकते हैं यही मात्र नियति है, पर के क्षेत्र में लगना लोभ है।

2646. हाथ डालकर बर्तन साफ करिये आत्मतत्त्व रूपी दही को विकृत मत करिये।

2647. जो कर्म कालिमा अनादिकाल से जमी है उसकी थोड़ी-थोड़ी सफाई करते जाओ।

2648. वैभव मिलने पर लोभ बसने लगता है।

2649. पाई-पाई के लिए भाई ने भाई को नहीं छोड़ा चक्रवर्ती ने अपने भाई पर चक्र चलाया।

2650. संतोष के बिना संयम प्राप्त नहीं हो सकता। संतोष संयम के पूर्व की भूमिका है और लोभ, संयम मार्ग का खतरनाक शत्रु है।

2651. मन पवित्र हो तो शरीर पवित्र हो ही जाता है, देव भी उस वीतराग रूप को देखने जमीन पर उतर आते हैं।

2652. ऊपरी साफ-सफाई आत्मानुभूति का कारण नहीं बन सकती बल्कि जो आत्मा पर कषाय रूपी गंदगी जमी हुई है, उसे साफ करने से आत्म लाभ होता है।

2653. रूप का मद देव और मनुष्यों को सताता रहता है।

सत्य

2654. सत्य को स्वीकारते हुए भी हम उसका अनुशरण नहीं कर पाते, इसलिए हमारा उद्धार नहीं हुआ है।

2655. जीभ दो न हों, जीवन में सत्य ही, सब कुछ है, जीभ दो न हों का अर्थ है, झूठ ना बोलो क्योंकि सत्य ही जीवन में सब कुछ है।

2656. हम सभी का सच्चा-सच्चा नाम है, आत्माराम।

2657. असत्य के साथ जीने वालों को कभी भी सत्य का दर्शन नहीं हो सकता।

2658. अहं (अहंकार) को छोड़ अहं (मैं) को पाना ही सत्य है, ऐसे सत्य को बार-बार नमस्कार हो, सत्य महाव्रत का अर्थ सत्य बोलना नहीं है बल्कि असत्य का त्याग करना है, सत्य कभी कटु नहीं होता लेकिन जो असत्य के आदी हो गये हैं, उन्हें सत्य कटु लगने लगता है और असत्य मधुर।

2659. जीवन में यदि कुछ प्राप्तव्य है तो वह है-सत्य।

2660. सत्य को प्रकट नहीं करना बल्कि असत्य की परतों को हटाना है, सत्य स्वतः प्रकट हो जावेगा।

2661. जिसे जीवन का प्राप्तव्य ज्ञात नहीं है, वह कभी सत्य को प्राप्त नहीं कर सकता।

2662. राम नाम सत्य है, यह अंतिम मंत्र है।

2663. संकल्प न लेने वाले को सत्य पाना कठिन होता है। सत्य का उद्घाटन होना कठिन है।

2664. सत्य का पार नहीं पाया जा सकता, सत्य को देखा जा सकता है।

2665. सत्य को याद रखने की आवश्यकता नहीं होती जब सत्य आत्मसात् हो जाता है तो वह अपने आप याद हो जाता है।

2666. राम नाम सत्य होने के पूर्व में रावण को छोड़ दो राम हमेशा साथ हैं।

2667. जब सत्य दृष्टि हो जाती है, तब सारी धरती समग्र/अखण्ड दिखने लगती है।

2668. अपना सत्य जानो, सभी को अपना ही सत्य जानना है दूसरे का नहीं।

2669. सत्य हमारे बहुत पास है माया से धुंधला हो जाता है दिखाई नहीं देता।

2670. जल्दी की अपेक्षा ईमानदारी रखिए भले लम्बा चलना पड़े। प्रतीक्षा करिये सत्य अवश्य ज्ञात/प्राप्त होगा।

2671. सत्य तो सत्य है, दवाई की तरह है न मीठा है, न कड़वा है।

2672. सत्य को कटु सत्य इसलिए कहते हैं, क्योंकि उसे अमल में लाते समय बहुत कठिनाई जाती है।

2673. सत्य हमेशा वाद-विवाद से परे होता है।

2674. सत्य वचन बोलने से मार्ग की प्रभावना होती है।

2675. दूसरे का नाम बदनाम हो जावे ऐसा बोलना असत्य है।

2676. सत्य पाना कठिन नहीं है, बल्कि असत्य छोड़ना कठिन है।

2677. दुनिया असत्य की सेवा करती है किन्तु सम्यग्दृष्टि सत्य की सेवा करता है।

2678. असत्य बोलने से मैं बच जाऊँगा ऐसा सोचने वालो सत्य तो यह है कि तुम कभी मर ही नहीं सकते। तुम तो अमर हो।

2679. यदि आपकी बात सत्य है तो उसे सिद्ध करने का प्रयास मत करो।

2680. सत्यवादी से लाखों लोग प्रकाश पा सकते हैं।

2681. जिसके माध्यम से हिंसा हो ऐसा सत्य भी ना बोलें।

2682. एक बार का बोला गया झूठ हमेशा का सत्य खो बैठता है।

2683. असत्य बोलने वाले का कोई विश्वास नहीं करता।

2684. सत्य बोलने से वचन सिद्धि हो जाती है।

2685. अज का अर्थ "बकरा होता है ऐसा असत्य बोलने से" युगों-युगों तक हिंसा चल रही है।

2686. सत्य और अनुभय वचन संसार सुख के निर्माता हैं, ये वचन पाप से रहित हैं और धर्म सहित हैं, बोलने योग्य हैं तथा सारभूत हैं।

2687. असत्य का त्याग सत्य महाव्रत है और सत्य बोलना भाषा समिति है, गुप्ति भी है।

2688. अप्रिय और अहित करने वाले दोनों वचन स्वयं एवं पर के लिए दुःख देने वाले होते हैं।

2689. कभी-कभी वह असत्य भी सत्य माना जाता है, जिससे जीवों की रक्षा होती है।

2690. सत्य, मिष्ट वचन बोलो तो बोलो नहीं तो मुख मत खोलो।

2691. सत्यनिष्ठ व्यक्ति के पास सरस्वती का वास होता है।

2692. क्षयोपशम बढ़ाने से नहीं बल्कि सत्यनिष्ठ होने से बढ़ता है।

2693. शब्दकोष में मधुरता नहीं होती बल्कि मुख और भावों में मधुरता होती हैं।

2694. सत्य की प्राप्ति के पूर्व असत्य क्या है, यह पहचानना सत्य की प्राप्ति का पहला कदम है।

2695. कषाय और विषयों से संसार का विकास होता है और दुःख का लाभ होता है, यह भी एक सत्य है।

2696. हेय का विमोचन कर उपादेय की ओर कदम बढ़ाने का नाम सत्य है।

2697. सार-सार को निकाल लो असार को फटकार दो, इसी का नाम सत्य है।

2698. आज तक हमने असत्य को नहीं फटकारा इसलिए सत्य प्राप्त नहीं हुआ।

2699. सत्य बोलने का नाम सत्य व्रत नहीं है, बल्कि झूठ बोलने के त्याग का नाम सत्य व्रत है। असत्य को उपयोग में नहीं लाना ही सत्य है।

संयम

2700. शरीर के बिना गाड़ी आगे नहीं जा सकती इसलिए औदारिक शरीर का बड़ा महत्त्व है, चूँकि औदारिक शरीर के बिना "संयम का दर्शन नहीं हो सकता" औदारिक शरीर छूटते ही असंयम में (देवगति) जाना पड़ता है, इसलिए शरीर की एकदम उपेक्षा करने से पाप का/ असंयम का समर्थन हो जाता है।

2701. रोग होने पर औषधि न ली जायेगी तो शरीर जल्दी छूट जायेगा तो कहाँ जाओगे, स्वर्ग में। वहाँ क्या है ? असंयम! तो ध्यान रखो, असंयम का समर्थन हो जायेगा, टायर पंचर हो जाने पर गाड़ी नहीं बदली जाती बल्कि पंचर सुधार कर गाड़ी से काम लेते रहते हैं।

2702. संयम की रक्षा के लिए थोड़ा दोष क्षम्य होता है, जैसे लेख में (अल्प विराम, पूर्ण विराम।) क्षम्य होता है पैराग्राफ (गद्यांश) छोड़ देना क्षम्य नहीं है।

2703. असंयमियों के बीच में रहकर संयम का पालन करना बहुत कठिन होता है।

2704. मनुष्य पर्याय को इन्द्र भी तरसते हैं, क्योंकि मनुष्य पर्याय में ही पूर्ण संयम को धारण किया जा सकता है।

2705. स्वर्गों में तो संयम की गंध तक नहीं आती।

2706. संयम और आचरण से ही धर्म का प्रारम्भ होता है।

2707. कषायों से घिरा मन विश्वास के योग्य नहीं है, मन वही है जो संयत है।

2708. मन पागल हो गया और काट रहा है तो कोई इंजेक्शन नहीं है, मात्र एक संयम ही उसके लिए इंजेक्शन है।

2709. आपकी गाड़ी का ब्रेक फेल है और गाड़ी वेगवान है, बस भगवान् का नाम लो, कहाँ जावेगी ? यह गाड़ी पता नहीं।

2710. आत्मा को स्वच्छ, स्वतंत्र बनाना चाहते हो तो मन पर लगाम लगाओ।

2711. विकल्पों को तोड़ने का एवं इच्छाओं को संयत बनाने का प्रयास करते रहना चाहिए।

2712. आत्मा की उन्नति चाहते हो तो संयम से डरना नहीं चाहिए बल्कि मन को दण्डित करते रहना चाहिए।

2713. मन पर लगाम लगाने का नाम संयम है। हमारा मन हमेशा पतन के गड्ढे में गिरा देता है। तत्त्व को पढ़ा नहीं जाता, प्राप्त किया जाता है।

2714. वैराग्य के समय भगवान् की पालकी असंयम की सेवा करने वाले देवतागण नहीं उठा सकते।

2715. ज्ञान पाने का नहीं ज्ञान को रोकने का नाम संयम है।

2716. संयम के अभाव में जीवन खतरनाक सिद्ध होगा।

2717. जीवन का पतन जिससे हो वह विराधना है, साधना नहीं। बिना साधना के जीवन भारमय हो जावेगा।

2718. संयम के माध्यम से ही महान् आत्माओं ने स्वयं का एवं दूसरों का कल्याण किया है।

2719. संयम अनंतकालीन असंयम को दूर कर देता है। सहारा मिलने पर भी दुरुपयोग करोगे तो कल्याण नहीं होगा।

2720. असंयमी को संयमी से डर नहीं, संयमी को ही असंयम से डर रहता है।

2721. जो असंयम से डरता है वह सम्यग्दृष्टि है, पाप भीरुता होनी चाहिए।

2722. असंयम जीवन के लिए अभिशाप है।

2723. सम्यग्दृष्टि असंयम की सतह पर रहता है, उसमें डूबता नहीं है, क्योंकि वह संयम की तलाश में रहता है।

2724. अध्ययन के बाद की परीक्षा में जैसे कठिनाई होती है, वैसे ही सम्यग्दर्शन होने पर भी संयम लेने में कठिनाई होती है। संयम से ही श्रद्धा का विषय साक्षात् देखने को मिलता है। 12वें गुणस्थान तक परोक्ष ही सम्यग्दृष्टि रहता है। दूध में कभी भी घी का स्वाद आने वाला नहीं है चाहे तो उसे वर्षों तक रखे बैठे रहो।

2725. सम्यग्दृष्टि वह है जो संयम की ओर दृष्टि रखता है।

2726. संयम ही है जो ज्ञान को क्षायिक बनाता है, सम्यग्दर्शन को परम अवगाढ़ बनाता है।

2727. पहले दीक्षा की बात कही है फिर शिक्षा लेकिन आज पहले शिक्षा फिर दीक्षा की बात करते हैं। (पहले दीक्षा काल है फिर शिक्षाकाल)।

2728. जीवन में अशुभता तभी आती है जब असंयम आ जाता है।

2729. सम्यग्दर्शन अनगढ़ पत्थर है उसे गले में मत पहिनना उसमें चमक लाना महत्त्वपूर्ण है। चारित्र रूपी शान पर चढ़ता है तो गले का हार बन जाता है। मटमैलापन दूर हो जाता है। परम अवगाढ़ सम्यक्त्व बनाने के लिए उसे चारित्र रूपी शान पर चढ़ाना आवश्यक है।

2730. पशु न बोलने से दुःख उठाते हैं और मनुष्य बोलने से दुःख उठाते हैं।

2731. मन पर लगाम लगाना दुःख का कारण मानते हो तो यह मोक्षमार्ग का विपरीत श्रद्धान है। मन बेटे के समान है, ताड़ने से पुत्र, शिष्य व मन में गुण आते हैं लाड़ करने से दोष आते हैं।

2732. उसी की बुद्धि ठीक अथवा स्थिर रह सकती है, जिसकी इंद्रियाँ उसके वश में हों।

2733. जड़ें मन में, रोग तन में। रोग का पहला घर मन ही है।

2734. जिसके मन में संयम रहता है, उसी के वचन व काय संयम रह सकते हैं।

2735. जो शिल्पी होते हैं, उनका भी एक संयम होता है, साधना होती है तभी उनकी कला की पूजा होती है। जो संयम को सौभाग्य समझकर स्वीकारता है उसका संसार थोड़ा-सा बचता है। वह संसार समुद्र से जल्दी पार हो जाता है।

2736. भगवान् की प्रतिछवि, वीतरागता का आदर्श हमारे सामने हमेशा बना रहे तो हमारा सम्यग्दर्शन एवं संयम सुरक्षित बना रहता है।

2737. संयम, ज्ञान और दर्शन को विकसित कर देता है।

2738. संयमी के पीछे दुनियाँ का संघर्ष नहीं आ सकता।

2739. संयम में आवरणी कर्म को हटाने की प्रक्रिया होती है।

2740. मन को संयत बनाने के लिए मन में यह विश्वास जगाना होगा कि विषयों में सुख नहीं है।

2741. संयम लेने के उपरान्त संसार वैभव इन्द्रधनुष के समान क्षणिक प्रतीत होते हैं।

2742. वह संकल्प का ही परिणाम है कि जो आपकी 24 घंटे रसोई घर में रहते हुए भी भोजन की ओर दृष्टि नहीं जाती है। लगाम (संयम) हाथ में है तो घोड़ा (मन) कहीं जा नहीं सकता। मन पर ऐसा लगाम लगाओ कि ध्रुव ही दिखे।

2743. वृद्धों को जैसे खेलकूद नहीं रुचते वैसे ही संयमी को इस संसार की क्रियाओं में कोई रुचि नहीं रहती। संयम रूपी निधि को उपलब्ध करने का सौभाग्य मनुष्य पर्याय में उपलब्ध होता है।

2744. संयम स्वतंत्रता के लिए होता है किसी के आश्रित नहीं रहता संयमी किसी से डरता नहीं और किसी को डराता भी नहीं।

2745. संकल्प के बिना विचारों को मूर्तरूप नहीं दिया जा सकता, संकल्प के बल पर पूर्व कोटि वर्ष तक मर्कट (बंदर) और कुक्कुट भी संयमासंयम का पालन करते हैं।

2746. विचारों को संकल्प का रूप नहीं देते तो वे अस्थिर रहते हैं, संकल्प से परिणामों में दृढ़ता आ जाती है।

2747. जिसका जीवन संयमित होता है, वह कर्म के उदय में गाफिल नहीं होता।

तप

2748. तप कर्मों के क्षय के लिए/किए जाते हैं ख्याति-लाभ पूजा के लिए नहीं।

2749. तपों के उद्देश्यों के बारे में सोचते हैं तो ज्ञात होता है कि साधना का फल अलौकिक होता है।

2750. इच्छा निरोधः तपः। इच्छा पर वस्तु की होती है इच्छा निरोध होते ही निर्जरा प्रारम्भ हो जाती है।

2751. इच्छा मन का ही नाम है, उसी का निरोध करना तप कहा है।

2752. प्रभाकर (सूर्य) जब तक धरती को नहीं तपाता तब तक वर्षा नहीं होती।

2753. नौ दिन तपते हैं तपा, बीच में न चूयें तो अच्छा पानी गिरता है। आप भी जब तक मुक्ति नहीं पाओगे तब तक 12 तप तपने ही होंगे, तभी शांति उपलब्ध होगी।

2754. तपस्या कठिन-सी लगती है, लेकिन जिसे इसका फल एवं इस पर श्रद्धान रहता है वह कभी कठिन नहीं मानता।

2755. 28 मूलगुणों को तप नहीं कहा वे तपा के पूर्व के दिन है, तप तो 12 होते हैं। इस हीन संहनन के साथ आज जो अंतर्मुहुर्त साधना कर लेता है तो उस काल से कई गुणी मानी जाती है। आज रेत के ढेर में एक कणिका हीरे की भाँति यह तप दुर्लभ है।

2756. मूल्यहीन मिट्टी में घड़ा बनने की क्षमता तप के कारण ही उद्घाटित हुई है।

2757. तपस्वियों के चरणों में जाओ यदि संसार सागर से पार होना चाहते हो तो क्योंकि वे जहाज हैं संसार सागर से पार लगाने में।

2758. तप साधना के माध्यम से उत्कृष्ट अवस्था का अनुभव किया जा सकता है।

2759. जिस प्रकार अग्नि के माध्यम से पाषाण में से स्वर्ण पृथक् किया जाता है वैसे ही हम तप रूपी अग्नि के माध्यम से शरीर से आत्मा को पृथक् कर सकते हैं।

2760. तप रूपी अग्नि से शरीर नहीं जलता बल्कि कर्म वर्गणायें जलने लगती हैं।

2761. ज्ञानावरणादि आठ कर्मों को जलाने के लिए भिन्न-भिन्न तप रूपी भट्टियाँ (अग्नि) हैं।

2762. तप कर्मों को नष्ट कर देता है और रागद्वेष, क्रोध तप को नष्ट कर देते हैं। जैसे दवाईयाँ रोग को ठीक भी करती हैं और अनुपात गड़बड़ाने से प्रतिक्रिया (रिऐक्शन) भी करती हैं।

2763. इच्छाओं के माध्यम से स्व एवं पर को नष्ट भी किया जा सकता है, लेकिन तप के द्वारा स्व पर का कल्याण भी किया जा सकता है, इसलिए कहा है इच्छा निरोधः तपः।

2764. तप में जोखिम बहुत है, यदि उस समय हमारी दृष्टि साधना की रहती है तो ठीक है वरना तप स्वयं को भी हानिकारक हो सकता है। अपना ही शस्त्र अपने को ही घातक सिद्ध हो सकता है।

2765. वीतराग दृष्टि समाप्त हो जाने पर तप जल जाता है।

2766. जलाने वाला भी बुझ सकता है। जिस प्रकार अग्नि भगोनी में रखे दूध तो तपा/जला रही है लेकिन असावधानी से यदि भगोनी लुढ़क गयी तो वही दूध/पानी अग्नि को भी बुझा देगा।

2767. संसार में आत्मा को कंचन का रूप यदि कोई दे सकता है तो वह है तप रूपी अग्नि।

2768. तप, ध्यान करने के लिए पहले भूमिका चाहिए। चार संज्ञाओं से ऊपर उठना, पंच पापों का त्याग करना मन और इंद्रियों को जीतना, समता रखना, फिर ध्यान लगेगा।

2769. तप करते समय लक्ष्य ध्रुव की ओर ही होना चाहिए वरन् दिशा बदलने से दशा ही बदल जाती है। मंत्रसिद्धि वालों को मैंने देखा है दिशा बदलने से उनकी दशा ही गड़बड़ा जाती है।

2770. तप को अनुपात से करना चाहिए एवं उसका दुरुपयोग नहीं करना चाहिए।

2771. इंद्रिय और मन के उद्रेक को हटाने की अपेक्षा से तप करिये शरीर को नष्ट करने के लिए नहीं।

2772. शक्ति के साथ-साथ युक्ति से तप करना चाहिए, तभी मुक्ति का लाभ होता है।

2773. तप के माध्यम से मन पर क्या प्रभाव पड़ रहा है ? यह भी देखना चाहिए, मन का उद्रेक कम हुआ कि नहीं, कषायों में मंदता आयी है कि नहीं, कर्म ढीले हुए हैं कि नहीं।

2774. प्रारम्भ में अग्नि सुलगाते समय थोड़ी-सी हवा की फूँक दी जाती है और जब अग्नि सुलगने लगती है तो उसे (सिगड़ी को) खुली हवा में रख देते हैं, ठीक यही प्रक्रिया तप करने की है।

2775. जलते हुए स्टोव के वर्नर में कचरा आने पर अग्नि गड़बड़ा जाती है उसी प्रकार तप करते समय प्रलोभनादि कचरा मन में आ जाता है तो तप गड़बड़ में आ जाता है।

2776. इच्छा का निरोध करना कठिन है, बंधुओं यही कार्य करना योग्य है और इस भव में यही करना है, इच्छा करना तो बहुत आसान है।

2777. तप करते समय (विकृती न होवे) तन और मन विकृत न हो यह ध्यान रखना चाहिए, तभी तप करना सार्थक होगा।

त्याग

2778. स्वस्थ यानि अपने आपका त्यागकर दूसरे का कष्ट दूर हो, ऐसी भावना

आना/भाना दान धर्म माना जाता है।

2779. जिनायतनों की सुरक्षा में भावना के साथ-साथ धन भी लगाइए आप दान दे रहे हैं लगा नहीं रहे हैं।

2780. कुछ ग्रहण हुआ/किया कि समझो ग्रहण लग गया।

2781. स्व का कभी त्याग होता नहीं और पर का त्याग, त्याग माना नहीं जाता।

2782. अपने ज्ञान-दर्शन-चारित्र का त्याग नहीं होता। पर का क्या त्याग ? पर तो था ही नहीं।

2783. गृहस्थ को भी आवश्यकता से अधिक परिग्रह नहीं रखना चाहिए, नहीं तो संसार सागर में डूबना होगा/पड़ेगा।

2784. जब शरीर से ममत्व रखना भी परिग्रह है फिर कौन अपना होगा ?

2785. जिसने त्याग की ओर कदम उठाया है, वह मोह पर प्रहार कर रहा है। मोह को हराने का एक ही उपाय है अपनी ओर आना।

2786. कुछ द्रव्य के वियोग में जीव को पीड़ा जैसी होती है पर उस वस्तु द्रव्य को कोई पीड़ा नहीं होती।

2787. धन का मोही वहीं अगले भव में कुंडली मारकर बैठ जाता है ताकि कोई उसका धन न ले सके।

2788. गृहस्थ का धन के बिना जीवन नहीं चलता लेकिन जिस धन के कारण जीवन अंधकार में चला जावे उससे क्या तात्पर्य ?

2789. थोड़ा-सा त्याग बीजारोपण की तरह हमेशा करते रहना चाहिए, जिससे भविष्य में पुण्य की फसल लहलहावेगी।

2790. राग का त्याग ही सही त्याग माना जाता है मात्र बाह्य परिग्रह का त्याग नहीं। जब राग छूट जाता है तब परिग्रह छूट ही जाता है।

2791. त्याग के संस्कार स्वर्गों में भी पाये जाते हैं, लौकान्तिक देव बन सकते हैं।

2792. परिग्रह त्याग का पाठ समझ में आ गया तो त्याग में लगे रहो दूसरों को भी लगाये रहो।

2793. धन कमाने की स्पर्धा की जगह धर्म कमाने की स्पर्धा में लगे रहो।

2794. प्रचलन में धन आवेगा तो बढ़ेगा। इच्छा का निरोध होते ही कर्म निर्जरा प्रारम्भ हो जाती है।

2795. इच्छाओं का निरोध एक मौलिक वस्तु है, अद्‌भुत वस्तु है।

2796. राग संसार है तो त्याग मोक्षमार्ग है।

2797. पर को हाथ में ले रखा है इसलिए परास्त होते हो क्योंकि पराश्रय परास्त

कर देता है।

2798. संयम के साथ-साथ दान भी आवश्यक होता है। अर्थ का लोभी जो होगा उसका संयम नहीं पलेगा।

2799. बांध में थोड़ा-सा पानी के लिए लीकेज रखा जाता है, आप भी थोड़ा-सा संविभाग करिए उसी को दान कहते हैं।

2800. प्रभावना के लिए अर्थ का दान/त्याग करना चाहिए।

2801. पर के साथ आत्मीयता रखना प्रमाद कहा है, जिसे आत्मीयता के साथ स्वीकार कर लिया फिर उसे छोड़ना कठिन होता है, यह बात कटु सत्य है लेकिन दातून कड़वी ही होती है।

2802. निश्चयी (निश्चय नय वाले) को त्याग कोई वस्तु ही नहीं है। पर वस्तु मेरी है, यह कहना भी उसे अच्छा नहीं लगता।

2803. पानी कहीं अन्यत्र से नहीं लाना है, उसके ऊपर पड़ी मिट्टी की परतों को हटाना है इसी प्रकार आत्मा को कहीं से लाना नहीं है, उसके ऊपर जो राग की परतें जमीं हैं, उन्हें हटाना है। त्याग हमारा स्वभाव है, यह मन में ठान लेना चाहिए।

2804. योजनाओं को मूर्तरूप देने के लिए बहुत कुछ त्याग, संकल्प की आवश्यकता होती है।

2805. संसार का रोग जिससे बढ़ रहा है, उसे छोड़ दो बस, दवाई की आवश्यकता हीं नहीं।

2806. त्याग भी एक उद्देश्य को लेकर होना चाहिए, बिना उद्देश्य के किया गया बहुत बड़ा त्याग भी कुछ कार्यकारी नहीं होता।

2807. दान और वरदान की घोषणा के बाद वापस नहीं लिया जाता यह क्षत्रियों का काम है।

2808. त्याग को व्यवसाय का रूप नहीं देना चाहिए।

2809. द्वेष छोड़ने से सभी जीवों से मित्रता हो जाती है और राग छोड़ने से भगवान् की ओर बढ़ जाते हैं।

2810. जब विकार बाहर निकल जाता है, तब प्रकृति से मुलाकात होती है।

2811. पाँच पापों का त्याग कर दिया अब इसके अहंकार का भी त्याग कर देना चाहिए, क्योंकि बाह्य त्याग अंतरंग की वृद्धि के लिए किया जाता है।

2812. जिस वस्तु से राग हो रहा है, उस वस्तु का त्याग करना अनिवार्य है।

आकिञ्चन

2813. जब हम अकेले हो जावेंगे तो दुनिया अपने आप अपनी हो जावेगी।

2814. मन जितना हल्का होगा तो परिग्रह छोड़ने से ही होगा।

2815. धन, लक्ष्मी आत्मा की आराधना में बाधक हैं, शरीर भी बिगड़ जाता है जितने भी दुःख, संक्लेश परिणाम होते हैं, उसका मूल कारण संयोग है, लक्ष्मी (धन परिग्रह) रखते हो तो रौद्र-ध्यान (संरक्षणानंद) से नहीं बच सकते हो।

2816. भय संज्ञा के योग्य जो पदार्थ अपने पास रखता है, उसका अकाल मरण हो सकता है। हृदयगति हमारे भावों पर चलती है, यह बीमारी नहीं है भय है, कषाय है।

2817. जो भय से मुक्त होना चाहता हो, निशंक ध्यान करना चाहता हो, उसे परिग्रह रहित होना अनिवार्य है। भार छोड़ने से मन लगेगा वरना नहीं।

2818. जिसके पास कषाय अधिक होती है, प्रायः उसी को असाध्य रोग होते हैं।

2819. प्रशस्त मन को दवाई की आवश्यकता नहीं। हम स्वयं स्वास्थ्य के निर्माता हैं यहाँ पर शारीरिक, मानसिक दोनों चिकित्सा होती है।

2820. जिससे विकल्प हो रहा हो, उसे छोड़ दो।

2821. तिलतुष् मात्र भी मेरा नहीं है यह दुकान, घर में बैठकर सोचो तब सब छूट जावेगा मात्र ग्रन्थ में पढ़ने से नहीं।

2822. ताला लगाना रौद्र-ध्यान का प्रतीक है। ताले से रौद्र-ध्यान का अनुपात ज्ञात होता है। रौद्र-ध्यान को कम करोगे तो ऊर्ध्वगमन स्वभाव की ओर बढ़ते जाओगे।

2823. अध्यात्म में जिनका जितना अधिक परिग्रह कम होगा वे उतने ही बड़े माने जावेंगे। श्रमण शरीर की रक्षा करते हैं लेकिन वह परिग्रह के अंतर्गत नहीं आता। वे मठाधीश बने बिना चातुर्मास स्थापना करते हैं।

2824. मात्र आत्मतत्त्व ही हमारा है उसी की रक्षा, व्यवस्था में लगे रहो।

2825. स्थान के प्रति मोह भाव परिग्रह का रूप धारण कर लेता है, आप पद की नहीं रत्नत्रय से विभूषित पद के धनी बनें।

2826. परिग्रह से रहित आत्मा ऊर्ध्वगामी होती है।

2827. आकिञ्चन रूप घी को, छटॉक भर घी को, नीचे डाल दो और पचास किलो दूध डाल दो फिर भी वह ऊपर आ जावेगा।

2828. आकिञ्चन वही है जो किसी में नहीं मिलता किसी से मिल तो सकता है, पर किसी में मिलता नहीं, क्योंकि स्वभाव का यह स्वभाव है कि स्वभाव किसी में मिलता नहीं।

2829. आकिञ्चन धर्म का जो मौलिक महत्त्व समझते हैं, वे ही इसे स्वीकारते हैं।

2830. वैष्णव धर्म में इसे दारिद्र व्रत कहा है।

2831. जोड़ने वाला नहीं खाली करने वाला बड़भागी/ सौभाग्यशाली होता है।

2832. मोह गले तो आकिञ्चन प्राप्त हो।

2833. इस शरीर रूपी जेल से छूटने के लिए आकिञ्चन धर्म को स्वीकारा जाता है।

2834. इस मौलिक पदार्थ के सामने सारे पदार्थ कौड़ी के मोल दिखते हैं।

2835. यदि जीव बाह्य से भी आकिञ्चन धारण कर लेते हैं, भले अंदर के कर्म नहीं छूट पाते तो भी वे स्वर्ग में अंतिम ग्रैवेयक तक जा सकता है और कोई उपाय से नहीं जा सकते।

2836. पर को हाथ में मत रखो फेंक दो वरना ताली नहीं बजा पाओगे।

2837. पर द्रव्य का आश्रय जितना कम करोगे उतने स्वस्थ्य होते जाओगे। आवश्यकता से बाहर कोई भी कार्य करना स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है।

2838. पानी का अंश होने से दूध की आरती नहीं बनती बल्कि अग्नि परीक्षा के बाद घी से आरती बनती है।

2839. घी में चेहरा दिखता है वैसे ही आकिञ्चन होने पर ही वस्तु स्वरूप झलकता है।

2840. तीन लोक में एकत्व ही मात्र दुर्लभ वस्तु है, इसे जो स्वीकार करता है उसे निर्वाण की प्राप्ति होती है।

2841. मुक्ति उन्हीं को मिलती है, जिसके पास कुछ नहीं होता। अकेले का महत्त्व अलग ही होता है, यह तृष्णा की रेखा तो विश्ववन की व्याली (सर्पिणी) है।

2842. जिस दिन आचरण में आकिञ्चन धर्म आ गया समझो वह अभूतपूर्व घटना होगी।

2843. अध्यात्म में शरीर के ममत्व को भी परिग्रह कहा है। प्रतिभासम्पन्न वही होता है जो दूसरे पर आधारित नहीं होता।

2844. आकिञ्चन ही प्रारम्भ दशा है और अंतिम दशा है, बीच में तो यह नाटक अज्ञान दशा का है।

2845. यह जीव वस्तु स्वरूप के अभाव में विश्व की मूर्च्छा के पीछे भागता रहता है।

2846. तीन लोक की सम्पदा आपदा है, विपत्ति का घर है। बाहुबली अकेले ही जंगल में खड़े हो गये, उन्होंने सोचा जिस सम्पदा को लेकर भाईचारा समाप्त

हो गया, प्रजा का मैत्रीभाव चला गया धिक्कार है इसे। मुझे राज्य मार्ग नहीं चाहिए और महाराज मार्ग की ओर बढ़ गये। संख्या में 1 को राम कहते हैं, राम मतलब एक अकेला अंत में तो राम नाम सत्य है।

2847. यह प्राणी परिग्रह (मूर्च्छा) के लिए सात-समुंदर पार कर जाता है चक्रवर्ती एक आम के पीछे पागल हो जाता है, अपने पद को भूल जाता है।

2848. एक बार आकिञ्चन बनकर देख लो तीन लोक के नाथ बन जाओगे।

2849. त्याग के बाद आकिञ्चन क्यों ? क्योंकि योग्य का भी त्याग करना है।

ब्रह्मचर्य

2850. धर्म की आराधना करते जाओ, उसकी सिद्धि करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि वह किसी के देखने में नहीं आता।

2851. प्रभु ने सुना कि प्रभु की भक्ति ने सुना, भक्ति के माध्यम से प्रभु तक पहुँच जाते हैं। वह वस्त्र शील रक्षा के लिए शस्त्र का काम कर गये द्रौपदी के लिए।

2852. भक्ति में इतनी शक्ति थी कि उनको, साड़ी भेजना पड़ी। यहाँ शील है तो वहाँ साड़ी है। विज्ञान इस दिशा में नहीं पहुँच पावेगा।

2853. आज अनर्थ की जड़ टी.वी. है, जिसके माध्यम से संतान पतन की ओर बढ़ जावे उसे छोड़ने में क्या बाधा? टी.वी. से बुद्धि का नहीं वासना का विकास हो रहा है। जिसके माध्यम से शीलव्रत में कलंक लग रहा हो उसे घर में रखते ही क्यों हो ?

2854. शील व्रत की कथा पढ़ने की प्रथा रखनी चाहिए।

2855. शील की उपासना करने वालों को शील भंग के कारणों (टी.वी. आदि) का त्याग कर देना चाहिए। शील की रक्षा इसके बिना सम्भव नहीं है।

2856. टी.वी. के डिब्बे को अलग कर दो, वह शैतान का डिब्बा है, उसे देखने वाले भी शैतान हो जाते हैं। घर में जिससे अनेक प्रकार के तूफान उठते हैं, उन्हें बाहर निकालिये और मन की शुद्धि के लिए प्रथमानुयोग का स्वाध्याय करिये, माला फेरिये।

2857. वासना हमारे और भगवान् के बीच में अभिशाप सिद्ध हो जाती है।

2858. जो पर में तत्पर रहता है वह परास्त हो जाता है।

2859. मैं अंदर से इतना स्वच्छ रहूँ ताकि कोई बाह्य का असर न पड़े, यह प्राकृतिक चिकित्सा है। शादी के बाद अन्य के प्रति माँ, बहिन का भाव आना भारतीय संस्कृति है। रावण ने भी व्रत लिया था हठात् किसी स्त्री को ग्रहण नहीं

करूँगा।

2860. योग और उपयोग में इतनी शक्ति है कि अन्य की आवश्यकता ही नहीं मात्र दृढ़ विश्वास चाहिए।

2861. माँ को माँ बहिन को बहिन समझना यह उपयोग का ही वरदान है।

2862. कई व्यक्ति परिवार में बंधन में बंधे रहते हैं, यह योग/उपयोग की साधना है यह अन्यत्र भी करें, फिर सारा संसार परिवार नजर आने लगेगा।

2863. इमली का पेड़ बूढ़ा हो जाता है, पर उसकी खटाई बूढ़ी नहीं होती, यही दशा वासना की है।

2864. वस्तु स्वरूप समझ में आ जाता है तो फिर शरीर पर आवरण की बात ही नहीं रह जाती, दिगम्बरत्व प्राप्त हो जाता है।

2865. आत्मा का स्वरूप समझ में आ जाता है तो वस्त्र को स्वीकारना लज्जा जैसी लगती है।

2866. पर की अपेक्षा मोक्षमार्ग में नहीं होती, पर को स्वीकारना मोक्षमार्ग को सहनीय नहीं इसलिए मोक्षमार्गी को भी वस्त्र पहनना सहनीय नहीं है।

2867. मोक्षमार्गी पेट के लिए कुछ आहार लेता है, तब उसे लज्जा आती है, जल्दी-जल्दी चौके से बाहर निकलने के भाव रहते हैं, यह भी ग्रहण करना उसे सह्य नहीं होता। वस्त्र ग्रहण करना तो इष्ट है ही नहीं।

2868. अन्न के बिना जीवन चल नहीं सकता इसलिए अन्न को ग्रहण करना पड़ता है।

2869. वीतरागी को विष भी अमृतमय हो जाता है, वीतरागता के सामने राग नीचे बैठ जाता है।

2870. तात्त्विक दृष्टि आने के बाद भी यदि विषयों का जहर नहीं निकला तो समझना अभी तत्त्वज्ञान हृदयग्राही नहीं हुआ है।

2871. स्वभाव तो त्रैकालिक है उसका वर्णन नहीं किया जा सकता मात्र उसका अनुभव किया जा सकता है।

2872. तृष्णावान हमेशा भविष्य जानना चाहता है लेकिन भविष्य की बात करने वाला अंधकार में है, यह नहीं जानता।

2873. साधु की सेवा करने वाला श्रावक भी साधु का अनुचर (अणुव्रती) होता है, उसके पास भी वासना सीमा होती है (स्वदारसंतोष व्रत होता है) उसका वह उल्लंघन नहीं करता।

2874. भारतीय आचार-संहिता पढ़ने से ज्ञात होता है, श्रावक धर्म रागमय है पर उसकी दृष्टि हमेशा वीतरागता की ओर रही है।

2875. श्रावक तीनों संध्याओं में शुद्धोपयोगी मुनिराज के जीवन चर्या के बारे में चिन्तन करता रहता है।

2876. श्रमण साधु जन स्वयं शोध करते हैं लेकिन श्रावक सहयोगी पति-पत्नि के साथ एक दूसरे की कमजोरी को दूर करते रहते हैं, एक दूसरे का निर्देशन तब तक नहीं छोड़ते जब तक थीसिस पूर्ण न हो जाये। जब तक घर में है, तब तक साथ है, वैराग्य हो गया (थीसिस पूर्ण) बस चल दिये संन्यास की ओर।

2877. धर्म परम्परा को संचालित करने के लिए स्वदारसंतोष व्रत लिया जाता है। एक के अलावा अनंत का विकल्प हट जाता है, अनंत वासना चुल्लु भर रह जाती है।

2878. वासना के लिए विवाह नहीं होता बल्कि संस्कारित संतान के लिए, धर्म परम्परा चलाने के लिए विवाह होता है।

2879. मुनिराज या भगवान् ऊपर से नहीं आते बल्कि उन्हीं आदर्श गृहस्थ के यहाँ उत्पन्न संस्कारित शिशु हुआ करते हैं, वे ही महाराज व भगवान् बनते हैं।

2880. भारतीय संस्कृति में चार आश्रम होते हैं-श्रावक गृहस्थाश्रम वासी है।

2881. आप लोग भी पूर्वजों के पद चिह्नों पर ही चलिए अपना नया रास्ता मत बनाइए।

2882. श्रावक धर्म में कमी आ गयी तो, श्रमण धर्म नहीं रह सकता।

2883. रेल में श्रावक पीछे गार्ड बाबू जैसा है ड्रायवर (साधु) इसके बिना गाड़ी आगे नहीं बढ़ा सकता।

2884. स्वदारसंतोष व्रत को कुशील नहीं कहा सुशील कहा है। ब्रह्मचर्य व्रत कहा है। (स्वदार संतोष व्रत का अर्थ है-अपनी स्त्री में ही संतुष्ट रहना)।

2885. आप लोग नाप-तौल छोड़कर अपना कर्तव्य पूरा करें, दहेज से संघर्ष शुरु हो जाते हैं और धार्मिक संस्कार समाप्त हो जाते हैं। गर्भपात अधर्म कर्म है, निकृष्ट कर्म है, अन्याय है।

2886. काम पुरुषार्थ के द्वारा प्राप्त फल को नष्ट करना ठीक नहीं।

2887. दीनहीन व्यक्तियों के माध्यम से धर्म नहीं चलता क्योंकि यह क्षत्रियों का धर्म है।

2888. पुरुषार्थ के माध्यम से धन कमाओ। पैसों से घर नहीं चलने वाला बल्कि संस्कारों से घर चलेगा।

2889. दान, पूजा, शील एवं उपवास ये चार धर्म श्रावक के लिए बताये हैं शील

का अर्थ स्वभाव होता है, ब्रह्मचर्य होता है।

2890. जब तक श्रावक ब्रह्मचर्य के साथ रहता है, तब तक उसे घर गृहस्थी का दोष (पाप) नहीं लगता।

क्षमावाणी

2891. श्रमण की दैनिक चर्या में प्रतिक्रमण आता है, प्रतिक्रमण का अर्थ ही है, प्रत्यक्ष कोई सामने हो या न हो तीन लोक में किसी भी जीव के प्रति अपराध हो गया हो तो क्षमा मांगना। वस्तुतः हमें क्षमा मांगना है और हमें क्षमा करना है दूसरे क्षमा मांगे, या न मांगे क्षमा करें या न करें इससे कोई मतलब नहीं, क्योंकि क्षमा तो हमारा स्वभाव है।

2892. क्षमा धारण किये बिना मोक्षमार्ग ही नहीं बनता।

2893. क्षमा मांगने जैसा पवित्र भाव और दुनियाँ में कोई भाव नहीं हो सकता।

2894. साधु हर क्षण क्षमा मांगता है प्रत्येक क्रिया में कायोत्सर्ग करता है।

2895. जिनके जीवन में क्षमा अवतरित हो जाती है, वह पूज्य बन जाता है। जरा सोचो तो जो वस्तु तीन लोक में पूज्यता प्रदान करा दे, वह कितनी मौलिक वस्तु होगी।

2896. कषाय सहित होने से लोग देखना भी पसंद नहीं करते और यदि कषाय रहित हो गया तो उसे देखने के लिए, दर्शन करने के लिए दूर-दूर से लोग आ जाते हैं।

2897. क्षमा हमारी ही वस्तु है, जब क्षमा की अभिव्यक्ति हो जाती है तो उस क्षमा की मूर्ति के सामने हत्यारा भी हाथ जोड़कर खड़ा हो जाता है। उसके नाम की जाप देता है, णमो लोएसव्वसाहूणं कहता है।

2898. अष्टपाहुड ग्रन्थ में आचार्य कुन्दकुन्ददेव ने क्षमाधारी मुनिराज को, जिनायतन, जिनबिम्ब, तीर्थ आदि कहा है जिनलिंग कहा है, उन्हें जिन प्रतिमा के दर्शन की आवश्यकता नहीं, वे स्वयं जिनेन्द्र भगवान् के प्रतिबिम्ब है। क्षमाधारण करने के बाद जीव का महत्त्व कितना बढ़ जाता है इसे हम मुख से वर्णन नहीं कर सकते हैं। साधु का जीवन उज्ज्वल होता है।

2899. दीपक है उसकी लौ है तो धुआँ भी जुड़ा रहता है, वैसे ही संसारी प्राणी के साथ अज्ञान जुड़ा होता है।

2900. स्वभाव की प्राप्ति होते ही यह जीव निर्विकार हो जाता है।

2901. जो क्षमा के अवतार होते हैं, उससे क्षमा मांगने और क्षमा करने की बात ही नहीं क्योंकि उनके पास क्षमा हमेशा रहती है।

2902. क्षमा और प्रतिक्रमण के आँसू से साधु अपना सारा अपराध बहा देता है, धो

लेता है, फिर स्वयं क्षमा की मूर्ति बन जाता है। (क्षमा मनना नहीं क्षमामय बनना चाहिए)।

2903. पश्चात्ताप की घड़ियाँ जीवन में हमेशा नहीं आया करतीं, ये अपने स्वरूप तक ले जाने वाली घड़ियाँ हैं, स्वरूप प्राप्ति का प्रवेश द्वार है।

2904. जब तक प्रतिक्रमण नहीं करता तब तक निश्चय में नहीं डूब सकता। क्योंकि बाहरी लीनता के हटाने का नाम ही आत्मा में लीन होना है।

2905. ग्रामीण लोग कजलियाँ भेंट करते हैं, यह कटुता समाप्त करने का त्यौहार है।

2906. कषायों के वातावरण के साथ तो अनंत समय बिताया है, अब आत्मीयता के (वातावरण के) साथ जियो।

2907. मतभेद और मन भेद को समाप्त करके एक हो जाओ, भगवान् के मत की ओर आ जाओ फिर सारे संघर्ष समाप्त हो जायेंगे।

2908. कषायभाव हमारे जीवन से समाप्त हो जावें, इसलिए यह क्षमावाणी का त्यौहार मनाया जा रहा है।

2909. क्षमाभाव को आत्मसात् करने का आनंद अद्‌भुत ही हुआ करता है। आप लोग क्षमाधर्म का अभ्यास करो।

2910. हमारा ही उपयोग बड़ी महत्त्वपूर्ण वस्तु है, यह हमें अविनश्वर फल देने वाली योग्यता रखता है। इसमें उत्पाद विष्णु, व्यय शंकर, ध्रुव ब्रह्मा सब कुछ मौजूद है।

2911. रक्षक, भक्षक अविनश्वर इसी जीव में सब कुछ विद्यमान है।

2912. क्षमा ऐसी वस्तु है जिससे सारी ज्वलनशीलता समाप्त हो जाती है एवं चारों ओर हरियाली का वातावरण दिखाई देने लगता है।

2913. क्रोध में उपयोग नहीं रहता और उपयोग क्रोध में नहीं रहता। इसका तात्पर्य यह है कि क्रोध के समय उपयोग क्रोध रूप परिणत हो जाता है।

2914. साधु क्रोध रूपी शत्रु को क्षमा रूपी तलवार से नष्ट कर देते हैं।

2915. क्षमा कल्पवृक्ष के समान है, क्षमा के समान कोई धर्म नहीं है।

परिशिष्ट-2

सम्यग्दर्शन के आठ अंग

निशंकित अंग

2916. जैसा देव, शास्त्र, गुरु का स्वरूप आगम में कहा गया है वैसा ही है, अन्य भी नहीं है और अन्य प्रकार भी नहीं है, ऐसा श्रद्धान रखना निशंकित अंग है।

2917. जिनेन्द्र भगवान् के वचनों पर शंका न रखना (करना) निशंकित अंग है।

2918. तलवार की धार पर लोहे के पानी की बूँद अकम्प रहती है, इसी प्रकार निःशंकित अंग वाले का सम्यग्दर्शन संशय रहित अकंप होता है।

2919. निशंकित अंग वाले की पहले ही अपेक्षा दृष्टि बलवती बनी रहती है।

2920. बार-बार उपयोग करने से तलवार की धार में कमी आ जाती है, लेकिन सम्यग्दर्शन रूपी दृष्टि बार-बार श्रद्धान से बलवती होनी चाहिए।

2921. जिसका जो स्वरूप आगम में कहा है-उसी रूप में स्वीकार करना चाहिए वरन् बड़ों की आसादना हो जावेगी और ऐसा होना व्यवहार-कुशलता नहीं मानी जाती।

2922. मिथ्यात्व के ऊपर भी हेय रूप श्रद्धान रखो कि ये संसार का कारण है ऐसा निःशंक होकर श्रद्धान रखो।

2923. निःशंकित अंग में अंजनचोर प्रसिद्ध है जिसने जिनदत्त सेठ पर श्रद्धा रखकर णमोकारमंत्र का उच्चारण करते हुए सींके को काट दिया और आकाशगामिनी विद्या सिद्ध कर ली।

निकांक्षित अंग

2924. पूजा, ज्ञान, तपश्चरण आदि अनुष्ठान मोक्ष प्राप्ति के लिए निर्जरा के लिए होना चाहिए, इस लोक-परलोक सम्बन्धी भोगाकांक्षा रूप निदान से रहित होना निकांक्षित अंग है।

2925. धार्मिक कार्यों में आत्म संतुष्टि का होना ही निकांक्षित अंग है।

2926. धर्म करते हुए पंचेन्द्रिय विषयक सुख में आस्था नहीं रखना निकांक्षित अंग है, क्योंकि यह सुख-दुःख से मिश्रित है और कर्माश्रित है।

2927. संसार का सुख, दुःख का बीज है एवं पराधीन है व अंत सहित है, इसकी (संसार सुख की) कांक्षा न करना निकांक्षित अंग है।

2928. बाहुबली और भीमसेन ने पूर्व भव में बिना आकांक्षा के देव, शास्त्र व गुरु

की आराधना की थी उसी के परिणाम स्वरूप उन्हें संसार के सुख एवं प्रसिद्धि प्राप्त हुई।

2929. जिसे आत्मसंतुष्टि प्राप्त नहीं है, वही तुष्टिकरण की नीति को अपनाता है।

2930. निकांक्षित अंग में अनंतमति एवं सीतासती प्रसिद्ध है।

निर्विचिकित्सा अंग

2931. प्रतिकार करना अपने आप में हिंसा है, चिकित्सा का अर्थ प्रतिकार होता है, स्वयं के रोग के प्रति चिकित्सा ग्लानि के रूप में आती है सम्यग्दृष्टि के निर्विचिकित्सा अंग होता है।

2932. सम्यग्दर्शन निर्विचिकित्सा अंग के अभाव में नाक रहित मुख के समान है।

2933. जो रत्नत्रय से पवित्र हैं, उनके मलिन शरीर को देखकर ग्लानि न करते हुए यथायोग्य सेवा, वैयावृत्ति करना निर्विचिकित्सा नाम का गुण कहलाता है।

2934. निर्विचिकित्सा का अर्थ है-गुणों के प्रति प्रीति होना या ग्लानि रहित होना।

2935. शरीर गौण होगा और गुण दृष्टि में प्रधान होंगे तभी निर्विचिकित्सा अंग का प्रादुर्भाव होगा। सम्यग्दृष्टि की दृष्टि में शरीर की मलिनता नहीं बल्कि रत्नत्रय की पवित्रता आती है।

2936. निर्विचिकित्सा अंग वाले का श्रद्धान रहता है कि सुगंध-दुर्गंध तो पुद्‌गल की पर्यायें हैं, इससे आत्मा का कोई सम्बन्ध नहीं है।

2937. बाहुबली व भीमसेन ने पूर्वभव में निर्विचिकित्सा अंग का पालन करते हुए मुनिराजों की वैयावृत्ति की थी उसके फलस्वरूप ऐसा शरीर पाया था कि अस्त्र-शस्त्र और विष भी प्रभावहीन हो गये।

2938. रत्नत्रय की आराधना करने वाले जो भव्य जीव हैं, उनके शरीर की आकृति व शरीर से आने वाली दुर्गंध को न देखते हुए धर्म बुद्धि से उनकी यथायोग्य चिकित्सा करना निर्विचिकित्सा गुण कहलाता है।

2939. शरीर के (पदार्थ) के अनेक गुण धर्म हुआ करते हैं, उन सभी धर्मों के प्रति ग्लानि का न होना निश्चय निर्विचिकित्सा अंग है।

2940. जैनधर्म में सब बातें अच्छी हैं, लेकिन नग्नपना ठीक नहीं है, ऐसा किसी के मन में भाव आने पर ज्ञान के बल से दूर करना निर्विचिकित्सा कहलाती है।

2941. मोक्षमार्ग पर आने के बाद केशलौंच न करना पड़े, दूसरे के यहाँ भोजन करना न जाना पड़े, ऐसे भावों का न होना निर्विचिकित्सा अंग है।

2942. ग्लानि करने वाला कभी रोगी का इलाज नहीं कर सकता।

2943. ग्लानि जीते बिना वैयावृत्ति नहीं की जा सकती।

2944. समस्त राग-द्वेष आदि विकल्प रूप तरंग समूह का त्याग करके निर्मल आत्मानुभव लक्षण निज शुद्ध स्वरूप आत्मा में स्थिति करना निश्चयनय से निर्विचिकित्सा गुण कहा है।

2945. निर्विचिकित्सा अंग में उद्यायन राजा व रुक्मणी रानी प्रसिद्ध है।

अमूढ़दृष्टि अंग

2946. मिथ्यादृष्टि को भी रोहिणी आदि बारह सौ विद्यायें प्राप्त हो जातीं हैं, ऐसे चमत्कारी को धर्म मानकर नहीं स्वीकारना अमूढ़दृष्टि अंग है।

2947. कर्म के उदय में भाव उत्पन्न होते हैं, इनमें गहल भाव नहीं रखना, इनसे प्रभावित नहीं होना अमूढ़दृष्टि अंग है।

2948. विपरीत मार्ग को न मानते हुए उन्हें (कुमार्गियों को) मन, वचन एवं काय से अग्रेसर न करना अमूढ़दृष्टि अंग है।

2949. अमूढ़दृष्टि अंग में रेवती रानी प्रसिद्ध है।

2950. छः खण्ड का अधिपति होकर भी सुभौम चक्रवर्ती एक आम फल के पीछे पड़ गया और णमोकारमंत्र पर पैर रखने के भाव भी कर दिए यही तो मूढ़दृष्टि है।

2951. जो कर्म निर्जरा में सहायक नहीं है, ऐसी लौकिक मान्यताओं को धर्म नहीं मानना अमूढ़ दृष्टित्व है।

उपगूहन अंग

2952. जो धर्म पालन में असमर्थ हैं और जिनके निमित्त से धर्म की अप्रभावना हो रही है, उनके दोषों को ढ़कना या उनका निराकरण करना उपगूहन अंग है।

2953. उपगूहन अंग वाला इस बात को अच्छी तरह से जानता है कि धर्मात्मा की निंदा सो धर्म की ही निंदा है।

2954. उपगूहन का अर्थ दूसरों के दोषों का समर्थन करना नहीं है, बल्कि धर्म की अप्रभावना से बचाकर दूसरे के दोषों का निराकरण करना है।

2955. दूसरों के दोषों को ढ़कने से अपना सम्यग्दर्शन शुद्ध (दृढ़) होता है।

2956. दूसरे के दोष ढ़कने से दूसरे को क्या मिलेगा, उसे कुछ मिले या न मिले लेकिन अपने गुणों का तो विकास होता ही है।

2957. दूसरे के दोषों को ढ़कना यानि अपने गुणों को विकसित करना है।

2958. यदि उपगूहन अंग का पालन करने से हमारे गुणों में वृद्धि होती है तो आत्म-हितैषी को इसका पालन अच्छी तरह से करना चाहिए।

2959. जो निरंजन आत्मा को ढ़कने वाले राग-द्वेष मिथ्यात्व रूप परिणाम है उनको नष्ट करना निश्चिय उपगूहन अंग है।

2960. अपनी आत्मा में जो दुर्भाव उत्पन्न हो रहे हैं, उन्हें उत्पन्न न होने देने करने का प्रयास करना स्वयं का उपगूहन करना है।

2961. व्यवहार उपगूहन अंग श्रावकों की अपेक्षा से है और निश्चय उपगूहन अंग मुनियों के लिए है।

2962. उपगूहन अंग में जिनेन्द्र भक्त सेठ प्रसिद्ध हुए।

स्थितिकरण अंग

2963. धर्म स्नेही जनों के द्वारा सम्यग्दर्शन अथवा चारित्र से भी विचलित होते हुए पुरुषों का पुनः धर्म में स्थिर करना स्थितिकरण अंग है।

2964. यदि हम दूसरे को उठाना चाहते हैं तो हमें ऊँचे स्तर पर खड़े होना आवश्यक है।

2965. कर्मों के योग में ऐसे निमित्त जुड़ते हैं कि जिसके द्वारा सम्यग्दर्शन में स्खलन आ जाता है, वैसे भी स्खलित होना तो मानव का स्वभाव ही है।

2966. धर्मात्मा पर आई हुई आपत्ति को श्रद्धा, विवेक व चारित्र के माध्यम से दूर करना स्थितिकरण अंग कहलाता है।

2967. राहगीर गिरे को उठाता है उसी प्रकार मोक्षमार्ग में साथ चलने वाले गिर जावें तो उन्हें उठाकर साथ लेकर चलते जाओ, इसी का नाम स्थितिकरण है।

2968. निश्चय से उन्मार्ग में जाते हुए अपने मन को पुनः सन्मार्ग में स्थिर करना स्थितिकरण कहलाता है।

2969. अपने भाव बार-बार गिर जाते हैं, उन्हें पुनः स्वयं संभाल लेना बुद्धिमत्ता है।

2970. स्थितिकरण के लिए ज्यादा ज्ञान की आवश्यकता नहीं है, अंदर से भाव होना चाहिए, वात्सल्य के साथ टूटे-फूटे शब्द भी काम कर जाते हैं।

2971. स्थितिकरण अंग में वारिषेण मुनिराज प्रसिद्ध हैं।

वात्सल्य अंग

2972. माँ का प्रेम बेटे पर अकृत्रिम होता है गाय का बछड़े से जो स्नेह है, वह बिना प्रशिक्षण के सहज होता है, इसी का नाम वात्सल्य है।

2973. सहजता में जो रस आता है वह कृत्रिमता में नहीं आता जैसे पेड़ में ही पके आम के रस एवं पाल के पके आम के रस में अंतर होता है।

2974. श्री रामचन्द्रजी ने वज्रकर्ण के प्रति वात्सल्य होने के कारण राजा सिंहोदर को बाँध लिया था।

2975. आज वात्सल्य के अभाव में धर्म की अप्रभावना हो रही है।

2976. भटके हुए को सहारा सहानुभुति देते हुए पुनः रास्ते पर लाना ऐसा कार्य वात्सल्य अंग वाला ही कर सकता है।

2977. गुरुओं के प्रति वात्सल्य नहीं रखा जाता बल्कि उनके प्रति भक्ति भाव से

समर्पित होना होता है।

2978. वात्सल्य अंग का पालन करने से हमारा सम्यग्दर्शन पुष्ट होता है।

2979. गाय जो अपने बछड़े के प्रति भाव रखती है, वह अन्य किसी पशु से ज्ञात नहीं होता।

2980. वत्स से वात्सल्य शब्द की उत्पत्ति होती है।

2981. वत्स के प्रति जो गाय का प्रेमभाव है, वही वात्सल्य है।

2982. सभी जीवों के प्रति वात्सल्य एवं मैत्री का भाव रखने से तीर्थंकर प्रकृति का बंध होता है।

2983. सोलहकारण भावनाओं में जो वत्सलत्व शब्द आया है, उसका अर्थ है प्रकर्ष रूप से जो भगवान् के वचन मिले हैं, उसके प्रति एवं उसमें आस्था रखने वालों के प्रति वात्सल्य भाव का होना।

2984. जब तक मुक्ति न हो तब तक मोक्षमार्गी को अपने साधर्मियों से हिल-मिल कर रहना चाहिए।

2985. चारणऋद्धिधारी मुनिराज कभी अकेले नहीं मिलते, वे सहधर्मी साथ-साथ ही चलते हैं।

2986. सधर्मी से कभी विसंवाद न करें, वात्सल्य की कमी के कारण ही विसंवाद होता है।

2987. वात्सल्य अंग आपस की कलुषताओं से बचा लेता है।

2988. व्यवहार में वात्सल्य के बिना एक पल भी चल नहीं सकता।

2989. व्यवहार में एक-दूसरे के साथ हिल-मिलकर चलेंगे तो विश्व का कल्याण होने में देर नहीं लगेगी।

2990. जिसने पूर्व पर्याय में वात्सल्य की भावना भायी ऐसे तीर्थंकर बालक को अब शचि आदि गोद से नीचे नहीं रखने देती।

2991. जब छोटे बड़ों की विनय/आदर करते हैं, उन्हें सम्मान देते हैं तब बड़ों से उन्हें अपने आप वात्सल्य मिल जाता है।

2992. वात्सल्य के अभाव में हमारा व्यवहार तपे हुए दूध के समान है, उसे कोई छूना भी पसंद नहीं करेगा।

2993. वात्सल्य अंग के धारी गुरुदेव खोट पर चोट लगाते हैं और अंदर से सपोर्ट देते रहते हैं।

2994. वात्सल्य के अभाव में व्यवहार अभिशाप सिद्ध हो जायेगा।

2995. धर्म की प्रभावना वात्सल्य के बिना हो ही नहीं सकती।

2996. मिथ्यात्व रागादि सम्पूर्ण बाह्य पदार्थों में प्रीति को छोड़कर रागादि-विकल्पों

की उपाधि रहित अभेद रत्नत्रय में प्रीति करना निश्चय वात्सल्य अंग है।

2997. जो व्यवहार वात्सल्य में निष्णात रहता है, वही निश्चय वात्सल्य को प्राप्त करता है।

2998. वात्सल्य अंग में विष्णुकुमार मुनिराज प्रसिद्ध हुए हैं।

2999. वीतराग मार्ग पर बढ़ने पर भी कुछ राग विद्यमान रहता है, इस वात्सल्य पर्व (रक्षाबंधन पर्व) से ज्ञात होता है।

3000. वीतरागी अपने लिए कठोर होते हैं लेकिन सबके लिए नहीं यह भी इस वात्सल्य पर्व (रक्षाबंधन पर्व) से ज्ञात होता है।

3001. जैसे शरीर में आठ अंग होते हैं, वैसे ही सम्यग्दर्शन के आठ अंग होते हैं, उनमें वात्सल्य को हृदय की उपमा दी गई है।

3002. गाय वत्स (बछड़े) को सींग नहीं दिखा सकती बल्कि जिव्हा के माध्यम से लाड़ करती है लार (जीभ से चाटती है) के माध्यम से प्यार करती है।

3003. लाड़ सारी कलुषताओं से बचा देता है। गरिष्ट से गरिष्ट पदार्थ भी लार के माध्यम से पच जाता है।

3004. वात्सल्य अंग से रोता हुआ व्यक्ति भी हँसने लगता है।

3005. वात्सल्य के बिना एक पल भी चल नहीं सकता इसके माध्यम से तीर्थंकर प्रकृति का बंध होता है।

3006. लार को लालारस कहा जाता है, लालारस के स्थान पर लावारस आ जावेगा तो क्या होगा ? लावा से समुद्र भी सूखने को हो जाता है।

3007. प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन में लालारस, वात्सल्य से परिचित हो।

3008. एक दूसरे का व्यवहार पच जाए इसलिए सम्यग्दर्शन में वात्सल्य अंग रखा है।

3009. छोटे बड़ों की विनय करें और बड़े छोटों को वात्सल्य दें, तभी समाज में विकास हो सकता है।

3010. जिसके प्रति वात्सल्य रहता है, उन्हें सिर पर ना बिठायें।

3011. भगवान् से वात्सल्य नहीं होता उनके प्रति भक्ति की जाती है।

3012. दूसरे के दुःख को देखकर आँखों में पानी आना धर्म प्रिय की निशानी है।

3013. धन प्रिय बहुत बन लिया अब धर्म प्रिय भी बनो।

3014. स्व के साथ पर को भी देखना चाहिए। आज विष्णुकुमार महाराज जैसा नहीं कर सकते क्योंकि उतनी ऋद्धि, सिद्धि नहीं है, फिर भी जितना है उतना सहधर्मी के प्रति तो कर सकते हैं।

3015. अन्य जीवों को भी सहारा देकर ऊपर उठाना चाहिए यदि उनके पास निजी

उपादान होगा तो वह उन्नति कर जावेंगे।

3016. वे सैनिक सीमा के पार रहकर विपक्षियों को भगाते रहते हैं, तब कभी हम और आप यहाँ शांति से धर्मध्यान कर सकते हैं।

3017. सक्रिय अनुकम्पा के बिना सम्यग्दर्शन टिक नहीं सकता।

3018. काव्य में भी यदि वात्सल्य रस नहीं है तो सूखा, नीरस-सा लगता है, आनंद नहीं आता।

3019. गुरु का वात्सल्य अनुशासन से भरा हुआ होता है, वे खोट पर चोट करते हैं और अंदर से सपोट भी देते हैं।

3020. आप विनय करिये तो आपको वात्सल्य मिलेगा। पाने के लिए कुछ तो देना पड़ेगा। दूसरे के गुणों को देखने का प्रयास करिये यही वात्सल्य भावना है।

3021. रुक्मणि से प्रद्युम्न को वात्सल्य तब मिला जब वह विद्या के माध्यम से बच्चा बन गया।

प्रभावना अंग

3022. प्रभावना अंग का पालन करना श्रावक और साधु दोनों के लिए अनिवार्य है।

3023. जिनधर्म के माहात्म्य का ज्ञानादि के द्वारा प्रकट करना प्रभावना अंग है।

3024. श्रावकों को दान, पूजा आदि के माध्यम से धर्म की प्रभावना करना चाहिए और साधु को ज्ञान और तप आदि से जैनधर्म की प्रभावना करनी चाहिए।

3025. पूजा, विधानादि के माध्यम से श्रावक धर्मध्यान करता हुआ अपने प्रभावना अंग को पुष्ट बनाता रहता है।

3026. शास्त्र स्वाध्याय का उद्देश्य कर्मनिर्जरा होना चाहिए एवं जिनशासन की प्रभावना में इसका उपयोग करना चाहिए तभी इसका यथोचित फल प्राप्त होता है।

3027. प्रभावना किसी को नीचे दिखाने के लिए नहीं बल्कि वीतराग धर्म की महिमा दर्शाने के लिए की जाती है।

3028. मंदिर आदि निर्माण करवाने में भावना गलत नहीं होनी चाहिए, बल्कि उससे धर्म की प्रभावना होनी चाहिए।

3029. धार्मिक अनुष्ठान के माध्यम से अपनी प्रभावना नहीं बल्कि धर्म की प्रभावना हो, ऐसी भावना रखना चाहिए।

3030. भगवान् ने तो धर्म की प्रभावना की है, हम नहीं करेंगे तो क्या होगा ? ऐसा नहीं सोचना चाहिए बल्कि यथाशक्ति धर्म की प्रभावना करना चाहिए तभी हमारा सम्यग्दर्शन निर्मल होगा।

3031. आलस्य से बचने का सबसे अच्छा तरीका है धर्म की प्रभावना करते रहना।